पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

मुंबई—हरिप्रसाद भगीरथजीका पुस्त-
कालय कालकादेवीरोड़ रामवाड़ी.

मुंबईमें–कालकादेवीरोड़ पण्डित ज्येष्ठा-
राम मुकुंदजीके दुकानपर मिलेगा.

कानपूरमें–हनुमानदास बृजवल्लभदास
ठिकाणा चौकमें कोतवालिकेपास.

ॐ

॥ अथश्रीशंकराष्टकम् ॥

(गीतिच्छन्दः)

शीर्षजटागणभारं गरलाहारंसमस्तसंहारम् ॥
कैलासाद्रिविहारं पारंभववारिधेरहंवंदे ॥ १ ॥
चन्द्रकलोज्ज्वलभालं कंठव्यालंजगत्त्रयीपालम् ॥
कृतनुतमस्तकमालं कालंकालस्यकोमलंवंदे ॥ २ ॥
कोपेक्षणहतकामं स्वात्मारामंनगेन्द्रजावामम् ॥
संसृतिशोकविरामं श्यामंकंठेनकारणंवंदे ॥ ३ ॥
कटितटविलसितनागं खंडितयागंमहाद्भुतत्यागम् ॥
विगतविषयरसरागं भागंयज्ञेषुविभ्रतंवंदे ॥ ४ ॥
त्रिपुरादिकदनुजांतं गिरिजाकांतंसदैवसंशांतम् ॥
लीलाविजितकृतांतं भांतंस्वांतेषुदेहिनांवंदे ॥ ५ ॥
करतलकलितपिनाकं विगतजराकंसुकर्मणांपाकम् ॥
परपदनीतवराकं नाकंगमपूगवंदितंवंदे ॥ ६ ॥
सुरसरिदाप्लुतकेशं त्रिदशकुलेशंहृदालयावेशम् ॥
व्यपगतसकलक्लेशं देशंसर्वेष्टसंपदांवंदे ॥ ७ ॥
भूतिविभूषितकायं दुस्तरमायंविवर्जितापायम् ॥
प्रमथसमूहसहायं सायंप्रातर्निरंतरंवंदे ॥ ८ ॥
यस्तुपदाष्टकमेतद्ब्रह्मानंदेननिर्मितंनित्यम् ॥
पठतिसमाहितचेताः प्राप्नोत्यंतेशशैवमेवपदम् ॥ ९ ॥
इतिश्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितंश्रीशंकराष्टकम् ॥

प्रस्तावना.



ॐ सर्व महाशय सज्जनोंकूं विदित हो के इस जगत्में मोक्षके अर्थ अनेक प्रकारके मत प्रसिद्ध हैं। तिन सर्वमेंसें आस्तिकविद्वानोंकुं वेदान्त औ योग यह दो मत सादर संमत है। तिन दोनोंमेंभी गूढाशय विद्वानोंकुं एक योगमतहि अतीव अभिमत है। काहेतें यद्यपि वेदांतशास्त्रोक्त निश्चयसें जीवकी सर्वबंधनोंसें मुक्ति होवेहै तथापि यावत्पर्यंत केवल ज्ञानीका विद्यमान शरीरके साथ संबंध होवेहै तवपर्यंत क्षुधापिपासा शीतोष्णादिक द्वंद्वोंकी बाधा अनिवार्य है यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्मेंभी कथन करीहै " न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति " अर्थ० जबपर्यंत जीवात्माका शरीरके साथ संबंध होवेहै तबपर्यंत सुखदुःखके अनुभवका निवारण नहि होय सकैहै इति ॥ औ जो योगयुक्त पुरुष होवेहै तिसकूं तो सशरीर होनेतेंभी उक्त द्वंद्वोंकी बाधा नहि सभवेहै काहेतें योगाभ्याससें प्रारब्धकर्मकाभी जय होवेहै ॥ तथा प्रायेण योगाभ्यासके विना अधिकारी पुरुषोंकूं सम्यक् प्रकारसें आत्मतत्त्वका अपरोक्षानुभवभी नहि होवेहै यह वार्ता इस कालके ज्ञानियोंविषे प्रसिद्धहीहै। यद्यपि वह लोक अपणेमुखसें कहतेहैं हमारेकूं अपरोक्षानुभवहै तथापि तिनकी चपल वृत्ति औ गृहपुत्रादिकोंविषे आसक्ति तथा विषयलंपटतासें उक्त वार्ताकी अनुमानद्वारा सिद्धि होवेहै। काहेतें जिसपुरुषने अमृतका पान किया होवेहै तिसकी सविष अन्न भक्षण करणेमें प्रवृत्ति नहि होवेहै। यातें जीवन्मुक्ति औ अपरोक्षानुभवका असाधारण हेतु सो योगाभ्यास है तिसके अर्थहि ज्ञानी औ अज्ञानी सर्व पुरुषोंकुं

प्रयत्न करणा योग्यहै ॥ सो यद्यपि इस कालविषे योगाभ्यासके अनुष्ठान करणे औ बतलावनेहारे योगीजन बहुत दुर्लभहैं औ विना गुरुके योगविद्याकी सिद्धि होनीभी अत्यंत कठिन है ॥ तथापि यह उक्त कथन इन्द्रियाराम औ आलसी पुरुषों काहै ॥ काहेतें "शरीरनिरपेक्षस्य दक्षस्य व्यवसायिनः ॥ बुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किंचन दुष्करम्" अर्थ जो पुरुष अपणे शरीरसेंभी निरपेक्ष औ चतुर तथा दृढनिश्चयवान् औ विचारपूर्वक कार्यका आरंभ करणेहारा होवेहै तिसकूं इस जगतमें कोई वस्तुभी दुष्कर नहि होवेहै अर्थात् सर्वहि सुकर होवेहै इति ॥ यातें उक्तलक्षणोंकरके युक्त पुरुषकूं केवल शास्त्रके विचारसेंभी प्रयत्नपूर्वक योगकी सिद्धि संभवेहै तथा "नाविदविन्मनुते तं बृहंतं, विद्या गुरूणां गुरुः," इत्यादिक श्रुतिस्मृतिवाक्योंमेंभी परंपरासें शास्त्रकूंहि गुरुपणा प्रतिपादन कीयाहै यातें आस्तिक विवेकी जानोंकूं शास्त्रकूंहि परम गुरु मानकर तिसके अनुसार योगाभ्यास करणा योग्यहै ॥ जो शास्त्र औ गुरु दोनोंकी सहायता होवे तो अत्युत्तम वार्ता है सो योगशास्त्रकूं दुर्विज्ञेयसंस्कृतभाषाविषे गुंफित होनेतें सर्व अधिकारी पुरुषोंके उपयोगमें आना कठिणथा यातें हमने तिसके सर्व अर्थकूं इस ग्रंथविषे हिंदुस्थानीय भाषामें स्फुट कियाहै ॥ सो इस ग्रंथमें भाषा वाचनेहारे पुरुषोंकूं अनुपयोगी होनेतें सूत्रभूत मूलश्लोक केवल पचीस २५ रखेहैं औ जो जो तिनमें विशेष उपयोगी वार्ता हैं सो सर्वहि टीकाविषे विस्तारपूर्वक निरूपण करीहैं॥ औ अल्पबुद्धीवाले पुरुषोंके हृदयमें शीघ्रहि पद पदार्थके आरूढ होनेके अर्थ मूलश्लोक तथा प्रमाणिक श्रुतिस्मृतिपुराणवाक्योंका गोल अर्थ कीयाहै ॥ तथा दुःसाध्य औ शरीरके क्लेशदेनेहारा जो हठयोगहै तिसका विशेषकरके निरूपण नहि कीया औ सुसाध्य तथा सुखदायक जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इसभेदसें अष्ट अंगरूप राजयोग है तिस-

काहि विशेषकरके पातंजलदर्शन, याज्ञवल्क्यसंहिता, शिवसंहिता, खेचरीपटल, योगबीज, अमनस्कखंड, गोरक्षशतकादिक ग्रंथोंके अनुसार वर्णन कियाहै ॥ सो सर्व विचारणेसें मालुम होजावेगा यातें मोक्षविषे अत्यंत उपयोगी जानकरके विवेकी जनोंकूं अवश्यमेव इस ग्रंथका आदिसें लेकर अंतपर्यंत विचारद्वारा दुर्लभ लाभ लेना योग्यहै यहि हमारे प्रयासकी सफलता है ॥ सो यह ग्रंथ केचित् महाशंकर गोवर्धनादिक सद्गृहस्थोंकी प्रार्थनासें भावनगरमें नवीन निर्माण कीया गयाहै ॥ सो जो परिशोधनकरके छपानेसेंभी, इसमें किसीस्थलविषे अक्षर वा मात्रा पडगयाहै सो ग्रंथके अंतमें शुद्धिपत्रविषे देखकर औ अपणीबुद्धिसे विद्वानोंकूं स्वयमेव शोधलेना उचितहै ॥ इति विज्ञापनम् ॥

द० स्वामी ब्रह्मानन्दजी.

सूचीपत्रम् ।

ॐ गं गणपतये नमः ।

अथ श्रीयोगकल्पद्रुमप्रारम्भः।



मङ्गलम् ।

॥ वंशस्थं वृत्तम् ॥

प्रणम्य योगीन्द्रहृदंघ्रिपंकजं
महेश्वरं शेषमुखान्नृपींस्तथा ॥
ब्रवीमि योगागमसारमद्भुतं
सुसाधकाक्लेशविबोधसिद्धये ॥ १ ॥

ॐतत्सत्परमात्मने नमः ॥ सर्व मुमुक्षु जनोंके हितार्थ निर्विकल्पसमाधिकी प्राप्तिद्वारा कैवल्य (मोक्ष) पदके देनेहारे सर्व योगशास्त्रका सारभूत ' योगकल्पद्रुम, ' नामक ग्रंथकी निष्प्रत्यूह परिसमाप्तिके अर्थ तथा वृद्धव्यवहारसें औ वेदकी आज्ञासें कर्तव्यताकूं प्राप्त भया जो मंगलाचरण॰ तिसकूं प्रथम अपणे हृदयमें आचरण करके पुनः शिष्यशिक्षाके अर्थ ग्रंथके आदिमें कथन करेहै ॥ यह वार्ता श्रुतिमें भी कथन करीहै " समाप्तिकामो मंगलमाचरेत् " अर्थ यह ॥ ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिकी कामनावान् पुरुष आदिमें मंगलाचरण करे

इति ॥ तथा सांख्यसूत्रोंमें कपिल देवजीने भी कहाहै " मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति " अर्थ० 'शिष्ट पुरुषोंकरके आचरण करणेसें तथा ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिरूप फलके देखनेसें औ उक्त श्रुतिकी आज्ञासें ग्रंथके आदिमें मंगलाचरण करणा योग्य है इति ॥ सो मंगल आशीर्वादरूप वस्तुनिर्देशरूप नमस्काररूप इस भेदसें तीन प्रकारका होवेहै. तिनमेंसें इस स्थलविषे नमस्काररूप मंगलाचरण करेहैं ॥ प्रणम्येति ॥ सनक सनन्दन नारदादिक योगीन्द्रोंके हृदयमें चरणकमलहैं जिनके ऐसे जो "महेश्वर" कहिये महादेव अथवा विष्णु भगवान्हैं तथा योगशास्त्रके आचार्य जो शेष भगवान्का अवतार पतंजलि ऋषिहैं औ तिसके अनुसार जो योगके प्रतिपादन करणेहारे याज्ञवल्क्य 'व्यास' वसिष्ठ 'शुकदेव' मत्स्येन्द्र गोरक्षादिक ऋषि तथा योगी जन हैं तिन सर्वोंकूं नम्रतापूर्वक नमस्कार करके विवेक वैराग्यादिक साधनसंपन्न औ दुर्विज्ञेय-गीर्वाण भाषामें अकुशल जो साधकजन हैं तिनकूं अनायाससेंहि योगरहस्यके बोधकी सिद्धिके अर्थ 'पातंजलदर्शन' याज्ञवल्क्यसंहिता शिवसंहिता योगवासिष्ठ योगबीज 'अमनस्कखंड' खेचरीपटल हठयोगप्रदीपिका गोरक्षशतक इत्यादिक जो योगके प्रतिपादक ग्रंथ हैं तिन सर्वोंका अति अद्भुत जो रहस्य है तिसकूं अपणी बुद्धिके अनुसार आकर्षण करके इस ग्रंथविषे ग्रंथकार प्रतिपादन करेहैं इति ॥ तथा

मूल श्लोकविषे जो 'योगागमसारं' यह पद है तिसकरके सर्व योगशास्त्रका सारभूत जो निर्विकल्प समाधिकी प्राप्तिद्वारा जीवब्रह्मकी एकता है सो इस ग्रंथका विषय कथन किया है ॥ तथा 'विबोधसिद्धये' यह जो पद है तिसकरके निर्विकल्प-समाधिकी प्राप्ति होनेतें अविद्या आदिक सर्व क्लेशोंकी निवृत्तिद्वारा जो परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति है सो इस ग्रंथका प्रयोजन कथन किया है ॥ तथा 'सुसाधक' यह जो पद है तिसकरके विवेक वैराग्य अपरिग्रह वांचानिरोध उत्साह धैर्य इत्यादिक योगके साधनोंकरके संपन्न जो साधक पुरुष है सो इस ग्रंथका अधिकारी कथन किया है ॥ तथा विषय औ ग्रंथका जो परस्पर संबंध है सो प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबंध है ॥ तथा योग औ अधिकारीका जो संबंध है सो प्राप्यप्रापकभावसंबंध है ॥ औ योगचर्याके ज्ञानका औ ग्रंथका जो संबंध है सो जन्यजनकभावसंबंध है ॥ इनतें आदिलेकर अन्यभी संबंध जान लेने इस प्रकार विवेकी जनोंकी ग्रंथविषे प्रवृत्तिके अर्थ ग्रंथकारने यह चारि अनुबंध सूचन किये हैं काहेतें बिना अनुबंधोंके जाननेसें विवेकी पुरुषकी ग्रंथविषे प्रवृत्ति संभवे नहि इति ॥ १ ॥ इस प्रकार मंगलाचरण औ ग्रंथके अनुबंधोंकूं निरूपण करके अब साधक पुरुषकी श्रद्धा उत्पादन करणेके अर्थ योगकूं कल्पवृक्षरूपसें वर्णन करेहैं ॥

वसंततिलका वृत्तम् ॥

हृद्भूभवो निगमबोधसुमूलको द्वि-
स्कन्धः षडुन्नतलतश्च यमादिपर्णः॥
ध्यानादिपुष्पललितश्च विमोक्षसस्यः
सर्वार्थदो जयति योगसुरद्रुमोयम्॥ २॥

हृदिति ॥ योगरूप एक कल्पवृक्ष है सो जैसे कल्पवृक्ष पृथिवीविषे आविर्भावकूं प्राप्त होवे है तैसेहि योगरूप कल्पवृक्ष चित्तरूप पृथिवीविषे आविर्भावकूं प्राप्त होवे है औ जैसे कल्पवृक्षके विस्तारका हेतु मूल होवे है तैसेहि ' ब्रह्मबिंदु उपनिषत् ' ' अमृतबिन्दु उपनिषत् ' ध्यानबिंदु उपनिषत् ' ' योगशिखा उपनिषत् ' ' योगतत्त्व उपनिषत् ' ' क्षुरिका उपनिषत् ' ' श्वेताश्वतर उपनिषत् ' इत्यादिक जो योगके प्रतिपादन करणेहारा वेदका भाग है तथा तिसके अनुसार जो ' पातंजलदर्शन ' याज्ञवल्क्यसंहिता आदिक ग्रंथ हैं तिनकें रहस्यका पठन अथवा गुरुमुखद्वारा श्रवण करणेतें जो सम्यक् प्रकारसें बोध है सोई योगरूप कल्पवृक्षके विस्तारका हेतुमूल है ॥ काहेतें योगरहस्यके सम्यक् बोधसें विना तिसके अनुष्ठानमें प्रवृत्ति संभवे नहि ॥ औ जैसे कल्पवृक्षके

१ वृत्ताशीनां फलं सस्यमित्यमरः ॥

शाखा पत्रादिकोंके आश्रयभूत स्कंध होवेंहैं तैसेही योगरूप कल्पवृक्षके वैराग्य औ अभ्यास यह दो स्कंध हैं ॥ औ जैसे कल्पवृक्षकी शाखा होवेहैं तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षको उत्साह साहस धैर्य तत्त्वज्ञान निश्चय जनसंगपरित्याग यह षट् विस्तृत शाखा हैं काहेतें जैसें शाखाविना वृक्षकी सिद्धि नहीं होवेहै तैसेहि इन षट्केविना योगकी सिद्धि नहिं होवेहै तिनमें विषयप्रवाहपतितचित्तके निरोध करणेविषे जो उद्यम है तिसका नाम उत्साह है॥तथा आयुषकूं विजलीके चमत्कारकी न्याई क्षणभंगुर जानकरके शीघ्रहि योगके अंगोंके अनुष्ठानविषे जो प्रवृत्ति है तिसका नाम साहस है॥तथा विघ्नोंकरके पुना पुना चलायमान करणेतेंभी "शरीरं पातयामि कार्यं साधयामि" इस प्रकारके दृढ निश्चयपूर्वक जो सिद्धिपर्यंत अभ्यासका परित्याग नहि करणा है तिसका नाम धैर्य है ॥ तथा यह वार्ता मेरे करके साध्य है औ यह असाध्य है इस प्रकारका जो योगविषयक यथार्थज्ञान है तिसका नाम तत्त्वज्ञान है ॥ तथा शास्त्र औ गुरुके वाक्यविषे जो दृढ विश्वास है तिसका नाम निश्चय है ॥ तथा योगाभ्यासके विरोधि विषयी पुरुषोंके संसर्गके परित्याग करणेका नाम जनसंगपरित्याग है इति ॥ यह सर्व वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करी है "उत्साहात्साहसाद्धैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात् । जनसंगपरित्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्यति" ॥ अर्थ० उत्साह,

साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, निश्चय, जनसंगपरित्याग, इन षट् साधनोंकरकेहि योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी कहाहै—

" उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमम् "
" षडिमे यस्य तिष्ठन्ति स सर्वं प्राप्नुयात् पुमान् "

अर्थ० उत्साह, साहस, धैर्य, बल बुद्धि, पराक्रम, यह षट् जिस पुरुषके दृढ होवेहैं सो पुरुष सर्व कार्योंकूं सिद्ध करसके है इति॥तथा जैसे कल्पवृक्षके पत्र होवेहैं तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षके यम, नियम, आसन,प्राणायाम, प्रत्याहाररूप पत्र हैं काहेतें जैसे पत्रोंकरके वृक्षकी रक्षा होवे है तैसेहि यमनियमादिकोंकरके योगकी रक्षा होवेहै ॥ औ जैसे कल्पवृक्ष पुष्पोंकरके शोभायमान होवेहै तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षके ध्यानधारणा समाधिरूप पुष्प हैं औ जैसे कल्पवृक्षविषे फल होवेहैं तैसेहि योगरूप कल्पवृक्षका सर्व क्लेशोंकी निवृत्तिद्वारा परमानंदकी प्राप्तिरूप कैवल्यमोक्षरूप फल है काहेतें जैसे वृक्षारोपण जलसिंचनादिक प्रयास फलकी प्राप्तिके अर्थ होवेहै तैसेहि प्राणायामप्रत्याहारादिकरूप योगाभ्यासका परिश्रम परमानंदकी प्राप्तिके निमित्तहि होवेहै ॥ औ जैसे कल्पवृक्ष स्वाश्रितपुरुषोंकूं सर्व वांछित पदार्थोंकी प्राप्ति करेहै तैसेहि योगरूप कल्पवृक्ष योगीजनोंकूं आकाशगमन परकायप्रवेशादिक सर्व वांछितसिद्धियोंकी प्राप्ति करेहै ॥ औ जैसे कल्पवृक्ष षट्पी-

पलादिक सर्व वृक्षोंसें उत्कृष्टतासें वर्ततहै तैसेहि योगरूप कल्पवृक्ष न्यायें मीमांसा सांख्यादिक सर्वमतरूप अन्यवृक्षोंसें उत्कृष्टतासें वर्तता है इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकामेंभी योगकूं कल्पलतारूपता कथन करीहै

"सत्त्वं बीजं हठः क्षेत्रमौदासीन्यं जलं त्रिभिः"
"उन्मनी कल्पलतिका सद्य एव प्रवर्त्तते"

अर्थ०योगाभ्यासकरके वशीभूत किया हुया चित्त तो बीजस्थानीय है काहेतें चित्तहि बीजकी न्याइं समाधिरूप अंकुरसें परिणामकूं प्राप्त होवेहै ॥ तथा हठयोग क्षेत्ररूप है काहेतें जैसे क्षेत्रमें बीज स्थित किया हुया अंकुरभावकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि हठयोगमें स्थित कियाहुया चित्त राजयोगरूप अंकुरभावकूं प्राप्त होवेहै ॥ तथा पर वैराग्यरूप जल है काहेतें जैसे जलके सिंचन करणेतें लताकी पुष्टी होवेहै तैसेहि पर वैराग्यसें योगाभ्यासकी पुष्टि होवेहै ॥ इन तीनोंकरके समाधिरूप कल्पलताकी शीघ्रहि वृद्धि होवेहै इति ॥ २ ॥ पूर्वश्लोकविषे योगरूप कल्पवृक्षके जो वैराग्य औ अभ्यासरूप दो स्कंध कथन कियेहैं तिनके विना योगकी सिद्धि नहि होवेहै यह वार्ता कथन करेहैं ॥

इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

आद्यस्य रागौ पुरुषांडजन्मनः
पक्षौ वदन्तीह समाधिवित्तमाः ॥

·योगाततकाशसुखाधिरोहणं
नूनं तयोर्नान्यतरेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

आवृत्तीति ॥ अर्थ० समाधिके जाननेहारे योगीलोक साधंक पुरुषरूप पक्षीके अभ्यास औ वैराग्य यह दोनों पक्ष कथन करते हैं काहेतें जैसे विस्तृत आकाशविषे एक पक्षकरके पक्षीकी सुखपूर्वक गति नहि होवेहै तैसेहि योगरूप जो विस्तृत आकाश है तिसविषे केवल अभ्यास औ केवल वैराग्यकरके साधकरूप पक्षीकी सुखपूर्वक गति नहि होवेहै किंतु जैसे पक्षीका दोनों पक्षोंकरके आकाशविषे सुखपूर्वक आरोहण होवेहै तैसेहि साधकपुरुषका अभ्यास औ वैराग्य इन दोनोंकरकेहि योगविषे सुखपूर्वक आरोहण होवेहै काहेतें जैसे चिरकालसें चलेहुये नदीके वेग निरोध करणेविषे एक तो मृत्तिकाआदिक क्षेपणकरके अग्रभागसें निरोध करणा औ पुना पीछले भागसें एक नहर निकासकर अभिमत देशविषे प्राप्त करणा यह दो उपाय होवे हैं तैसेहि चित्तरूप नदीका अनादिकालसें जो संसारके सन्मुख प्रवाह चल रहाहै तिसके निरोध करणेविषेभी एक तो मृत्तिकाआदिक

क्षेपणरूप दृढ वैराग्यकरके अग्रभागसें निरोध करणा औ पुना नहररूप अभ्यासकरके अभिमतदेशरूप आत्मपदविषे प्राप्त करणा यह दो उपाय होवेहैं ॥ यह वार्ता "योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै ॥ " अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः " अर्थ० चित्तकी वृत्तियोंका अभ्यास औ वैराग्यकरकेहि निरोध होवे है इति ॥ तथा गीतामें भगवानूनेभी कहाहै " अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते" अर्थ० हे अर्जुन अभ्यास औ वैराग्य करकेहि अत्यंत चपळ मनका निरोध होवे है ॥ इति ॥ तथा सांख्यसूत्रोंमें कपिलदेवजीनेभी कहाहै " वैराग्यादभ्यासाच " अर्थ० वैराग्य औ अभ्यासकरकेहि योगकी सिद्धि होवेहै इति ॥ ३ ॥ इस प्रकार वैराग्य औ अभ्यासकूं योगकी सिद्धिविषे मुख्य हेतुता कथन करके अब तिनमेंसें प्रथम वैराग्यका लक्षण कथन करेंहैं ॥

द्रुतविलंबितं वृत्तम् ॥

जनननाशजरोग्रवनेचरं
त्रिविधतापकुकंटकसंकुलम् ॥
उपरमेत तपोग्रदवानलं
जगदरण्यमवेक्ष्य सुधीरधीः ॥ ४ ॥

जनतेति ॥ संसाररूप एक गहन वन है सो जैसे वनविषे क्षुद्र जीवोंके भक्षण करणेहारे सिंहव्याघ्रादिक भयंकर वनचर निवास करते हैं तैसेहि संसाररूप वनविषे योगाभ्यासकरके शून्य जो क्षुद्र जीव हैं तिनके भक्षण करणेहारे जन्ममरणजरारूप भयंकर वनचर निवास करते हैं यहां जन्ममरण जरा यह शीत उष्ण क्षुधा तृषा हर्ष शोकरूप षट् ऊर्मियोंकेभी उपलक्षण हैं ॥ औ जैसे वनविषे ऋजुमार्गसें भ्रष्ट हुये पुरुषके पादादिक अवयवोंकूं वेधन करणेहारे अति तीक्ष्णकंटक होवैहैं तैसेहि संसाररूप वनविषे योगाभ्यासरूप ऋजुमार्गसें भ्रष्ट हुये पुरुषके अवयवोंकूं वेधन करणेहारे तापरूप तीक्ष्ण कंटक हैं ॥ सो ताप आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इस भेदसें तीन प्रकारके हैं ॥ तिनमें कफ पित्त वातके विकारकरके जो शरीरविषे व्यथा होवैहै तिसका नाम आध्यात्मिक ताप है औ अतिशीत वात घर्म वृष्टि ग्रह आदिकोंकरके जो शरीरमें पीडा होवैहै तिसका नाम आधिदैविक ताप है ॥ तथा सिंह व्याघ्र सर्पादिकोंकरके जो शरीरविषे दुःख होवैहै तिसका नाम आधिभौतिक ताप है ॥ तथा जैसे वनविषे वृक्षोंके जलानेहारा वेणुओंके परस्पर संघर्षणसें उत्पन्न भया दावानल होवैहै तैसेहि संसाररूप वनविषे मनुष्य दैत्य देवता आदिक जीवरूप वृक्षोंके जलानेहारा विषय औ इंद्रियोंके परस्पर संसर्गरूप संघ-

षणसें उत्पन्न भया तृष्णारूप दावानळ हैं॥सो जैसे ऋजुमार्गद्वारा अपणे ग्रामकूं जानेहारा कुशळ पथिक जन उक्तप्रकारके भयानक वनकूं देखकर वैराग्यकूं प्राप्त होवेहै अर्थात् दूरसेंहि तिसका परिवर्जन करेहै तैसेहि योगाभ्यासरूप ऋजुमार्गद्वारा कैवल्यमोक्षरूप अपणे ग्रामकूं जानेहारे मुमुक्षु पुरुषरूप पथिककूं संसाररूप भयंकर वनकूं विचारदृष्टिसें देखकर वैराग्यकूं प्राप्त होना योग्य है ॥ सो वैराग्य पर औ अपर इस भेदसें दो प्रकारका है ॥ तिनमें पुना अपर, वैराग्य यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय, वशीकार, इस भेदसें च्यारि प्रकारका है ॥ तिनमें इस जगत्‌विषे क्या वस्तु सार है औ क्या असार है यह वार्ता गुरु औ शास्त्रद्वारा जाननी चाहिये इस प्रकारका जो चित्तविषे उद्योग होनाहै तिसका नाम यतमानवैराग्य है ॥ औ अपणे चित्तमें प्रथम जो कामक्रोधादिक दोष थे तिनमेंसें कितनेक निवृत्त भयेहैं औ कितनेक अवशेष रहेहैं इस प्रकार विवेचन करके अवशेष रहे दोषोंकी निवृत्तिके अर्थ जो प्रयत्न करणा है तिसका नाम व्यतिरेक वैराग्य है ॥ तथा इसलोक औ परलोकके विषयोंके अर्थ जो प्रवृत्ति है तिसकूं दुःखरूप जानकर बाह्यसें परित्याग करणेनें अनंतर हृदयमें जो विषयोंकी सूक्ष्म अभिलाषाका सद्भाव होता है तिसका नाम एकेन्द्रिय वैराग्य है ॥ तथा इस लोक औ परलोकके विषयोंकी अभिलाषाकाभी जो हृ-

दयसें परित्याग करणा है तिसका नाम वशीकारवैराग्य है ॥ औ संप्रज्ञातसमाधिके अभ्यासकरके विवेकेख्यातिके प्राप्त भयेतें त्रिगुणात्मक सर्वप्रपंचके व्यवहारोंसें जो उपरामता है तिसका नाम परवैराग्य है ॥ तिनमेंसें अपरवैराग्य तो संप्रज्ञातसमाधिका अंतरंग साधन है औ परवैराग्य असंप्रज्ञातका अंतरंग साधन है ॥ इस प्रकारके वैराग्यकरके युक्त पुरुषकाहि योगाभ्यासविषे अधिकार है अन्य पुरुषका नहिं यह वार्ता वायुसंहितामेंभी कथन करीहै "दृष्टे तथानुश्रविके विरक्तं विषयं मनः ॥ यस्य तस्याधिकारोऽस्मिन्योगे नान्यस्य कस्यचित्" अर्थ० स्रक् चंदन वनिता पुत्र गृह क्षेत्रादिक जो दृष्ट विषय हैं औ वेदोक्त जो स्वर्गादिक विषय हैं तिन सर्वसेंहि जिस पुरुषका चित्त विरागकूं प्राप्त भयाहै तिसकाहि इस योगाभ्यासमें अधिकार है दूसरेका नहि इति " तथा सुरेश्वराचार्यनेभी कहाहै "

"इहामुत्र विरक्तस्य संसारं प्रजिहासतः"

"जिज्ञासोरेव कस्यापि योगेऽस्मिन्नधिकारिता"

अर्थ० इस लोक औ परलोकके विषयोंसें विरक्त औ जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्तिकी इच्छावान् जो जिज्ञासु पुरुष हैं सो चाहे किसी वर्णविषेभी होवे तो तिसका यो-

१ पुरुष औ प्रकृतिका जो भिन्न भिन्न ज्ञान है तिसका नाम विवेकख्याति है ॥

गाभ्यासमें अधिकार है इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाकी टीकाविषेभी कहाहै " जिताक्षाय शांताय सक्ताय मुक्तौ विहीनाय दोषैरसक्ताय भुक्तौ ॥ अहीनाय दोषेतरैरुक्तकर्त्रे प्रदेयो न देयो हठश्चेतरस्मै " ॥ अर्थ० जो पुरुष जितेन्द्रिय औ शांतचित्त तथा मोक्षकी उत्कट इच्छावान् औ कामक्रोधादिक दोषोंकरके रहित तथा भोगोंसें विरक्त औ यमनियमादिक गुणोंकरके युक्त तथा यथोक्तकारी होवे तिसकूंहि योगका उपदेश करणा योग्य है अन्य पुरुषकूं नहि इति ॥ तथा सामवेदके छांदोग्य ब्राह्मणमेंभी कहाहै " विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम शेवधिस्तेहमस्मि त्वं मां पालय अनर्हते मानिने नैव मां दा गोपाय मां श्रेयसी तथाहमस्मीति " अर्थ० एक समयविषे विद्या स्त्रीकारूप धारण करके किसी विद्वान् ब्राह्मणके

रीहै "विरक्तस्य तत्सिद्धिः" अर्थ० वैराग्यवान् पुरुषकूंहि योगकी सिद्धि होवेहै इति ॥ तथा योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कहाहै "तीव्रवेगानामासन्नः" अर्थ० तीव्रवैराग्यकरके युक्त पुरुषोंकूंहि शीघ्र योगकी सिद्धि होवेहै इति ॥ सो वैराग्य शरीर, स्त्री, धन, पुत्र, गृह आदिकोंविषे दोषदृष्टिके हुयेविना यथार्थ उत्पन्न नहि होवेहै काहेतें जिस कालविषे जिस वस्तुविषे पुरुषकी दोषदृष्टि होवेहै तिसहि कालविषे तिसतें वैराग्यकूं प्राप्त होवेहै यातें मुमुक्षु पुरुषकूं प्रथम उक्त पदार्थोंविषे दोषदृष्टिहि संपादन करणी योग्य है ॥ सो तिनमें शरीरके दोष तो विष्णुपुराणमें कथन कियेहैं "मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ ॥ देहे चेत् प्रीतिमान्मूढो भविता नरकेपि सः" अर्थ० हे मूढ पुरुष मांस, रुधिर, पूय, विष्ठा, मूत्र नाडी, मज्जा, अस्थि, इत्यादिक मलिन पदार्थोंके समूहरूप शरीरविषे जो तूं प्रीति करताहै तो उक्त पदार्थोंकरके युक्त जो नरक है तिसमेंभी तेरी प्रीति होनी चाहिये इति ॥ तथा यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखाविषेभी कहाहै "भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्माश्रुदूषिकादूषिते विण्मूत्रवातपित्तसंघाते दुर्गंधे निःसारेस्मिन् शरीरे किं कामोपभोगैरिति" अर्थ० हे भगवन् अस्थि, चर्म, स्नायु, मज्जा, मांस, शुक्र, शोणित, श्लेष्मादिक दूषणोंकरके दूषित औ विष्ठा, मूत्र, वात, पित्तादिकोंके

समूहभूत तथा. निःसार दुर्गंधियुक्त इस शरीरमें हमारेकूं भोगोंसें क्या प्रयोजन है इति ॥ तथा स्त्रीके दोष योगवासिष्ठविषे वैराग्यप्रकरणमें रामचंद्रजीनें निरूपण कियेहैं "मांसपांचालिकायास्तु यंत्रलोलेंगपंजरे ॥ स्नाय्वस्थिग्रन्थिशालिन्यः स्त्रियः किमिव शोभनम् ॥ त्वङ्मांसरक्तबाष्पांबु पृथक्कृत्वा विलोचने ॥ समालोकय रम्यं चेत् किं मुधा परिमुह्यसि" अर्थ० स्नायु मज्जा अस्थि आदिकोंके संचयरूप स्तनादिक ग्रंथियोंकरके युक्त जो मांसकी पुतलीरूप स्त्री है तिसके यंत्रकी न्याई चंचल अवयवोंके समूहरूप शरीरविषे क्या पदार्थ रमणीय है अर्थात् कोईभी रमणीय नहि" तथा हे मूढपुरुष तूं स्त्रीके शरीरमें त्वचा, मांस, रुधिर, अश्रु, नेत्रादिक पदार्थोंकूं पृथक् पृथक् करके अवलोकन कर जो तिनमें क्या वस्तु सुंदर है नहि तो काहेको व्यर्थहि मोहकूं प्राप्त होताहै इति ॥ तथा धनके दोष पंचदशीमें विद्यारण्यस्वामीने कथन कियेहैं "अर्थानामर्जने क्लेशस्तथैव परिपालने ॥ नष्टे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् क्लेशकारिणः" अर्थ० प्रथम तो धनके संचय करणेमेंहि पराधीनताआदिक अनेक क्लेशोंकी प्राप्ति होवेहै पुना तिसके रक्षण करणेविषेभी रात्रीजागरणादिक अनेक दुःख होवेहैं तथा तिसके व्यय अथवा नाश होनेसें तो अत्यंतही क्लेश होवेहैं इसप्रकार सर्वदाहि दुःख देनेहारे धनकूं धिक्कार

हैं औ तिसके संग्रह करणेहारे पुरुषोंकूंभी धिक्कार है इति" तथा पुत्रके दोषभी पंचदशीमेंहि निरूपण कियेहैं

" अलभ्यमानस्तनयः पितरौ क्लेशयेच्चिरम् ॥
लब्धोपि गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते ॥
जातस्य ग्रहरोगादि कुमारस्य च मूर्खता ॥
उपनीतेप्यविद्यत्वमनुद्वाहश्च पंडिते ॥
पुनश्च परदारादि दारिद्र्यं च कुटुंबिनः ॥
पित्रोर्दुःखस्य नास्त्यंतो धनी चेन्म्रियते तदा ॥"

अर्थ० 'प्रथम तो पुत्रकी अप्राप्तिकालविषे मंत्र, यंत्र, पीपंलपूजनादिक प्रयत्नोंकरके मातापिताकूं अनेकहि क्लेश होवेहैं औ प्राप्तिके अनंतर जो गर्भपात होयजावे तौभी क्लेश होवेहैं औ पुना तिसके जन्मकालविषेभी अत्यंत पीडा होवेहै तथा 'जन्मके पश्चात् शनैश्चरादिक ग्रहोंकी बाधा औ दंतपतन शीतला आदिक रोगोंकरके दुःख होवेहै पुना कुमारअवस्थाविषे मूर्खतासें दुःख होवेहै पुना उपनयन करणेतें पश्चात् अविद्यावान् होनेसें दुःख होवेहै औ विद्वान्के हुयेभी पुना विवाहसेंविना 'क्लेश होवेहै तथा' विवाहके हुयेभी पुना परस्त्रीगमनादिकोंकरके दुःख होवेहै औ पुना कुटुंबवान् होनेतें दरिद्रीपणेसें क्लेश होवेहै औ जो धनवान् होवे तो तिसके मरणेसें दुःख होवेहै इस प्रकारसें मातापिताकूं मरणपर्यंतभी दुःखका अंत नहि होवेहै इति ॥ तथा गृहके दोष भागव-

तके एकादशस्कंधमें राजा यदुकेप्रति दत्तात्रेयजीने कथन किये हैं "गृहारंभो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते" अर्थ० हे राजन् गृहका आरंभ करणा केवल दुःखकाहि हेतु है, काहेतें जो पुरुष गृह बनाता है सोई तिसके वृद्धिह्रासादिकजन्य क्लेशका अनुभव करेहै औ जो गृहका आरंभ नहि करणा है सोई परम सुखका हेतु है, काहेतें जैसे सर्प अन्यरचित गृहविषे निवास करके सुखकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि विरक्त पुरुषभी अन्यरचित गुहाआदिक स्थानोंमें निवास करके सुखकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ इसहि प्रकार अनुक्त मित्र क्षेत्रादिक पदार्थोंविषेभी यथायोग्य दोष जानलेने इति ॥ ४ ॥ इस प्रकार योगरूप कल्पवृक्षके एक स्कंधका निरूपण करके अब दूसरा स्कंधरूप जो अभ्यासहै तिसकूं वर्णन करे हैं ॥

द्रुतविलंबितं वृत्तम् ॥

समपहाय तु दोषदृशाखिलं
विजनदेशंगतो गतसाध्वसः॥
समुपकल्प्य शुभासनमात्मनो
दृढमतिः क्रमशस्तु समभ्यसेत् ॥ ५ ॥

समपहायेति ॥ "समपहाय तु दोषदृशाखिलं" कहिये पूर्वश्लोकोक्त रीतिसें सर्व स्त्रीधनादिकोंविषे दोष देखकर मुमुक्षु पुरुषकूं सर्वकाहि परित्याग करणा योग्य है, यह वार्ता पंचदशीमेंभी कथन करीहै "संगी हि बाधते लोके निःसंगः सुखमश्नुते ॥ तस्मात्संगः परित्याज्यः सर्वदा सुखमिच्छता" अर्थ० जो पुरुष स्त्रीपुत्रादिकोंविषे आसक्त हुया तिनका परित्याग नहि करेहै सोई तिनके हानिवृद्धि औ उत्पत्तिनाशादिकजन्य क्लेशकूं प्राप्त होवेहै औ जो आसक्तिकरके रहित भया तिन सर्वका परित्याग करेहै सो समाधिजन्य परम सुखका अनुभव करेहै यातें जिस पुरुषकूं परमसुखकी इच्छा है तिसकूं सर्वदाहि सर्वके संगका परित्याग करणा चाहिये इति ॥ तथा श्रुतिमेंभी कहाहै "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः" अर्थः० यज्ञादिक कर्मकरके औ प्रजाकरके तथा विपुल धनकरकेभी मोक्षकी प्राप्ति नहि होवेहै किंतु एक त्यागकरकेहि केचित् ऋषिलोक मोक्षकूं प्राप्त होते भयेहैं इति . ॥ औ जो सर्वके त्याग करणेसें विना परिग्रहयुक्त गृहविषेहि योगसिद्धिकी वांछा करेहै सो मूर्ख है, यह वार्ता अन्य ग्रंथमेंभी कथन करीहै "मातुरंकगतो बालो गृहीतुं चंद्रमिच्छति ॥ यथा योगं तथा योगी संत्यागेन विनाऽबुधः" अर्थ० जैसे माताके अंकमें स्थितभया मूढ बालक चंद्रमाके

पकडनेकी वांछा करेहै तैसेहि जो साधक पुरुष सर्वके परि-त्याग कियेतेंविना योगसिद्धिकी वांछा करेहै सोभी बालककी न्याई मूर्खहि है इति ॥ यातें "विजनदेशगतः" कहिये साधककूं सर्व स्त्रीपुत्रादिकोंका परित्याग करके निर्जन औ पवित्र देशविषे जायकर निवास करणा चाहिये, यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतर उपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै "समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ॥ मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्" ॥

अर्थ० सर्वतरफसें समान औ पवित्र तथा कंकर अग्नि वालुका शब्द जलाश्रयादिकोंकरके वर्जित औ अत्यंत वा-युकरके रहित जो गुहाआदिक सुंदर औ मनके अनुकूल स्थान होवे तहांहि जायकर साधक पुरुषकूं योगाभ्यास क-रणा योग्य है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै ॥

"तपोवनं सुसंप्राप्य फलमूलोदकान्वितम्"
तत्र रम्ये शुचौ देशे ब्रह्मघोषसमन्विते ॥
स्वधर्मनिरतैः शांतैर्ब्रह्मविद्भिः समाश्रिते ॥
वारिभिश्च सुसंपन्नैः पुष्पैर्नानाविधैर्युते ॥
फलमूलैश्च संपूर्णे सर्वकामफलप्रदे ॥
देवाश्रमे वा नद्यां वा ग्रामे वा नगरेऽथवा ॥
सुशोभनं मठं कृत्वा सर्वरक्षासमन्वितम् ॥

त्रिकालस्नानसंयुक्तः स्वधर्मनिरतः सदा ॥
वेदांतश्रवणं कुर्वन् तस्मिन् योगं समभ्यसेत् ॥

अर्थ० नानाप्रकारके कंद मूल फल औ विमल जलाशय औ वेदध्वनिकरके युक्त तथा स्वधर्मविषे तत्पर ब्रह्मवेत्ता तपस्वियोंकरके अधिष्ठित औ सरोवरोंविषे नानाप्रकारके पुष्पोंकरके शोभायमान तथा सर्व ऋतुवोंके फलमूलोंकरके संपूर्ण तपोवन अथवा गंगादिक नदीके तीर वा देवालयादिक जो रमणीय औ पवित्र देश हैं तहांहि साधक पुरुषकूं जायकर सर्वप्रकारकी रक्षाकरके युक्त सुंदर मठ बनायकर त्रिकाल स्नानकरके युक्त होयकर औ वेदांतशास्त्रका श्रवण करते हुये योगाभ्यास करणा योग्य है इति ॥ सो योगाभ्यासके योग्य मठका लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे कथन कियाहै "अल्पद्वारमरंध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतं सम्यग्गोमयसांद्रलिप्तममलं निःशेषजंतूज्झितम् ॥ बाह्ये मंडपवेदिकूपरुचिरं प्राकारसंवेष्टितं प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः ॥" अर्थ अल्पद्वारवान् औ गर्तविवरादिकोंकरके वर्जित तथा न अतिऊचा औ न अतिनीचे तथा सम्यक्प्रकारसें गोबरादिकोंकरके लिपायमान और स्वच्छ तथा सर्व मूपकादिक जंतुवोंकरके रहित औ बाहरसें मंडपवेदिकूपादिकोंकरके रमणीय तथा च्यारि तरफमें भित्तिकरके वे-

दित जो स्थान है तिसकूंहि योगीलोकोंने योगाभ्यसके योग्य कथन किया है इति॥ तथा नंदिकेश्वरपुराणमेंभी कहाहै॥

मंदिरं रम्यविन्यासं मनोज्ञं गंधवासितम् ॥
धूमामोदादिसुरभि कुसुमोत्करमंडितम् ॥
मुनितीर्थनदीवृक्षपद्मिनीशैलशोभितम् ॥
चित्रकर्मनिबद्धं च चित्रभेदविचित्रितम् ॥
कुर्याद्योगगृहं धीमान् सुरम्यं शुभवर्त्मना ॥
दृष्ट्वा चित्रगतान् शांतान् मुनीन् याति मनःशमम् ॥
सिद्धान् दृष्ट्वा चित्रगतान् मतिरभ्युद्यमे भवेत् ॥
मध्ये योगगृहस्याथ लिखेत् संसारमंडलम् ॥
श्मशानं च महाघोरं नरकांश्च लिखेत् क्वचित् ॥
तान् दृष्ट्वा भीषणाकारान् संसारे सारवर्जिते ॥
अनवसादो भवति योगी सिद्ध्यभिलापुकः ॥

अर्थ० मनोहर औ सुंदर विन्यासकरके युक्त औ धूपादिकसुगंधियोंकरके सुगंधित तथा नानाप्रकारके पुष्पोंकरके युक्त वृक्षोंसें शोभायमान औ मुनियोंके निवास, नदी वृक्ष पर्वतादिकोंके समीपं तथा स्वच्छ मार्गोंकरके युक्त औ मध्यसें योगीजनोंकी शांत मूर्तियोंकरके चित्रित होवे जिनकूं देखकरके साधक पुरुषकूं योगविषे विश्वास औ उत्साह उत्पन्न

१ रचना. २ आश्रयस्थान.

होवे, तथा तिस मठमें किसी स्थलविषे संसारमंडल औ श्मशान तथा घोर नरकोंके चित्रभी लिखेहोवें जिन भयंकराकारोंके देखनेसें योगसिद्धिकी अभिलाषावान् योगी इस निःसार संसारचक्रसें उपरामताकूं प्राप्त भया योगाभ्यासविषे अप्रमत्त होवेहै इति ॥ इस प्रकारके मठविषे "गतसाध्वसः" कहिये साधक पुरुषकूं सर्पव्याघ्रादिकोंके भयतें रहित होयकर निवास करणा चाहिये, काहेतें अपणे प्रारब्धकर्मसें विना सर्पव्याघ्रादिक कोईभी इस पुरुषकूं किंचिन्मात्रभी दुःख नहि देसकैहै, यह वार्ता भागवतके सप्तम स्कंधमेंभी कथन करीहै "पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोपि तदीक्षितो वने गृहेपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति"

अर्थ० मार्गविषे पतितभईभी वस्तु प्रारब्धकर्मकरके रक्षित रहती है औ जो प्रारब्धमें नहि हो तो अतियत्नसें घरमें रखी हुईभी नाशकूं प्राप्त होवे है तथा प्रारब्ध कर्मकरके रक्षण किया हुआ अनाथ पुरुषभी सर्पव्याघ्रादिकोंकरके संकुल गह्वर वनविषेभी जीवता रहताहै औ प्रारब्धकर्मकरके हनन किया हुआ तो सर्व तरफसें रक्षाकरके युक्त स्थानविषे स्थितभयाभी मृत्युकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा भर्तृहरिनेभी नीतिशतकमें कहाहै "वने रणे शत्रुजलाग्नि-

मध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ॥ सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षंति पुण्यानि पुरा कृतानि" अर्थ० गहन वनं औ शत्रुवोंके मध्यमें तथा गंभीर जल औ प्रज्वलित अग्निविषे तथा महासमुद्र औ पर्वतके शिखरमें तथा रात्रिविषे शयनकाल औ विषभक्षणादिकजन्य प्रमादकालविषे तथा विकट मार्गमेंभी पूर्व अनुष्ठान कियेहुये अपणे सुकृतकर्महि इस जीवकी रक्षा करतेहैं इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वमेंभी कहाहै "नाकाले म्रियते जंतुर्विद्धः शरशतैरपि ॥ तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति" *अर्थ० अनेक तीक्ष्ण बाणोंकरके वेधन कियाहुयाभी पुरुष* विना कालसें मृत्युकूं नहि प्राप्त होवेहै औ कालके प्राप्त भये तो शुष्क तृणके अग्रभागकरके हंनन कियाहुयाभी नहि जीवेहै इति ॥ किंच साधनपुरुषकूं निर्जनदेशमें भोजनाच्छादनादिकोंकी चिंताभी नहि करणी चाहिये, काहेतें शरीरका पोषण तो प्रारब्धकर्महि करणेहारा है, यह वार्ता विवेकचूडामणिमें शंकराचार्यनेभी कथन करीहै "प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः ॥ धैर्यमालंब्य यत्नेन तत्वाभ्यासं समाचरेत्" अर्थ० प्रारब्धकर्महि इस शरीरका पोषण करेगा इस प्रकारका दृढ निश्चय करके औ परम धर्यका अवलंबन करके शास्त्रोक्त प्रयत्नसें आत्मतत्त्वका अभ्यास करणा

योग्य है इति ॥ तथा भागवतके सप्तमस्कंधविषेभी कहाहै "स रक्षितां रक्षति यो हि गर्भे" अर्थ० जिस ईश्वरने कृमिआदिकोंकरके युक्त माताके उदरमें अधोमुख इस शरीरका रक्षण कियाहै सोई अवभी करेगा इति ॥ तथा गीताके नवमाध्यायविषे भगवान्नेंभी कहाहै " अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ॥ तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यम् " अर्थ० हे अर्जुन जो पुरुष मेरेहि आश्रय होयकर योगअभ्यासद्वारा मेरी निरंतर उपासना औ चिंतन करतेहैं तिन नित्ययुक्त पुरुषोंका मैं स्वयमेव योगक्षेम वहन करताहूं इति ॥ इस प्रकार भय तथा चिंतादिकोंका परित्याग करके "संप्रुपकल्प्य शुभासनं" कहिये पूर्वोक्तलक्षणमठविषे दर्भ मृगचर्मादिकोंकरके कोमल आसन बनानाचाहिये, यह वार्ता गीताके षष्ठाध्यायविषेभी कथन करीहै—

"नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्"

अर्थ० प्रथम तो दर्भ बिछावे तिसपर मृगचर्म पुनः तिसके ऊपर निर्मल वस्त्र बिछावे इस प्रकारसें नतो अतिऊंचा औ न अतिनीचा आसन बनानाचाहिये इति ॥ सो यह आसन " आत्मनः " कहिये अपणा होनाचाहिये दूसरेका नहि,

१ अप्राप्तवस्तुकी प्राप्ति करणेका नाम योग है औ प्राप्तवस्तुकी रक्षा करणेका नाम क्षेम है.

काहेतें दूसरेके आसनपर यथेष्ट अभ्यास नहि संभवैहै . किंतु तिसके अधीन रहना पडताहै, यह वार्ताभी गीताके षष्ठांध्याय-मेंहि कथन करीहै "शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः" अर्थ० साधकपुरुषकूं पूर्वोक्त पवित्रदेशविषे अपणा स्थिर आसन करणा चाहिये दूसरेके आसनेपर योगाभ्यास नहि करणा चाहिये इति ॥ तथा मनुस्मृतिमेंभी कहाहै "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ॥ एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः" अर्थ० यावत्मात्र पराधीनता है सो सर्वहि दुःखका हेतु है औ यावत्मात्र स्वतंत्रता है सो सर्वहि सुखका हेतु है विवेकी-पुरुषकूं संक्षेपसें यहि सुखदुःखका लक्षण जानना चाहिये इति ॥ तथा "दृढमतिः" कहिये मरणपर्यंतका निश्चयकरके योगाभ्यास करणा चाहिये दिवस औ मासोंकरके योगसिद्धि-की वांछा नहि करणा चाहिये इस वार्तापर जीवन्मुक्तिप्रकरण-विषे विद्यारण्यस्वामीने एक दृष्टांत लिखाहै । सो जैसे किसी एक ब्राह्मणने आपणे पुत्रकूं वेदाध्ययन करणेके अर्थ किसी अन्य ग्राममें भेजा सो जब तिसकूं गये हुये षट् दिवस .व्यतीत भये तो सो ब्राह्मण अपणी स्त्रीकेप्रति कहने लगा हे प्रिये वेद तो लोकविषे च्यारिहि प्रसिद्ध हैं औ हमारे पुत्रकूं गमन किये.तो आज षट् दिवस व्यतीत होगयेहैं इतना विलंब किस कारणसें हुया इति ॥ सो जैसे इस प्रकारकी इ-

च्छावान् ब्राह्मण मूर्ख था तैसेहि जो साधक कितनेक दि-
वस अथवा मासोंविषे योगसिद्धिकी वांछा करैहै सोभी मू
र्खहि है इति ॥ तथा पतंजलिनेभी योगसूत्रोंमें कहाहै
"सतु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः" अर्थ०
सो अभ्यास दीर्घकाल औ निरंतर तथा आदरपूर्वक सेवन
किया हुयाहि दृढ अवस्थाकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा योगवा-
सिष्ठके उपशमप्रकरणमें वसिष्ठजीनेभी कहाहै " जन्मांतरचि-
राभ्यस्ता राम संसारसंस्थितिः ॥ सा चिराभ्यासयोगेन वि-
ना न क्षीयते कचित् " अर्थ० हे रामचंद्र जन्मजन्मांतरोंविषे
दीर्घकालसें जो संसारकी वासनाका अभ्यास होय रहाहै
सो दीर्घकालपर्यंत योगाभ्यास कियेतें विना अन्य किसी
उपायकरके क्षीण नहिं होवैहै इति ॥ इस स्थलविषे एक लौ-
किक इतिहास है सो संक्षेपसें यहां लिखेहैं ॥ जैसे कोई एक
ब्राह्मण रामचंद्रजीका अत्यंत भक्त था सो एक समयविषे दु-
र्भिक्षकरके पीडित भया एकाकी परदेशकूं गमन करता भया तो
मार्गमें एक म्लेच्छोंका ग्राम आया सो जिस कालविषे भिक्षा-
के अर्थ तिस ग्राममें ब्राह्मणने प्रवेश किया तो तिन म्लेच्छोंने
पकडकर बलात्कारसें तिसकी शिखा औ यज्ञोपवीत उतारक-
रके अपणी जातिमें मिलाय लिया औ अपणी जातिके सर्व
कर्म तिसकूं पढाय दिये परंतु जिस कालविषे सो ब्राह्मण

तिन म्लेच्छोंके साथ मिलकर निमाज पढकर दोनों हाथ खुलेकरके दुवा मांगे तो तिसके मुखसें या खुदाके स्थलमें या रामजी ऐसा शब्द निकसे तो एक दिवस तिन म्लेच्छोंने क्रोधकरके कहा हे दुष्ट अब तो तुं हमारे मतमें मिलगयाहै पुना काहेको रामका नाम लेताहै तो तिस ब्राह्मण म्लेच्छने कहा, हे मित्रो चालीस वर्षपर्यंत मैं ब्राह्मण रह्याहुं औ अब तीन च्यारि मासमें तुमारी जातिविषे मिलाहुं सो चालीस वर्षसें रामशब्दने मेरे हृदयमें प्रवेश किया हुयाहै यातें किसप्रकारसें सो शीघ्रहि निकस सकैहै इति ॥ तैसेहि अनेक जन्मजन्मांतरोंसें संसारकी वासनाओंका जो हृदयविषे प्रवेश होयरहाहै सो किस प्रकारसें तिनकी अल्पकालके योगाभ्यासकरके निवृत्ति होयसकैहै ॥ यातें साधक पुरुषकूं चिरकालपर्यंतहि अभ्यास करणा योग्यहै ॥ तथा "क्रमशः" कहिये प्रथम यम पश्चात् नियम तदनंतर आसन तिसके पीछे प्राणायाम पश्चात् प्रत्याहार तदनंतर धारणा तिसके पश्चात् ध्यान तदनंतर समाधि इस क्रमसें "समभ्यसेत्" कहिये वक्ष्यमाण रीतिसें उक्त योगके अष्ट अंगोंका अभ्यास करना चाहिये क्रमसेंविना नहि, काहेतें जैसे सीढीकेविना पुरुष गृहके ऊपरभागविषे आरोहण नहि करसकैहै तैसेहि साधक पुरुष यमनियमादिकरूप सीढीकेविना निर्विकल्पसमाधिरूप गृहके ऊपरभा-

गविषे आरोहण करणेकूं समर्थ नहि होवेहै ॥ तथा योगभा-
ष्यविषें व्यासजीनेभी कहाहै—

"योगेन योगो ज्ञातव्यो योगायोगः प्रवर्तते ॥
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम् ॥"

अर्थ० योगकी प्रथम भूमिकासें दूसरी भूमिका जाननी चाहिये अर्थात् प्रथम भूमिकाके जय हुये पश्चात् दूसरीका आरंभ करणा चाहिये काहेतें प्रथम भूमिकाके जय हुयेतें अनंतरहि दूसरीभूमिकाविषे साधककी प्रवृत्ति होवेहै इस प्रकार भूमिका जय क्रमसें जो योगमें अप्रमत्त होवेहै सोहि योगी चिरकालपर्यंत पृथिवीविषे रमण करेहै अर्थात् योग-सिद्धिकी प्राप्तिद्वारा चिरंजीवी होयकर विचरेहै इति ॥ यातें साधक पुरुषकूं उक्तक्रमसेंहि योगाभ्यास करणा योग्य है सो अभ्यासका लक्षण योगसूत्रोंमें पतंजलिने कथन कियाहै "तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः" अर्थ० निर्विकल्पसमाधिकी स्थितिके अर्थ जो योगके अंगोका वारंवार आवर्तन करणाहै तिसका नाम अभ्यास है इति ॥ ५ ॥

शंका ॥ पूर्वोक्त श्लोकविषे तुमने कहा जो मुमुक्षु पुरुषकूं एकांतदेशविषे मठ बनायकर तिसमें आसन जमायकरके यमनियमादिक क्रमसें योगाभ्यासकरणा योग्यहै सो वार्ता अन्यथासिद्ध है, काहेतें कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतर उपनिषत्में कहाहै

"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय" अर्थ० तिस ब्रह्मके जाननेसें हि यह अधिकारी पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवेहै ब्रह्मज्ञानकेविना मोक्षके अर्थ कोई दूसरा उपाय नहिंहै इति ॥ तथा तहांहि षष्ठाध्यायविषेभी कहाहै "यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥ तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति" अर्थ० जिस कालविषे मनुष्य आकाशकूं चर्मकी न्याई आवेष्टन करलेवेंगे तिस कालमें विना ब्रह्मज्ञानसें जन्ममरणरूप संसारदुःखकोभी निवृत्ति होजावेगी अर्थात् जैसे मनुष्य आकाशकूं कदाचित्भी आवेष्टन नहि करसकेंहै तैसेहि ब्रह्मज्ञानसें विना कदाचित्भी संसारदुःखकी निवृत्ती नहि होवेहै इति ॥ तथा अन्यस्मृतिमेंभी कहाहै "ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते" अर्थ० ब्रह्मज्ञानसेंहि कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवेहै जिसकरके मुमुक्षु पुरुष सर्वबंधनोंसें मुक्त होवेहै इति ॥ तथा विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कथन कियाहै "नान्योऽस्ति पंथा भवबन्धमुक्तेर्विना स्वतत्त्वावगमं मुमुक्षोः" अर्थ० मुमुक्षुपुरुषकूं आत्मतत्त्वके बोधविना मोक्षके अर्थ दूसरा कोई मार्ग नहिंहै इति ॥ तथा गीताके चतुर्थाध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥ सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते" अर्थ० हे अर्जुन ब्रह्मज्ञानके समान

इस जगत्‌विषे दूसरा कोई पदार्थ पवित्र नहिंहै ॥ तथा श्रुति स्मृतिविहित जो यज्ञादिक कर्म हैं तिन सर्वकाहि . ज्ञानके-विषे अंतर्भाव होवेहै इति ॥ इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृति-योंविषे केवल ब्रह्मज्ञानकूहि मोक्षकी हेतुता कथन करीहै सो ज्ञान उपनिषदादिक वेदांतवाक्योंके श्रवणकरणेतें होवेहै अन्यथा नहिं, यह वार्ता यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषत्‌में याज्ञवल्क्यनेभी कथन करीहै "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" अर्थ० हे शकल्य मैं तेरेसें उपनिषत्‌विषे प्रतिपादन किया जो पुरुष है तिसकूं पूछताहूं इति ॥ तो तुम चिरकाल औ अ-त्यंत प्रयासकरके साध्य तथा अनेक विघ्नोंकरके युक्त जो योगाभ्यास है तिसकूं काहेतें विधान करतेहो ॥ किंच "एतेन योगः प्रत्युक्तः" इस शारीरकसूत्रविषे महर्षि व्यास औ तिसके ऊपर भाष्यकरणेहारे शंकराचार्यने योगका खंडन कियाहै यातेंभी तुमारा कथन अयुक्त है ॥ इस प्र-कारकी शंकाके भयेतें समाधान कहेहैं ॥

इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

ज्ञानं वदन्तीह विमोक्षकारणं
तज्जायते नैव विलोलचेतसि ॥

लौल्यं न योगेन विना प्रशाम्यति ·
तस्मात्तदर्थं हि यतेत साधकः ॥६॥

ज्ञानमिति ॥ यद्यपि ब्रह्मज्ञानहि मोक्षकी प्राप्तिमें कारण है अन्य साधन नहि यह जो पूर्वोक्त श्रुतिस्मृतियोंका कथन है सो यथार्थ है तथापि चित्तकी एकाग्रताके हुयेविना केवल वेदांत श्रवणकरणेतें तिसें ज्ञानकी प्राप्ति होवे नहि काहेतें जैसे जिस कालविषे जल वायुकरके चलायमान होवेहै तो तिसविषे मुखका आभास स्पष्ट नहि प्रतीत होवेहै तैसेहि जिस कालविषे नानाप्रकारके संकल्पविकल्परूप वायुकरके बुद्धिरूप जल क्षोभायमान अर्थात् चंचल होवेहै तो आत्मारूप मुखका संशय औ विपरीत भावनासें रहित स्पष्टबोध नहि होवेहै ॥ यह वार्ता यजुर्वेदकी कठउपनिषन्में भी निरूपण करीहै "दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" अर्थ० यह आत्मा सूक्ष्मदर्शी विद्वान् पुरुषोंकरके सूक्ष्मबुद्धिके अग्रभागमेंहि देखा जावेहै स्थूलबुद्धिकरके नहि काहेतें जैसे सूचिकाके छिद्रविषे सूक्ष्म तागाकाहि प्रवेश संभवेहै जल निकासनेकी स्थूलरज्जुका नहि औ जैसे अतलसादिक सूक्ष्मवस्त्रके सीवनेमें सूक्ष्म सूचिकाहि उपयोगी होवेहै क्षेत्रके खारुर्पण करणेहारा फाटा नहि तैसेहि आत्मत-

स्वके प्रतिबिंब ग्रहण करणेविषे सूक्ष्मबुद्धिहि समर्थ होवेहै स्थूल नहि ॥ तिनमें नानाप्रकारके संकल्पविकल्पोंकरके चंचल जो बुद्धि है सो स्थूल कहियेहै औ जो एकाग्र बुद्धि है तिसका नाम सूक्ष्म है ॥ सो बुद्धिकी चंचलताका अभाव विना योगाभ्यासके नहि होवेहै किंतु योगाभ्यासकरकेहि होवेहै, यह वार्ता ध्यानदीपमें पंचदशीकारनेभी कथन करीहै "योगो मुख्यस्ततस्तेषां धीदर्पस्तेन नश्यति" अर्थ० जिन मुमुक्षुपुरुषोंका चित्त नानाप्रकारके संकल्पविकल्पोंकरके चंचल है तिनकूं योगाभ्यासहि चित्तकी एकाग्रताविषे मुख्य साधन है काहेतें योगाभ्यासकरकेहि बुद्धिकी चंचलताका नाश होवेहै इति ॥ शंका ॥ योगाभ्यासके विना जप, तप, यज्ञ, उपवास, उपासना आदिक अन्य उपायोंकरकेभी शुद्धिद्वारा बुद्धिकी एकाग्रता संभवेहै तो योगाभ्यासका क्या प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ यद्यपि जप, तप, उपासना आदिकोंकरकेभी बुद्धिकी एकाग्रता संभवेहै तथापि जिस प्रकारसें योगाभ्यासकरके बुद्धिकी शीघ्र एकाग्रता होवेहै तैसे अन्य उपायोंकरके नहि होवेहै काहेतें सर्व जप, तप, यज्ञादिकोंसें योगाभ्यासकूं अधिक फलकी हेतुता है, यह वार्ता अथर्ववेदकी अथर्वशिखाउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै "क्षणमेकमास्थाय क्रतुशत-

स्यापि फलमवाप्नोति ” अर्थ० एकक्षणमात्रभी समाधिविषे स्थित भया योगी सौ अश्वमेधयज्ञके फलकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा अत्रिसंहितामेंभी कहाहै “योगात्संप्राप्यते ज्ञानं योगाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ योगः परंतपो ज्ञेयस्तस्माद्युक्तः समभ्यसेत् ॥ न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया ॥ गतिं गंतुं द्विजाः शक्ता योगात्संप्राप्नुवंति याम्” अर्थ० योगकरकेहि ज्ञानकी प्राप्ति होवेहै औ योगसेंहि धर्मकी प्राप्ति होवेहै तथा योगहि परम तप है यातें सर्वदाहि योगका अभ्यास करणा योग्य है ॥ तथा योगाभ्यासकरके जिस गतिकी प्राप्ति होवेहै सो तीव्र तपकरके औ मंत्रोंके जप करके तथा यज्ञोंके अनुष्ठान करणेसेंभी तिस गतिकूं द्विजलोक प्राप्त होनेमें समर्थ नहि होवेहैं इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै “इज्याचारदमाहिंसातपःस्वाध्यायकर्मणाम् ॥ अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्” अर्थ० इज्या, आचार, इन्द्रियोंका दमन, अहिंसा, तप, वेदाध्ययन, इत्यादिक सर्व कर्मोंसे योगाभ्यासकरके जो आत्माका साक्षात्कार करणा है सो परमधर्म है इति ॥ किं च योगाभ्यासके विना केवल वेदांतवाक्योंके श्रवण करणेतें ज्ञानकी भी प्राप्ति नहि होवेहै यह वार्ता दक्षस्मृतिविषे भी कथन करीहै ॥

"स्वसंवद्यहि तद्ब्रह्म कुमारीस्त्रीसुखं यथा ॥ अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि घटं यथा" अर्थ० जैसे यौवनावस्थाकी स्त्री पतिके संभोगजन्य सुखकूं आपहि अनुभव करेहै तैसेहि सो ब्रह्मानन्दका स्वयमेव योगीलोकहि अनुभव करतेहैं ॥ औ जैसे जन्मसें अंध पुरुषकूं घटकें स्वरूपका ज्ञान नहि होवेहै तैसेहि अयोगी लोक तिस ब्रह्मकूं नहि जानसकैहैं इति ॥ तथा कपिलदेवजीनेभी सांख्यसूत्रोंमें कहाहै "नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत्" अर्थ० विना अभ्यासके केवल उपदेशश्रवणमात्रकरके हि कृतकृत्यताकी प्राप्ति नहि होवेहै काहेतें दैत्योंके पति विरोचनकूं ब्रह्मासें उपदेश श्रवणकरणेतंभी ज्ञानकी प्राप्ति नहि होती भयीहै इति ॥ तथा श्रुतिमेंभी कहाहै "अथ तद्दर्शनाभ्युपाये योगः" "अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति" अर्थ० तिस आत्माके साक्षात्करणेमें एक योगहि उपाय है दूसरा नहि ॥ तथा योगाभ्यासद्वाराहि तिस आत्मादेवकूं जानकर धीर पुरुष हर्षशोककरके उपलक्षित जन्ममरणरूप संसारका परित्याग करेहै इति ॥ किंच ज्ञानका फलभूत जो मोक्ष है तिसकीभी योगाभ्यासकेविना प्राप्ति नहि होवेहै किंतु योगाभ्यासकरकेहि होवेहै, यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्‌मेंभी कहीहै "त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं श-

रीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ॥ ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि" अर्थ० शिर ग्रीवा औ कटी इन तीनोंकूं स्तब्ध करके औ शरीरकूं अचल धारण करके तथा चक्षु आदिक इन्द्रियोंकूं मनसें नियमन करके ॐकाररूप नौकाद्वारा योगीपुरुष हर्ष शोक जन्ममरणादिक भयरूप सर्व नदियोंकूं तरजावेहै इति ॥ तथा स्कंदपुराणमेंभी कहाहै—

"आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृते नहि ॥
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिद्ध्यति"

अर्थ० यद्यपि आत्मज्ञानकरकेहि मोक्षकी प्राप्ति होवेहै परंतु सो ज्ञान विना योगके नहि उत्पन्न होवेहै औ तिस योगकी चिरकालपर्यंत अभ्यास करणेसेंहि सिद्धि होवेहै इति ॥ तथा कूर्मपुराणमें महादेवजीनेभी कहाहै "योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपंजरम् ॥ प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति" अर्थ० प्रथम योगरूप अग्नि सर्व पापोंके समूहकूं भस्म करेहै पश्चात् शुद्ध भये अंतःकरणमें ज्ञानकी उत्पत्ति होवेहै तदनंतर कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा योगवासिष्ठमें भी कहाहै "दुःसहा राम संसारविषवेगा विषूचिका ॥ योगगारुडमंत्रेण पावनेनोपशाम्यति" अर्थ० हे रामचंद्रजी यह संसाररूप विषविषूचिकाका वेग वडा दुःसह है सो

योगरूप गरुडके मंत्र करके शांतिकूं प्राप्त होवेहै अन्यथा नहिं, इति ॥ तथा गरुडपुराणमैंभी कहाहै "भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्" अर्थ० जन्ममरणरूप संसारके तापकरके तप्त भये पुरुषोंकूं योगाभ्यासहि परम औषधरूप है इति॥, तथा विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कहाहै—

"समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं श्रोत्रादि चेतस्त्वमहं चिदात्मनि ॥ त एव मुक्ता भवपाशबंधनैर्नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिनः" अर्थ० जो पुरुष घटपटादिक बाह्य प्रपंच तथा श्रोत्रादिक इन्द्रिय चित्त त्वं अहं आदिक आंतर प्रपंचकूं चिदात्मा साक्षीविषे विलयकरके समाधिस्थ होवेहै सोई पुरुष जन्ममरणरूप संसारके बंधनोंसें मोक्षकूं प्राप्त होवेहैं औ जो केवल परोक्ष आत्मतत्वके वक्ता औ श्रोता हैं सो नहि प्राप्त होवेहैं इति ॥ तथा पंचदशीमें विद्यारण्यस्वामीनेभी कहाहै "वाक्यमप्रतिबंधं सत्प्राक् परोक्षावभासते ॥ करामलकवद्बोधमपरोक्षं प्रसूयते" अर्थ० समाधिकालविषे मलविक्षेप प्रारब्धादिक दोषोंकरके अप्रतिबंधित भया तत्त्वमस्यादिक महावाक्य समाधिसें पूर्वपरोक्ष प्रतीत भये आत्मतत्त्वविषे करामलककी न्याईं अपरोक्ष ज्ञानका जनक होवेहै इति ॥ इस प्रसंगपर योगबीजनामा ग्रंथमें महादेव औ पार्वतीजीका संवाद लिखाहै सो संक्षेपसें यहां दिखावेहैं

पार्वत्युवाच

"ज्ञानादेव हि मोक्षं च वदंति ज्ञानिनः सदा ॥
न कथं सिद्धयोगेन योगः किं मोक्षदो भवेत्"

अर्थ॰ पार्वतीने प्रश्न किया हे ईश्वर केवळ ज्ञानकरकेंहि मोक्षकी प्राप्ति होवेहै अन्य साधनकरिके नहि ऐसे सर्वहि ज्ञानी लोक कथन करतेहैं तो तुम सिद्ध भये योगकूंहि किस प्रकारसें मोक्षका देनेहारा कथन करतेहो इति ॥

ईश्वरउवाच

"ज्ञानेनैवहि मोक्षं च तेषां वाक्यं तु नान्यथा ॥
सर्वे वदंति खड्गेन जयो भवति तर्हि किम् ॥
विना युद्धेन वीर्येण कथं जयमवाप्नुयात् ॥
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत् ॥

अर्थ॰ हे प्रिये केवळ ज्ञानसेंहि मोक्षकी प्राप्ति होवेहै अन्य साधनसें नहि, यद्यपि यह तिनका कथन यथार्थ है तथापि जैसे सर्व लोक कहतेहैं जो खड्गसें शत्रुका पैराजय होवेहै तो इतना कहनेसें क्या हुवा सो जैसे युद्ध औ बळसें विना केवळ खड्गकरके शत्रुका पराजय नहि होवेहै तैसेंहि योगके विना केवळ ज्ञानकरके मोक्षकी प्राप्ति नहि होवेहै इति ॥ तथा अन्य श्लोककरकेंभी तहांहि कहाहै "ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोपि जितेन्द्रियः । विनायोगेन देवोपि न मोक्षं लभते प्रिये

अर्थ० हे प्रिये ज्ञाननिष्ठ होवे अथवा विरक्त होवे चाहे सर्व धर्मोंके जाननेहारा होवे अथवा सर्व इन्द्रियोंके जीतनेहारा होवे किंच देवताभी होवे तो बिना योगाभ्यासके मोक्षपदकूं नहि प्राप्त होवेहैं इति ॥ शंका ॥ तुमने कहा जो योगाभ्यासके बिना अपरोक्षज्ञानकी औ तिसके फलभूत कैवल्यमोक्षकी प्राप्ति नहि होवेहै सो वार्ता असंभव है काहेतें जनक मतदंचादिकोंकूं विनाहि योगाभ्यासके केवल वेदांतवाक्योंके श्रवणमात्रसेंहि अपरोक्षज्ञानकी प्राप्ति पुराणादिकोंविषे श्रवणमें आवेहै ॥ समाधान ॥ जनकादिकोंकूंभी पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये हुये योगाभ्यासके संस्कारोंसेंहि ज्ञानकी प्राप्ति होती भयीहै केवल वेदांतश्रवणसें नहि यह वार्ता पुराणोंमेंभी निरूपण करीहै—

"जैगीषव्यो यथा विप्रो यथा चैवासितादयः ॥
क्षत्रिया जनकाद्यास्तु तुलाधारादयो विशः ॥
धर्मव्याधादयः समशूद्राः पैलवकादयः ॥
मैत्रेयी सुलभा गार्गी शांडिली च तपस्विनी ॥
एते चान्ये च बहवो नीचयोनिगता अपि ॥
ज्ञाननिष्ठां परां याताः पूर्वाभ्यस्तस्ययोगतः ॥"

अर्थ०जैगीषव्य औ असित इत्यादिक ब्राह्मण तथा जनकादिक क्षत्रिय औ तुलाधारादिक वैश्य तथा धर्मव्याध

औ पैलवकादिक सत्तशूद्र तथा मैत्रेयी सुलभा गार्गी शांडिली आदिक स्त्रियां इनतें आदिलेकर अन्यभी अनेकहि नीचयोनियोंमें स्थित भये हनुमान् जांववानादिक जो परमज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त होते भयेहैं सो सर्वहि पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान कियेहुये अपणे योगाभ्यासके संस्कारोंकरकेहि प्राप्त होते भयेहैं इति ॥ किंच यजुर्वेदकी बृहदारण्यकउपनिषत्में लिखाहै "तदेव सक्तः सहकर्मणैति लिंगं मनो यत्र निषक्तमस्य" अर्थ० अंतकालविषे इस पुरुषका मन जिस वस्तुविषे आसक्त होवेहै तिसही वस्तुकूं सहित कर्मोंके प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा गीताके अष्टमाध्यायविषेभी कहा है—

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ॥
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥"

अर्थ० हे अर्जुन देहके अवसानकालविषे यह पुरुष जिसजिसपदार्थका स्मरण करता हुआ शरीरका परित्याग करेहै तिस तिस पदार्थकूंहि सर्वदा तिसकी भावनाकरके युक्त भया प्राप्त होवेहै इति यातें मृत्युकालकी अत्यंत व्यथाकरके मूर्छित भये योगहीन केवल ज्ञानी पुरुषकूं अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारकी स्मृति नहि संभवेहै यह वार्ता योगबीजमें महादेवजीनेभी कथन करीहै—

"पिपीलिका यदा लग्ना देहे ध्यानाद्विमुच्यते ॥
असौ किं वृश्चिकैर्दष्टो देहांते वा कथं स्मरेत्"

अर्थ० हे देवि योगहीन पुरुषके शरीरसाथ जिस कालविषे एक पिपीलिकाकाभी स्पर्श होवेहै तौ तिसही कालविषे सो, ध्यानसें व्युत्थानकूं प्राप्त होवैहै तो देहके अंतकालविषे जब अनेक वृश्चिकोंके काटनेसमानःव्यथाकूं प्राप्त हेवेगा तो तिस कालविषे कैसे स्मरण करेगा इति ॥ औ योगयुक्त पुरुषको तो स्वेच्छो मृत्यु होवेहै यातें तिसकूं अंतकालविषेभी स्मृति संभवेहै ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी उद्दालक वीतहव्य शुकदेवादिकोंपै स्वेच्छानुसार शरीरके परित्याग करणेसेंही मोक्षपदकी प्राप्ति कथन करीहै ॥ तथा यजुर्वेदकी कठउपनिषत्मेंभी कहाहै "शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका ॥ तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवंति" अर्थ० एकसौ औ एक हृदयकी मुख्य नाडी हैं तिनमेंसें सुषुम्नानामक एक नाडी मस्तकमें ब्रह्मरंध्रपर्यंत गईहै तिस नाडीद्वारा जो पुरुष प्राणोंकूं ब्रह्मरंध्र भेदन करके परित्याग करैहै सोई मोक्षकूं प्राप्त होवेहै औ जिस पुरुषके प्राण मुख नासिका आदिक द्वारोंसें निर्गमन करैहैं सो सर्प

१ कीडी.

पशु मनुष्य पक्षी आदिक योनियोंकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा गीताके अष्टमाध्यायमेंभी कहाहै—

"प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव । भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्"

अर्थ० हे अर्जुन जो पुरुष मरणकालविषे मेरी भक्ति औ मनकी एकाग्रता करके युक्त भया योगबलकरके भ्रुवोंके मध्यप्रदेशद्वारा ब्रह्मरंध्रकूं भेदन करके प्राणोंका परित्याग करेहै सो परम दिव्य पुरुष जो परब्रह्म है तिसकूं प्राप्त होवेहै अर्थात् मोक्षकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषे भीष्मपितामहने युधिष्ठिरकेप्रतिभी कहाहै—

"यथा चानिमिषाः स्थूला जालं छित्वा पुनर्जलम् ॥
प्रविशंति यथा योगास्तत्पदं वीतकल्मषाः ॥
यथैव वागुरां छित्वा बलवंतो यथा मृगाः ॥
प्राप्नुयुर्विमलं मार्गं विमुक्ताः सर्वबंधनैः ॥
अबलाश्च मृगा राजन् वागुरासु तथा परे ॥
विनश्यंति न संदेहस्तद्वद्योगबलादृते" ॥

अर्थ० हे राजन् जिस प्रकारसें स्थूल मगर मच्छ बलसें जालकूं भेदन करके पुनः अपणे निवासस्थान जलविषे प्रवेश करतेहैं तैसेहि योगी लोक प्रारब्धकर्मरूप जालकूं योगरूप बलसें भेदन करके सर्व पापोंसें रहित भये पुनः अपने निवा-

स्वस्थान ब्रह्मविषे एकीभावकूं प्राप्त होवेहैं ॥ तथा जैसे बल-वान् मृग जालकूं भेदन करके सर्व बंधनोंसे मुक्त हुए अभि-मत विमल मार्गकूं प्राप्त होवेहैं औ जो बलसें हीन होवेहैं सो जालविषेहि बंधनकूं प्राप्त भये मृत्युकूं प्राप्त होवेहैं तैसेहि जो पुरुष तो योगरूप बलकरके युक्त हैं सो प्रारब्धकर्मरूप जालकूं भेदन करके देहादिक सर्व बंधनोंसें रहित भये ब्रह्म-भावरूप अभिमत विमल मार्गकूं प्राप्त होवेहैं औ जो योगरू-बलकरके हीन हैं सो कर्मरूप जालमेंहि पतित भये नानाप्र-कारकी योनियोंविषे भ्रमणरूप मृत्युकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ किंच ज्ञानसेंभी प्रबल जो प्रारब्धकर्म है तिससेंभी योगा-भ्यास प्रबल है, काहेतें योगाभ्यास करके प्रारब्धकर्मका निरोध होवेहै, यह वार्ता विष्णुधर्मविषेभी कथन करीहै—

"स्वदेहारंभकस्यापि कर्मणः संक्षयावरः ॥
यो योगः पृथिवीपाल शृणु तस्यापि लक्षणम्"

अर्थ० हे राजन् अपणे शरीरके आरंभण करणेहारे प्रा-रब्धकर्मकेभी क्षय करणेहारा जो योग है तिसका लक्षण तूं श्रवण कर इति ॥ तथा गीताके आरंभविषे मधुसूदनस्वा-मीनेभी कहाहै " सा बलवती सर्वतः संयमेनोपशाम्यति" अर्थ० सो प्रारब्धकर्मकी वासना सर्वसें प्रबल है परंतु धारणा

ध्यान समाधिरूप जो संयम है तिसकरके शांतिकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ इसहि कारणसें योगी एक शरीरसें अनेक शरीरोंकूं एक कालविषेहि निर्माण करणेमें समर्थ होवेहै, यह वार्त्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषे भीष्मपितामहनेभी निरूपण करीहै

"आत्मनां च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभ ॥
योगः कुर्याद्बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत् ॥
प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत् ॥
संहरेच्च पुनस्तान सूर्यस्तेजो गुणानिव ॥"

अर्थ०हे राजन् योगबलकूं प्राप्त भया योगी अपणे एक शरीरसें हजारों शरीरोंकूं निर्माण करेहै औ तिन सर्वसेंहि पृथिवीविषे विचरेहै तिनमेंसे केचित् शरीरोंकरके तो नानाप्रकारके भोगोंकुं भोगेहै औ केचित् शरीरोंकरके उग्र तपका आचरण करेहै पुना अपणी इच्छाके अनुसार जैसे अस्त होनेके कालविषे सूर्य भगवान् अपणी सर्व रश्मियोंका संहार करेहै तैसेहि अपणे सर्व शरीरोंका योगीलोक संहार करके एकाकीहि स्थित होवेहै इति ॥ औ जो तुमने पूर्व कहा "एतेन योगः प्रत्युक्तः" इस शारीरकसूत्रविषे महर्षि व्यास तथा भाष्यकारने योगका खंडन कियाहै सो वार्त्ताभी विचारसें विनाहि तुमने कथन करीहै काहेतें इस सूत्रविषे जो

योगका खंडन कियाहै सो ईश्वर तटस्थहै औ प्रकृति स्वतंत्र जगत्‌का कारण होवेहै तथा जीवसें ईश्वर भिन्न है इत्यादिक जो वेदांतमतके विरुद्ध योगशास्त्रका सिद्धांत है तिसकाहि खंडन कियाहै यम नियमादिकरूप अष्टांगयोगका नहि यह वार्ता नारायणतीर्थनेभी निरूपण करीहै "स्वातंत्र्यस-त्यत्वमुखं प्रधाने सत्वं च भिन्नेदगतं च वाक्यैः ॥ व्यासो निराचष्टतभावनाख्यं योगं स्वयं निर्मितब्रह्मसूत्रैः"

"अपि चात्मप्रदं योगं व्याकरोन्मतिमान् स्वयम्"॥
भाष्यादिषु ततस्तत्र आचार्यप्रमुखैर्मतः ॥
मतो योगो भगवता गीतायामधिकोन्यतः ॥
कृतः शुकादिभिस्तस्मादत्र संतोतिसादराः ॥

अर्थ०योगशास्त्रविषे जो प्रकृतिका सत्यपणा औ स्वतंत्र-पणा तथा जीवका ईश्वरसें पृथक्‌पणा औ नानापणा मानाहै तिसकाहि अपणे निर्माण कीयेहुये शारीरकसूत्रोंविषे व्यास-जीने खंडन कीयाहै भावनारूप जो यम नियमादिपूर्व-समाधियोग है तिसका नहि" किंच योगभाष्यादिक स्थ-लोंविषे आत्मपदके देनेहारे योगकी तो स्वयमेवहि व्यास-जीने व्याख्या करीहै तातें शंकराचार्यादिकोंनेभी योगका अं-गीकार कियाहै तथा गीताविषे भगवान्‌नेभी "तपस्विभ्यो-

•विको योगी" इत्यादिक वाक्योंमें योगकूंहि सर्वसें अधिक मानाहै, तथा शुकदेव याज्ञवल्क्यादिक महा ज्ञानियोंनेभी योगका अनुष्ठान कियाहै यातें सर्व महात्मा पुरुषोंकूंभी सहित आदरके योगाभ्यासविषे प्रवृत्त होना योग्य है इति ॥ किंच यह वार्ता लोकविषे प्रसिद्ध है कि जिस वस्तुका जो श्रेष्ठ पुरुष प्रीतिपूर्वक सेवन करताहै सो तिस वस्तुकी निंदामें प्रवृत्त नहिं होवेहै सो सूत्रकार औ भाष्यकार यह दोनोंहि महायोगी हुयेहैं तिनमें व्यासजीका योगीपणा तो सर्वलोकविषे प्रसिद्धही है औ शंकराचार्यका योगीपणा दिग्विजयविषे मंडनमिश्रके संवादादिक स्थलोंमें प्रसिद्ध है काहेतें आकाशमार्गसें मंडनमिश्रके गृहविषे प्रवेश करणा औ राजाअमरकके शरीरमें प्रवेश करणा इत्यादिक अद्भुत कर्म योगशक्तिसें विना कैसे संभवेंहैं ॥ तथा योगतारावलीनामा ग्रंथविषे स्वयमेवहि शंकराचार्यने कथन कियाहै "सिद्धिं तथा विधमनोविलये समर्थां श्रीशैलशृंगकुहरेषु कदोपलप्स्ये॥गात्रं तथा, वनलताः परिवेष्टयंति कर्णे तथा विरचयंति खगाश्च नीडम्" अर्थ० श्रीशैलकी कंदरोंविषे मनके विलय करणेहारी समाधिरूप सिद्धिकूं मैं कब प्राप्त होऊंगा औ समाधिविषे स्थित भये मेरे शरीरकूं वनकी लता कब वेष्टन करेंगी तथा मेरे कानविषे वृक्षका छिद्र जानकरके वनके पक्षी कब आलय

करेंगे इति ॥ किंचं च्यारि वेदोंमें कौनसी ऐसी उपनिषत् है, जिसविषे योगका प्रतिपादन नहि कीयाहै किंतु सर्व उपनिषदोंमें कहिं संक्षेप कहिं विस्तारकरके योगका निरूपण कियाहे सो विस्तारके भयसें यहां तिन उपनिषदोंके उदाहरण नहि दिखायेहैं जिसकी इच्छा हो सो तहां देखलेवे॥तथा जगत् विषे कौनसा ऐसा मत है जो अष्टांगयोगकूं नहि अंगीकार करेहै किंतु सर्वहि अर्हत कापाल बौद्ध वैशेषिक नैयायिक शैव वैष्णव शाक्त सांख्य योगादिक मत अंगीकार करेहैं यद्यपि तिनके मतोंविषे प्रमेयपदार्थ भिन्नभिन्न निरूपण कियेहैं तथापि मोक्षका साधनभूत जो यम नियमादिकरूप अष्टांगयोग है सो तो सर्वके मतमें एकहि प्रकारका मानाहै ॥ तथा कौनसा ऐसा पूर्वऋषि अथवा मुनि हुवाहै जो योगाभ्यासकेविना सिद्धिकूं प्राप्त होता भयाहै किंतु जितनेक सनत्कुमार नारद पराशर याज्ञवल्य वसिष्ठादिक सिद्धिकूं प्राप्त भयेहैं सो सर्वहि योगाभ्यासकरके प्राप्त भयेहैं औ जो कोई वर्तमानजन्मविषे योगसेविना सिद्धिकूं प्राप्त हुयेहैं सो भी पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये हुए योगाभ्यासके प्रतापकरकेहि हुयेहैं यह वार्ता पूर्वहि कथन करि आयेहैं यातें व्यासजी औ शंकराचार्यने योगका खंडन कियाहै यह तुमारा कथन केवल साहसमात्रहि है ॥ किंच "न निन्दा निंदं

निन्दतुं प्रवर्तते अपि तु विधेयस्तोतुम् " अर्थ०एक दूसरेके मतमें जो एक दूसरेके मतकी निंदा है तिसका दूसरे मतके खंडन करणेमें तात्पर्य नहीहै किंतु प्रसंगपतित जो वार्ताहै तिसकी स्तुति करणेविषेहि तात्पर्य है यातें मुमुक्षु पुरुषकूं सर्व अन्य क्रियाका परित्याग करके परम पुरुषार्थरूप जो योग है तिसके अर्थहि प्रयत्न करणा योग्य है यह वार्ता मातंगनामा ऋषिनेभी कथन करीहै "अग्निष्टोमादिकान् सर्वान् विहाय द्विजसत्तमः ॥ योगाभ्यासरतः शान्तः परं ब्रह्माधिगच्छति" अर्थ०अग्निष्टोमादिक सर्वकार्मोंका परित्याग करके केवल योगाभ्यासविषे निरंतर आसक्त भया शांत मुमुक्षु पुरुष परम ब्रह्मकूं प्राप्त होवेहै अर्थात् मोक्षपदकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ ६ ॥ इस प्रकारसें योगकूं परमपदप्राप्तिकी हेतुता निरूपण करके अब तिस योगके जो अवांतर भेद हैं सो कथन करेंहैं॥

वंशस्थ वृत्तम् ॥

हठो लयो मांत्रिकराजसंज्ञितौ
चतुर्विधं योगमबालिशा विदुः ॥
त्रयोपि राजोपगता भवन्त्यत-
स्तदर्थमेवेह यतेत कोविदः ॥७॥

हठ इति ॥ सो योग हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, राज-योग इसभेदसें च्यारिप्रकारका है यह वार्ता योगबीजमें महादेवजीनेभी कथन करी है "मंत्रो हठो लयो राजा योगोयं भूमिकाक्रमात् ॥ एक एव महादेवि चतुर्धा संप्रकीर्त्यते ॥"

अर्थ० हे महादेवि एकहि योग हठयोग, लययोग, मंत्रयोग राजयोग इसप्रकार अवांतरभेदसें च्यारिप्रकारका कहियेहै इति ॥ तिनमें प्रथम हठयोगका लक्षण गोरक्षनाथने कथन कियाहै—

"हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ॥
सूर्यचन्द्रमसो योगात् हठयोगो निगद्यते" ॥

अर्थ० हकार सूर्यका नाम है औ ठकार चन्द्रमाकी संज्ञा है तिन दोनोंका जो योग अर्थात् एकीभाव है तिसका नाम हठयोग है इति ॥ तात्पर्य यह हृदयदेशमें सूर्यका निवास है औ नासिकाके अग्र द्वादश अंगुलपर चंद्रमाका स्थान है का-हेतें जब हृदयसें स्पर्शकरके प्राणवायु बाह्यनिर्गमन करताहै तो उष्ण होवेहै औ जब चन्द्रमाके स्थानसें स्पर्शकरके अभ्यंतर आताहै तो शीतल होवेहै,यातें हृदय औ नासिकाके बाह्यदेशमें सूर्य औ चंद्रमाका अनुमान होवेहै तथा योगवासिष्ठके निर्वा-णप्रकरणमें काकभुशुंडनेभी कहाहै "द्वादशांगुलपर्यंते नासाग्रे संस्थितं विधुम् ॥ हृदये भास्करं देवं यः पश्यति स पश्यति"

अर्थ० नासिकाके बाह्य द्वादश अंगुलपर्यंत देशविषे चंद्रमाकी स्थिति है औ हृदयदेशविषे सूर्यका स्थान है सो जो योगीपुरुष तिन दोनोंकूं योगकलासें देखताहै सोई सम्यक् प्रकारसें देखताहै इति ॥ इस प्रकारसें प्राण औ अपानके साथ सूर्य औ चंद्रमाका संबंध होनेतें प्राण औ अपानकीभी क्रमसें सूर्य औ चंद्रमासंज्ञा होवेहै सो जिसकालविषे प्राणायामके अभ्यासकरके प्राण औ अपानकी गतिका निरोध होवेहै तो सूर्य औ चंद्रमाकी एकता होवेहै तिसका नाम हठयोग है औ जो नाडी शुद्धि,मुद्राभ्यास,कुंडलिनीबोध, षट्चक्रभेदन इत्यादिक हठयोगके अवांतर भेदहैं तिनकी, आगे उपयोगी स्थलोंविषे व्याख्या करेंगे ॥ तथा प्राणायामादिक क्रमसें विनाहि शांभवीमुद्राके अभ्यासपूर्वक शून्यकी भावनासें एकवारहि जो संकल्पसें रहित होयकर मनका विलय करणाहै तिसका नाम लययोगहै। यह वार्ता अमनस्कखंडविषे वामदेवके प्रति महादेवजीनेभी कथन करीहै.

"दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव, दृश्यात् वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधात् ॥ चित्तं स्थिरं यस्य विनावलंबात् स एव योगी स गुरुः स सेव्यः" अर्थ० नासाके अग्रभागादिक देशोंविषे लगनेसें विनाहि जिसकी दृष्टि स्थिरहै औ रेचकादिक प्राणायामके अभ्याससें विनाहि जिसके प्राण-

वायूका निरोधहै तथा षट्चक्रादिक अवलंबनोंसेंविना-हि जिसका चित्त एकाग्र है सोई पुरुष योगी औ सर्वका गुरु तथा सेवनेयोग्य है इति ॥ तथा तिस शांभवीमुद्राका लक्षणभी तहांहि महादेवजीने कथन किया है "अंतर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ॥ सा भवेच्छांभवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता"

अर्थ० चित्तवृत्तिके लक्ष्यकूं शरीरके अभ्यंतरकरके अर्द्धखुलेहुये नेत्रोंकी दृष्टिकूं जो नासिकाके अग्रभागविषे एकटक स्थापतकरके स्थित होना है तिसका नाम शांभवीमुद्रा है सो यह मुद्रा सर्वशास्त्रोंमें गुप्त है इति ॥ तथा मंत्रयोगका लक्षणभी योगबीजविषे महादेवजीनेहि कथन किया है,

"हकारेण बहिर्याति सकारेण पुनर्विशेत्" ।
हंसहंसेति मंत्रोयं जीवो जपति सर्वदा ॥
गुरुवाक्यात्सुषुम्नायां विपरीतो भवेज्जपः ।
सोहंसोहमिति प्रोक्तो मंत्रयोगः स उच्यते ॥

अर्थ० हे पार्वति हकारकरके यह श्वासबहिर्निर्गमन करे है औं सकारकरके पुना अभ्यंतर प्रवेश करे है इसप्रकारसें हंसहंस इसमंत्रका सर्वदाहि यह जीव जप करे है परंतु जानतानहि सो गुरुमुखद्वारा तिसकी विधिके जाननेसें सुषुम्नानाडी-

विषे हंसहंसके उलटानेसें सोहंसोहं जप होवे है तिसका नाम मंत्रयोग है इति ॥ सो जपकी संख्याभी महादेवजीनेंहि कथन करीहै,

"एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमीश्वरि ।
प्रत्यहं जपते प्राणी हंस इत्यक्षरद्वयम्" ॥

अर्थ० हे ईश्वरि एकविंशतिसहस्र औ षट्सौ अधिक हंस-मंत्रका नित्यं प्रति सर्वप्राणी जप करते हैं इति० ॥ सो तिस जपका आधारादिकचक्रोंमें स्थित जो गणेशादिक देवता हैं तिनकूं नित्यप्रति क्रमसें अर्पण करणा चाहिये ॥ सो अर्पणकी विधि गरुडपुराणमें विष्णुभगवान्ने गरुडकेंप्रति कथन करी है सो संक्षेपसें यहां दिखावे हैं,

"आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासांतवर्णाश्रयं ।
स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालांतषट्पत्रकम् ॥
रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यं फकारांतकं ।
पत्रैर्द्वादशभिस्त्वनाहतपुरं हैमं कठांतावृतम् ॥
पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धांबुजं ।
हंक्षेत्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमाज्ञांबुजम् ॥
तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं ।

१–२१६००

सत्यानन्दमयं सदाचिन्मयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम् ॥
गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः ।
व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाचक्रेषु चिंतयेत् ॥
षट्शतं गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे ।
षट्सहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च ॥
जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा ।
चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत् ॥"

अर्थ० प्रथम गुदा औ लिंगके मध्यदेशमें वंकारसें लेकर सकारपर्यंत च्यारि अक्षरोंकरके अंकितभये च्यारि दलोंकरके युक्त औ अग्निके वर्णसमान आधारचक्र है ॥ तथा दूसरा लिंगके उपर गुह्यदेशविषे बंकारसें लेकर लकारपर्यंत षट् अक्षरोंकरके अंकितभये षट् दलोंकरके युक्त औ सूर्यके वर्णसमान स्वाधिष्ठानचक्र है ॥ तथा तीसरा नाभिदेशविषे डंकारसें लेकर फकारपर्यंत दश अक्षरोंकरके अंकितभये दशदलोंकरके युक्त औ रक्तवर्ण मणिपूरचक्र है तथा हृदयदेशविषे कँकारसें लेंकर ठकारपर्यंत द्वादशअक्षरोंकरके अंकितभये द्वादशदलोंकरके युक्त औ सुवर्णके वर्णसमान अनाहतचक्र है ॥

१ वं शं षं सं. २ बं भं मं यं रं लं. ३ डं ढं णं तं थं.दं धं नं पं फं.
४ कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं.

तथा कंठदेशमें अंसेंलेकर अः पर्यंत षोडशस्वरोंकरके अंकितभये षोडशदलोंकरके युक्त औ चंद्रमाके वर्णसमान विशुद्धचक्र है ॥ तथा भ्रुवोंके मध्यदेशविषे । हंकार औ क्षकार इन दोनों अक्षरोंकरके अंकितभये दोदलोंकरके युक्त औ रक्तवर्ण आज्ञाचक्र है ॥ तथा तिसके ऊपर दशमद्वारविषे निरंतर रहि सच्चिदानंद ज्योतिःस्वरूप सहस्रदलोंकरके युक्त शुद्धस्फटिकवर्णकेसमान ब्रह्मरंध्रचक्र है ॥ सो तिनमें प्रथमचक्रमें गणेश औ दूसरेविषे ब्रह्मा तथा तीसरेमें विष्णु औ चतुर्थविषे महादेव तथा पंचममें जीवात्मा औ षष्ठेविषे गुरु तथा सप्तममें व्यापकपरब्रह्म इसक्रमसें सहित शक्ति औ वाहनोंके सप्तचक्रोंविषे सप्तदेवतोंका पुष्पचंदनादि समर्पणपूर्वक एकाग्रचित्तहोयके ध्यानकरके पश्चात् पूर्वोक्त एकविंशतिसहस्र औ षट्सौ जपसें प्रथम षट्सौ ६०० गणेशजीकूं समर्पण करणा चाहिये। औ पुनः षट्सहस्र ६००० ब्रह्माकूं अर्पण करणा चहिये पुनः षट्सहस्र ६००० विष्णूकूं अर्पण करणा चाहिये तथा षट्सहस्र ६००० महादेवजीकूं अर्पण करणा चाहिये तथा एकसहस्र १००० जीवात्माकूं अर्पण करणा चहिये पुनः एकसहस्र १००० गुरुकूं समर्पण करणा चाहिये तथा एकसहस्र १००० परब्रह्मकूं

---

१ अं॰ आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः २ हं, क्षं,

समर्पण करणा चाहिये इसप्रकारसें नित्यं प्रति एकाग्रचित्तसें,स-
मर्पण करणेहारे ब्रह्मचर्यादिक साधनसंपन्न साधकपुरुषकूं एक-
कोटी १००००००० निर्विघ्न जपके संपूर्णभयेतें अनंतर ईश्वरके
अनुग्रहसें दशप्रकारका नाद श्रवणमें आवेहै यह वार्ता अथ-
र्ववेदकी हंसउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै "स एव जपकोटया
नादमनुभवति" अर्थ० सो साधक पुरुष हंसमंत्रके कोटी जप
समर्पण करणेतें अनंतर नादका अनुभव करेहै इति ॥ सो
तिस नादके लक्षणभी तहांहि कथन कियेहैं "नादो दशविधो
जायते चिणीति प्रथमः चिंचिणीति द्वितोयः घंटानादस्तृतीयः
शंखनादश्चतुर्थः पंचमस्तंत्रीनादः षष्ठस्तालनादः सप्तमो वेणु-
नादः अष्टमो मृदङ्गनादः नवमो भेरीनादः दशमो मेघनादः
नवमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत्" अर्थ० प्रथम तो चिणी दूस-
रा चिंचिणी तीसरा घंटावत् चतुर्थ शंखवत् पंचम वीणावत् षष्ठ
तालवत् सप्तम वंसीवत् अष्टम मृदंगवत् नवम भेरीवत् दशम
मेघवत् इस प्रकारसें हंसमंत्रके साधक पुरुषकूं उक्त संख्याके
पूर्ण होतेतें अनंतर दश प्रकारका नाद श्रवणमें आवेहै ति-
नमेंसें नव प्रकारके नादका परित्याग करके ब्रह्मभावकी
प्राप्तिका साधनभूत जो दशम मेघनाद है तिसकाहि सर्वदा
मुमुक्षुपुरुषकूं अभ्यास करणा योग्यहै इति ॥ तथा तिस द-
शप्रकारके नादके फलभी तहांहि कथन कियेहैं ॥

"प्रथमे चिंचिणीगात्रं द्वितीये गात्रभंजनम् ।
तृतीये खेदनं याति चतुर्थे कंपते शिरः ॥
पंचमे स्रवते तालु षष्ठेऽमृतनिषेवणम् ।
सप्तमे गूढविज्ञानं परा वाचा तथाष्टमे ॥
अदृश्यं नवमे देहं दिव्यं चक्षुस्तथा मलम् ।
दशमे परमं ब्रह्म भवेद्ब्रह्मात्मसन्निधौ ॥

तस्मिन् मनो विलीयते मनसि संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः शक्त्यात्मा सर्वत्रावस्थितः स्वयंज्योतिः शुद्धो-बुद्धो नित्यो निरंजनः प्रकाशत इति"

अर्थ० प्रथम नादके श्रवणकालमें सर्व अंगोंविषे, चिंचिणीकी न्याई शब्दकी प्रतीति होवेहै औ दूसरेमें शरीरके अंग टूटनेकी न्याई होवेहै तथा तीसरेविषे चित्तमें खिन्नता होवेहै औ चतुर्थमें शिर कंपताहै तथा पंचमविषे तालु श्रवताहै औ षष्ठेमें अमृतका पान होवेहै तथा सप्तममें गूह्यपदार्थोंका ज्ञान होवेहै औ अष्टमविषे परावाचाकी प्राप्ती होवेहै तथा नवममें दिव्यदृष्टि औ अंतर्ध्यानकी शक्ति होवेहै औ दशममें तो परब्रह्मस्वरूप-हि होवेहै ॥ इस प्रकार ब्रह्मके साथ एकीभाव होनेतें मनका विलय होवेहै मनके लीन भयेतें सर्व संकल्पविकल्पोंका क्षय होवेहै संकल्पविकल्पोंके क्षय होनेतें जन्मजन्मांतरोंविषे संचित किये हुये पुण्यपापोंका नाश होवेहै पुण्यपापोंके नाश

होनेतें अनंतर साधक पुरुष शिवशक्तिस्वरूप भया सर्वव्यापक स्वयंज्योति शुद्ध बुद्ध नित्य निरंजन ब्रह्मरूप होयकरके प्रकाशताहै अर्थात् कैवल्यमोक्षपदविषे स्थित होवेहै इति ॥ सो यह मंत्रयोग गुरुमुखसें ग्रहण कियेविना सिद्धिका हेतु नहि होवेहै यातें साधक पुरुषोंकूं गुरुमुखद्वाराहि इसका अभ्यास करणा योग्य है इति ॥ तथा राजयोगका लक्षण योगसूत्रोंमें पतंजलिने कथन कियाहै "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थ० पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंका जो निरोध करणा है तिसका नाम राजयोग है इति ॥ सो तिन वृत्तियोंके नाम औ लक्षणभी पतंजलिनेहि कथन कियेहे "प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः" अर्थ० प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, इस भेदसें पांच प्रकारकी चित्तकी वृत्तियां हैं इति ॥ तिनमें "प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि" अर्थ० प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमानप्रमाण, आगमप्रमाण, इस भेदसें प्रमाण तीन प्रकारके हैं ॥ तिनमें विषय औ इन्द्रियोंके सन्निकर्षसें घटपटादिक विषयोंका जो विशेषरूपकरके ज्ञान है तिसकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहतेहैं ॥ औ धूमादिक लिंगकरके दूरदेशस्थ वह्नि आदिक पदार्थोंका सामान्यसें जो ज्ञान है तिसका नाम अनुमान प्रमाण है ॥ तथा यथार्थवक्ता पुरुषका जो वाक्य है सो आगमप्रमाण कहियेहै ॥ औ अन्य नैया-

चिकादिक शास्त्रोंमें जो कहिं अधिक वा न्यून प्रमाण मानेहैं सो इन तीनोंके अंतर्भूतहि जान लेने इति ॥ तथा "विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम्" अर्थ० रजतादिकोंसे भिन्न शुक्ति आदिक पदार्थोंमें जो रजतादिकोंका ज्ञान है तिसका नाम विपर्यय है इति ॥ तथा "शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" अर्थ० शब्दजन्य ज्ञानका अनुपाती होवे औ वस्तुसें शून्य होवे तिसका नाम विकल्प है अर्थात् अविद्यमान भेदवाले पदार्थविषे जो भेदका आरोपण करके कथनहै सो विकल्प कहियेहै ॥ जैसे "पुरुषका चेतनपणा स्वरूप है" तो यहां जब चेतनपणाहि पुरुष हुया तो पुरुषका चेतनपणा स्वरूप है यह कथन कैसे संभवेहै परंतु इस प्रकारके कथनसें पुरुष औ चेतनपणेका भेदसें ज्ञान होवेहै जैसे देवदत्तकी गौ इस कथनसें देवदत्त औ गौका भेदसें ज्ञान होवेहै इति ॥ तथा "अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा" अर्थ० सर्व बाह्य विषयोंके आकारोंसें रहित होयकर तमोगुण करके युक्त जो चित्तवृत्तिकी स्थिति है तिसका नाम निद्रा है ॥ निद्रासें जागृकरके पुरुष कहताहैं आज मैं बहुत सुखसें शयन करता भयाहुं सो इस प्रकारकी स्मृति विनासुखके अनुभवसें संभवे नहि यातें निद्राभी एक प्रकारकी चित्तकी वृत्तिहि है ॥ तथा "अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः" अर्थ० प्रत्यक्षादिक

प्रमाणकरके अनुभव किये हुये पदार्थका जो अन्यकालविषे संस्कारद्वारा स्मरण होवेहै तिसका नाम स्मृति है ॥ सो इन पांच वृत्तियोंविषेहि सर्व चित्तकी वृत्तियोंका अंतर्भाव है इति॥ सो "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" इस पूर्वोक्त सूत्रविषे सर्व वृत्तियोंका ग्रहण नहि कियाहै किंतु सामान्यसें चित्तवृत्तियोंके निरोधकूं योगरूपता कथन करीहै यातें एकाग्रवृत्तिकरके युक्त जो संप्रज्ञातसमाधि है सोभी योगहि कहियेहै औ जिसमें सर्व वृत्तियोंका निरोध होवेहै सो असंप्रज्ञात कहियेहै इस प्रकारसें संप्रज्ञात औ असंप्रज्ञात जो दो प्रकारकी समाधि है तिसका नाम राजयोग है । यह वार्ता सिद्ध भयी औ जो प्रत्याहार"धारणा ध्यानादिक राजयोगके अवांतर भेद हैं सो आगे निरूपण करेंगे. ॥ सो पूर्वोक्त "हठयोग" लययोग "मंत्रयोग" इन तीनोंका इस राजयोगकेविषेहि अंतर्भाव होवेहै ॥ काहेतें तिनमें प्राण औ अपानकी एकतारूप जो हठयोग है सो राजयोगसेंभी चित्तकी वृत्तियोंके निरोध होनेतें प्राणोंका स्वतेहि निरोध होय जावेहै जिस प्रकारसें मनके निरोध होनेतें स्वतेहि प्राणोंका निरोध होवेहै सो वार्ता आगे चतुर्दश श्लोककी टीकाविषे विस्तारसें कथन करेंगे ॥ औ जो आसनादिक हठयोगके अवांतर भेद हैं सो तो प्रत्यक्षहि राजयोगके साथ मिलते हैं यातें हठयोगका राज-

योगविषेहि अंतर्भाव है इति ॥ तथा स्वात्मा रामयोगीनेभी हठयोगप्रदीपिकाविषे कहाहै "पीठानि कुंभकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च ॥ सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि" अर्थ० यावत्मात्र हठयोगके पद्मादिक आसन औ सूर्यभेदनादिक विचित्र कुंभक तथा नानाप्रकारकी. खेचरी आदिक दिव्य मुद्रा हैं तिन सर्वका राजयोगकी प्राप्तिहि फल है इति ॥ तथा शांभवी मुद्राके अभ्यासपूर्वक एकवारहि चित्तका निरोधरूप जो लय योग है तिसकाभी राजयोगकेविषे अंतर्भाव है । काहेतें राजयोगरूप असंप्रज्ञातसमाधिकालविषे सर्व वृत्तियोंके निरोध होनेतें स्वतेहि चित्तका लय होवैहै इति ॥ तथा हंसमंत्रके चिरकाल अनुष्ठान करणेसें नादके श्रवणद्वारा चित्तके विलयका हेतुभूत जो मंत्रयोग है तिसकाभी राजयोगविषेहि समावेश है काहेतें संप्रज्ञातसमाधिविषेभी प्राणकेचिरकाल निरोध होनेतें नादका श्रवण होवैहै यातें तिसके श्रवणद्वारा तहांभी चित्तका विलय होवैहै ॥ तथा अन्य जो क्रियायोग, उत्पत्तियोग, औषधियोग, इत्यादिक योग हैं तिन सर्वकाभी राजयोगविषेहि अंतर्भाव है काहेतें तिनमें "तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" अर्थ० अनशनादिक तप करणा वेदाध्ययन करणा ईश्वरका आराधन करणा यह क्रियायोग है सो इस

कातो वक्ष्यमाण राजयोगके यमनियमरूप अंगोंमेंहि अंतर्भाव है ॥ औ उत्पत्तियोग व्यास, वसिष्ठ, सनत्कुमार, वामदेव, नारद, कपिलदेव, दत्तात्रेयादिकोंकूं हुयाहै अर्थात् सो जन्मसेंहि योगी हुयेहैं सो तिस उत्पत्तियोगकीभी पूर्वजन्मविषे अनुष्ठान किये राजयोगके प्रभावसेंहि प्राप्ति होवे है यातें तिसकाभी राजयोगविषेहि अंतर्भाव है ॥ तथा सिद्ध भये पारदादिक दिव्य औषधिके भक्षण करणेतेंभी योग सिद्धिकी प्राप्ति होवेहै सोभी पूर्वजन्मकृत राजयोगकाहि फल है यातें तिसकाभी राजयोगविषेहि समावेश है ॥ इस प्रकारसें सर्व योगोंका राजा जो राजयोग है तिसके अर्थहि साधक पुरुषकूं प्रयत्न करणा योग्यहै । यह वार्ता अमनस्कखंडमें महादेवजीनेभी कथन करीहै—

> "राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः"
> राजंतं दीप्यमानं तं परमात्मानमव्ययम् ।
> प्रापयेद्देहिनां यस्तु राजयोगः स कीर्तितः ॥

अर्थ० हठयोग लययोगादिक सर्व योगोंका राजा होनेतें इसका नाम राजयोग है तथा "राजंतं" कहिये स्वयंप्रकाश औ अविनाशी परमात्माकी साधक पुरुषकूं प्राप्ति करेहै यातेंभी इसकूं राजयोग कहतेहैं इति ॥ ७ ॥ इस प्रकार सर्व योगों-

सें राजयोगकी अधिकता निरूपण करके अब जो तिसके यम नियमादिक अवांतर भेदहैं तिनका निरूपण करेहैं ॥

वंशस्थं वृत्तम्.

जगुस्तदङ्गाष्टकमुत्तमाशया
यमादिसंज्ञं यमिवर्यसेवितम् ॥
समासतस्तस्य फलं च लक्षणं
वदामि वृद्धर्षिमतानुरोधतः ॥ ८ ॥

जगुरिति ॥ तिस राजयोगके परंपरासें योगी जनोंकरके अनुष्ठित किये हुये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान, समाधि, इस भेदसें अष्ट अंग ऋषिलोकोंने कथन कियेहैं ॥ तथा पतंजलिनेभी योगसूत्रोंमें कहाहै "यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि" इस सूत्रका अर्थ ऊपर कहे अर्थके अंतर्भूतहि है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै "यमश्च नियमश्चैव आसनं च तथैव च ॥ प्राणायामस्तथा गार्गि प्रत्याहारश्च धारणा ॥ ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वरानने" अर्थ० हे सुंदर मुखवाली गार्गि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इस भेदसें योगके अष्ट

मंत्र हैं इति ॥ औ "प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ॥ तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते"

अर्थ०प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क समाधि, इस भेदसें योगके षट् अंग हैं इति ॥ इस अमृतबिंदुउपनिषत्के वाक्यमें जो योगके षट् अंग कथन कियेहैं सो दूसरे अंगोंकेभी उपलक्षण जान लेने नहि तो उक्त सूत्र औ॰याज्ञवल्क्यके वाक्यसाथ विरोध होवेगा ॥ सो तिन अष्टप्रकारके अंगोंके जो स्वरूप हैं औ जो तिनके अनुष्ठान करणेतें फल होवेहैं॰औ चकारसें जो तिनके अनुष्ठानमें हेतुं हैं सो पतंजलि, याज्ञवल्क्यआदिक वृद्ध ऋषियोंके मतके अनुसार ग्रंथकार संक्षेपसें यहां निरूपण करेहैं इति ॥८॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अब योगका प्रथम अंग जो यमहै तिसका लक्षण कथन करेहैं॥

वंशस्थं वृत्तम्.

अहिंसनं सत्यमचौर्यमार्जवं
क्षमा धृतिश्शौचमुपस्थनिग्रहः ॥

१ यद्यपि मूलश्लोकोंमें हेतु स्पष्टकरके नहि दिखाये हैं तथापि पूर्वयोगके अंगोंकूं उत्तरउत्तर अंगोंमें हेतुता जानलेनी, औ टीकामें तो क्वचित् क्वचित् दिखायेभी है,

मिताशनं दीनजनानुकंपनं
यमा दशैते मुनिवर्यसंमताः ॥ ९ ॥

अहिंसनमिति ॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आर्जव, क्षमा, धैर्य, शौच, ब्रह्मचर्य, मिताहार, दीनजनोंपर दया, इस भेदसें श्रेष्ठ मुनिलोकोंने दश प्रकारके यम मानें हैं ॥ तिनमें मन वाणी औ शरीरकरके कदाचित् किसी प्रकारसें जो किसी प्राणीकूं भी क्लेश नहि उपजावना है तिसका नाम अहिंसा है॥यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै "कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ अक्लेशजननं प्रोक्तं न हिंसात्वेन योगिभिः"

अर्थ० सर्वदाहि सर्व प्राणियोंकूं जो मन वचन औ शरीरकरके क्लेशकी उत्पत्ति नहि करणी है तिसका नाम अहिंसा है इति ॥ सर्व योगके अंगोंके अनुष्ठानमें मूलभूत होनेतें यहां अहिंसाका प्रथम ग्रहण कियाहै ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहाहै " यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ॥ सर्वाण्येवापिधीयंते पदजातानि कौंजरे ॥ एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते" अर्थ० जिस प्रकार हस्तीके पादविषे पाद करके चलनेहारे सर्व प्राणियोंके पाद अंतर्भूत होवेहैं तैसेहि यज्ञ तप ज्ञानादिक सर्वहि धर्म औ अर्थ अ-

अंग हैं इति ॥ औ "प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ॥ तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते"

अर्थ०प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क समाधि, इस भेदसें योगके षट् अंग हैं इति ॥ इस अमृतबिंदुउपनिषत्के वाक्यमें जो योगके षट् अंग कथन कियेहैं सो दूसरे अंगोंकेभी उपलक्षण जान लेने नहि तो उक्त सूत्र औ याज्ञवल्क्यके वाक्यसाथ विरोध होवेगा ॥ सो तिन अष्टप्रकारके अंगोंके जो स्वरूप हैं औ जो तिनके अनुष्ठान करणेतें फल होवेहैं औ चकारसें जो तिनके अनुष्ठानमें हेतु हैं सो पतंजलि, याज्ञवल्क्यादिक वृद्ध ऋषियोंके मतके अनुसार ग्रंथकार संक्षेपसें यहां निरूपण करेहैं इति ॥८॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अब योगका प्रथम अंग जो यमहै तिसका लक्षण कथन करेहैं॥

वंशस्थं वृत्तम्.

अहिंसनं सत्यमचौर्यमार्जवं
क्षमा धृतिश्शौचमुपस्थनिग्रहः ॥

१ यद्यपि मूलश्लोकोंमें हेतु स्पष्टकरके नहि दिखाये हैं तथापि पूर्वयोगके अंगोंकूं उत्तरउत्तर अंगोंमें हेतुता जानलेनी, औ टीकामें तो क्वचित् क्वचित् दिखायेभी है,

मिताशनं दीनजनानुकंपनं
यमा दशैते मुनिवर्यसंमताः ॥ ९ ॥

अहिंसनमिति ॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आर्जव, क्षमा, धैर्य, शौच, ब्रह्मचर्य, मिताहार, दीनजनोंपर दया, इस भेदसें श्रेष्ठ.मुनिलोकोंने दश प्रकारके यम मानें हैं ॥ तिनमें मन वाणी औ शरीरकरके कदाचित् किसी प्रकारसें जो किसी प्राणीकूं-भी क्लेश नहि उपजावना है तिसका नाम अहिंसा है॥यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै "कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ॥ अक्लेशजननं प्रोक्तं न हिंसात्वेन-योगिभिः"

अर्थ० सर्वदाहि सर्व प्राणियोंकूं जो मन वचन औ शरीरकरके क्लेशकी उत्पत्ति नहि करणी है तिसका नाम अहिंसा है इति ॥ सर्व योगके अंगोंके अनुष्ठानमें मूलभूत होनेतें यहां अहिंसाका प्रथम ग्रहण कियाहै ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहाहै " यथा नागपदेन्यानि पदानि पदगामिनाम् ॥ सर्वाण्येवापिधीयंते पदजातानि कौंजरे ॥ एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते" अर्थ० जिस प्रकार हस्तीके पादविषे पाद करके चलनेहारे सर्व प्राणियोंके पाद अंतर्भूत होवेहैं तैसेहि यज्ञ तप दानादिक सर्वहि धर्म औ अर्थ अ-

हिंसाकेविषे अंतर्भूत होवेहैं इति ॥ तथा जैसे देखा होवे अ-थवा अनुमानसें निश्चय किया होवे तथा आप्त पुरुषके मुखसें श्रवण किया होवे औ सर्व भूतोंके हितका कारण होवे तैसाहि जो भाषण करणा है तिसका नाम सत्य है ॥ यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै ॥ "सत्यं भूतहितं प्रोक्तं नायथार्थाभिभाषणम्" अर्थ० सर्व भूतोंका हितकारी औ यथार्थ जो भाषण करणा है तिसका नाम सत्य है इति॥ तथा मनुस्मृतिके चतुर्थाध्यायविषेभी कहाहै " सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्॥ प्रियं च नानृतं ब्रूयादिति धर्मः सनातनः" अर्थ० सत्य होवे औ प्रिय होवे सो वाक्य भाषण करणा चाहिये जो सत्य होवे औ प्रिय नहि होवे सो नहि करना चाहिये अर्थात् तहां मौनहि करणा उचित है औ जो सत्य होवे औ प्रियभी होवे सोई वाक्य भाषण करणा चाहिये यहि पुरातन धर्म है इति ॥ तथा महाभारत-के मोक्षपर्वविषेभी कहाहै " अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेत् व्याहृतं तद्दितीयम् ॥ धर्मं वदेत् व्याहृतं तत्तृतीयं प्रियं वदेत् व्याहृतं तच्चतुर्थम् " अर्थ० प्रथम तो भाषण करणेतें मौन धारण करणा उत्तम है औ मौनसें सत्य भाषण करणा श्रेष्ठ है तथा केवल सत्य भाषण करणेसें धर्मसहित सत्य भाषण करणा उत्तम है तिसतेंभी सत्य औ प्रिय भा-

षण करणा अति श्रेष्ठ है इति ॥ किंच यह सत्य भाषण क-रणाहि परम धर्म है यह वार्ताभी तहांहि देवतोंकेप्रति हंसप-क्षीने कथन करीहै " सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौ-रिव ॥ न पावनतमं किंचित् सत्याद्ध्यगमं क्वचित् " अर्थ० हे देवता सत्यहि स्वर्गविषे आरोहण करणेकी सीढी है औ जैसे घोर समुद्रके पार करणेहारी नौका होवेहै तैसेहि सं-साररूप घोर समुद्रके पार करणेमें सत्यरूप नौका है तथा मैंने सर्वहि धर्मोंका मंथन किया परंतु सत्यसें परे दूसरा कोइ पवित्र नहि देखनेमें आया इति ॥ तथा तहांहि अन्य स्थल-विषेभी कहाहै "अश्वमेधसहस्राणि सत्यं च तुलया धृतम् ॥ अ-श्वमेधसहस्राणां सत्यमेव विशिष्यते" अर्थ० सहस्र अश्वमेधयज्ञ औ सत्य यह दोनों तुलामें धरकर देखे तो सहस्रअश्वमेधोंसें स-त्यहि विशेष होता भया इति ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिष-द्र्में भी कहाहै "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो दे-वयानः" अर्थ० सर्वत्र सत्यकाहि जय होवेहै असत्यका नहि औ सत्यकरकेहि उपासक लोक देवयानमार्गविषे गमन कर-तेहैं इति ॥ तथा सत्यविना आत्माका साक्षात्कारभी नहि होवेहै, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै " सत्येन लभ्यस्त-पसा ह्येष आत्मा "

अर्थ० सत्यरूप तपकरकेहि इस आत्माकी प्राप्ति होवेहै

इति ॥ किंच सत्यहि परम तप है, यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै "नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः" अर्थ० विद्याके समान दूसरा नेत्र नहि है औ सत्यके समान दूसरा तप नहिहै इति ॥ तथा भर्तृहरिनेभी कहाहै "सत्यं चेत्तपसा च किं" अर्थ० हे पुरुष जो तुं सर्वदाहि सत्य भाषण करताहै तो तप करणेसें क्या प्रयोजन है अर्थात् सत्यहि परमतप है इति ॥ सो यह सत्य भाषण किया हुया जो किसी प्राणीके क्लेशका हेतु होवे तो असत्यके समानहि होवेंहै, यह वार्ता योगभाष्यविषे व्यासजीनेभी कथन करीहै "यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत्तेन तस्मात् परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात्"

अर्थ० जो वाणी सत्य भाषण करी हुयीभी किसी प्राणीके क्लेशका हेतु होवे तो सो सत्य नहि होवेहै किंतु तिसके भाषण करणेसें वक्ता पुरुषकूं पापकीहि उत्पत्ति होवेहै यातें विवेकी पुरुषकूं सर्वत्र विचार करके सर्व प्राणियोंके हित करणेहारी औ सत्य वाणीहि भाषण करणी योग्य है इति ॥ तथा कपट करके औ स्वामीकी अनुज्ञासें विना जो किसीके पदार्थका ग्रहण नहि करणाहै तिसका नाम अस्तेय है यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै

"कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निस्पृहा ।
अस्तेयमिति संप्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः"

अर्थ० मन वाणी औ शरीर करके पराये द्रव्योंविषे जो निस्पृह है तिसकूं तत्त्वदर्शी ऋषि लोक अस्तेय कहतेहैं इति ॥ तथा सर्व भूतोंमें जो मन वाणी औ शरीरकरके नम्रभाव है तिसका नाम आर्जव है, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै

"विहितेषु तदन्येषु मनोवाक्कायकर्मणाम् ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा एकरूपत्वमार्जवम्" ॥

अर्थ० उक्त जो अहिंसा आदिक कर्म हैं औ वक्ष्यमाण जो ब्रह्मचर्यादिक कर्म हैं तिनकी सिद्धि असिद्धिमें मन वाणी शरीर करके जो एकरूपता है अर्थात् सत्य भाषणादिजन्य सिद्धिविषे अभिमानकूं नहि प्राप्त होना औ असिद्धिविषे खेदकूं नहि प्राप्त होना तिसका नाम आर्जव है ॥ तथा दुष्ट पुरुषोंके ताडन अपमान औ कटु वचनोंका जो सहन करणा , है तिसका नाम क्षमा है, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै

"प्रियाप्रियेषु सर्वेषु समत्वं यच्छरीरिणाम् ।
क्षमा सैवेति विद्वद्भिर्गदिता वेदवादिभिः" ॥

अर्थ० प्रिय तथा अप्रिय भाषण करणेहारे सर्व पुरुषोंमें जो राग द्वेषतें रहितपणा है तिसकूं वेदवादी मुनिलोक क्षमा कथन

करतेहैं इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहाहै "प-रश्चेदेनमतिवादबाणैर्भृशं विद्ध्येच्छम एवेह कार्यः ॥ संरोप्यमाणः प्रतिहृष्यते यः स आदत्ते सुकृतं वै परस्य" अर्थ० इस साधककूं जो कोई पुरुष दुर्वचनरूप बाणोंकरके अत्यंतभी वेधन करे तो क्षमाहि करणा चाहिये काहेतें जो पुरुष अन्य पुरुषोंकरके पीडन किया हुया उलटा हर्षकूं प्राप्त होवेहै सो तिन पीडन करणेहारे जनोंके सर्व सुकृतोंका ग्रहण करलेवेहै इति ॥ तथा मनुस्मृतिमेंभी कहाहै " सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुद्ध्यते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमंता विनश्यति" अर्थ० अवमानकूं प्राप्त भया पुरुष सुखसें शयन करेहै औ सुखसेंहि जागताहै औ सुखसेहि पृथिवीविषे विचरता है परंतु तिसके अपमान करणेहारा पुरुष धनपुत्रादिकोंके सहित विनाशकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ यातें सर्वदा क्षमाहि करणी चाहिये। तथा सुभाषितरत्नभांडागारमेंभी कहाहै " क्षमाशस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ॥ अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति" अर्थ० जिस पुरुषके हाथमें क्षमारूप शस्त्र है तिसका शत्रु क्या करसकै हैं काहेतें जैसे तृणोंकरके रहित देशविषे पतित भया अग्नि स्वतेहि शांत होवेहै तैसेहि क्षमावान् पुरुषके शत्रुयोंका क्रोध आपहि शांत होय जावेहै इति, तथा वृद्धगौतमसंहितामेंभी कहाहै

"क्षमाऽहिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः ।
क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्यमुदाहृतम् ॥
क्षमावान् प्राप्नुयात् स्वर्गं क्षमावान् प्राप्नुयाद्यशः ।
क्षमावान् प्राप्नुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते" ॥

अर्थ० क्षमाहि अहिंसारूप है औ क्षमाहि परम धर्म है तथा क्षमाहि इन्द्रियोंका निग्रहरूप है औ क्षमाहि दयारूप है तथा क्षमाहि यज्ञ औ धैर्यरूप है तथा क्षमावान् पुरुषहि स्वर्ग औ यशकूं प्राप्त होवेहै तथा क्षमावान्हि मोक्षकूं प्राप्त होवेहै औ क्षमावान्हि तीर्थस्वरूप होवेहै इति ॥ किंच योगी पुरुषकूं तो जानकरकेभी अपना अपमान करावना चाहिये काहेतें लोकविषे बहुत सन्मान होनेतें योगका विनाश होवेहै यह वार्ता अन्यस्मृतिमेंभी कहीहै "असन्मानात्तपोवृद्धिः सन्मानात्तु तपःक्षयः ॥ अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति" अर्थ० योगी पुरुषका लोकविषे अपमान होनेतें योगरूप तपकी वृद्धि होवेहै औ सन्मान पूजा होनेतें तपका क्षय होवेहै काहेतें जैसे गोपाल घास तृणादिक देकरके गौका दुग्ध दोहन करलेवेहै तैसेहि संसारीलोकरूप गोपाल तपस्वीरूप गौकूं अन्नवस्त्रादिकरूप घास तृण देकरके तिसके तपरूप दुग्धका दोहन करलेतेहैं इति ॥ यातें योगी

पुरुषकूं इस प्रकारसें विचरणा चाहिये जिसकरके लोक. स-न्मान नहि करें, यह वार्ता अन्यस्मृतिमेंभी कथन करीहै

"तथाचेरत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव संगतिम्" ॥

अर्थ० योगी पुरुषकूं मदिरापान परस्त्रीगमनादिकोंका परित्यागरूप जो सत्पुरुषोंका धर्म है तिसका अनतिक्रमण करके ऐसे कुवेषादिक धारण करके विचरणा चाहिये जिससें कोई पुरुषभी तिसका सन्मान नहिं करे किंतु उलटा अपमान करें औ कोई तिसके समीप नहि आवे इति ॥ औ जो अपमान करणेहारे पुरुषोंपर क्रोध करेहै तिसके सर्वहि जपतपादिकोंका नाश होवेहै यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै "यत्क्रोधनो यजति च यद्ददाति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ॥ वैवस्वतस्तद्धरतेऽस्य सर्वं मोघः श्रमो भवतिहि क्रोधनस्य" ॥ अर्थ० क्रोध करणेहारा पुरुष जो यज्ञ औ दान तथा तप अथवा होमादिक कर्म करेहै तिन सर्वके फलका यमराजा हरण करलेवेहै यातें क्रोधी पुरुषका यज्ञ तप आदिक सर्व परिश्रम व्यर्थहि होवेहै इति ॥ तथा अन्य स्मृतिमेंभी कहाहै "अपकारिणि कोपश्चेत् कोपे कोपः कथं न ते ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परिपंथिनि" अर्थ० हे मूढ पुरुष जो तुं थोडेसे अपकार करणेहारे पुरुषपर क्रोध करताहै

तो धर्म अर्थ काम मोक्ष इन च्यारि पुरुषार्थोंकी सिद्धिविषे महा प्रतिबंधकरूप जो तेरा महान् अपकारी क्रोध है तिसंपर तुं काहेको क्रोध नहि करता इति ॥ यातें विवेकी पुरुषकूं सर्वदा क्षमाहि करणी योग्यहै ॥ तथा अनेकप्रकारके विघ्नोंके होनेतेंभी जो अभ्यासका परित्याग नहि करणाहै तिसका नाम धैर्य है यह वार्ता भर्तृहरिने नीतिशतकमेंभी कथन करी है "आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमंति मध्याः ॥ विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्ध-मुत्तमजना न परित्यजंति" अर्थ० जो पुरुष विघ्नोंके भयकरके प्रथमसेंहि अभ्यासका आरंभ नहि करेहैं सो अधम कहिये है औ जो अभ्यासकाप्रारंभकरके पुना विघ्नोंकरके० पीडित भये परित्याग करेहैं सो मध्यम हैं तथा जो वारंवार विघ्नोंकरके परिपीडन किये हुयेभी अभ्यासका परित्याग नहिं करते सोई पुरुष उत्तम हैं इति ॥ तथा सुभाषितरत्नभांडागारमेंभी कहाहै

"घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं ।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकांडम् ॥
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः कांचनं कांतवर्णं ।
न प्राणांते प्रकृतिविकृतिर्जायते सज्जनानाम् ॥

अर्थ० जैसे वारंवार संघर्षण किया हुयाभी चंदन सुगं-

धिकूंहि देवेहै औ-जैसे वारंवार छेदन किया हुआभी इक्षुका खंड स्वादुहि होवेहै तथा जैसे वारंवार दग्ध किया हुयाभी कांचन सुंदररूप होवेहै तैसेहि वारंवार विघ्नोंकरके पीडित भये सज्जनोंका प्राणांतकालविषेभी स्वभाव विपर्यय नहि होवेहै इति ॥ तथा शौचका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै "शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनःशुद्धिस्तथांतरम् ॥" अर्थ० बाह्यशौच औ आभ्यंतरशौच इस भेदसें शौच दो प्रकारका है तिनमें मृत्तिका जलादिकोंकरके जो शरीरका प्रक्षालन करणा है तिसका नाम बाह्यशौच है औ प्राणायामादिकोंकरके जो मनको शुद्धि करणी है तिसका नाम आभ्यंतरशौच है इति॥ औ "मनःशौचं कर्मशौचं कुलशौचं च भारत ॥ शरीरशौचं वाक्शौचं शौचं पंचविधं स्मृतम्" अर्थ० मनका शौच, कर्मका शौच, कुलका शौच, शरीरका शौच, वाचाका शौच, इस भेदसें शौच पांच प्रकारका है इति ॥ इस वृद्धगौतमस्मृतिके वाक्यविषे जो पांच प्रकारका शौच निरूपण कियाहै तिसका उक्तशरीरशौच औ मनशौचकेविषेहि अंतर्भाव है ॥ तिनमें कुलशौचका तो शरीरशौचकेविषे अंतर्भाव है काहेतें जो कुलसें ब्राह्मण होवे औ शरीरकरके सर्वदाहि अपवित्र रहे तो सो ब्राह्मण नहि किंतु शूद्रके तुल्यहि होवेहै, यह वार्ता अन्यस्मृ-

तिर्मेभी कथन करीहै" त्रिकालस्नानहीनो नः संध्योपासन-वर्जितः ॥ स विप्रः शूद्रतुल्योहि सर्वकर्मबहिष्कृतः" अर्थ० जो ब्राह्मण त्रिकालस्नान औ संध्याकी उपासनाकरके वर्जित है सो शूद्रके तुल्य होवेहै औ यज्ञादिक सर्व कर्मोंविषे अनधिकारी होवेहै इति ॥ तथा कर्मशौच औ बाधाशौचका मनःशौचकेविषे अंतर्भाव है काहेतें जो मनहि शुद्ध न हुया तो अन्य शुभकर्मोंसें क्या होवेहै, यह वार्ता वृद्धगौतमसंहितामेंभी कथन करीहै

"त्रिदंडधारणं मौनं जटाधारणमुंडनम् ।
वल्कलाजिनसर्वांशो व्रतचर्याभिषेचनम् ॥
अग्निहोत्रं वने वासः स्वाध्यायो ध्यानसंस्क्रिया ।
सर्वाण्येतानि वै मिथ्या यदि भावो न निर्मलः" ॥

अर्थ० त्रिदंड ग्रहण करणा मौन धारण करणा जटा धारण करणा शिरका मुंडन करावना वल्कल अथवा मृगचर्म पहरणा दिगंबर रहना व्रतोंका आचरण करणा तीर्थोंविषे स्नान करणा अग्निहोत्र करणा वनविषे निवास करणा वेदाध्ययन करणा ध्यान करणा इत्यादिक जो शुभकर्म हैं सो जिसे पुरुषका मन श्रद्धादिक गुणोंकरके निर्मल नहि है तिसके सर्वहि व्यर्थ होवेहैं इति ॥ तथा मनकी

शुद्धिविना वाचाकी शुद्धिभी नहि संभवेहै काहेतें जिस पुरुषका मनहि अशुद्ध है तिसकी वाचा कैसे शुद्ध होवेगी, यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करीहै "यद्धि मनसा ध्यायति तद्धि वाचा वदति" अर्थ० जो वार्ता प्रथम पुरुषके मनमें होवेहै सोई वाचाकरके कथन करेहै इति ॥ यातें कर्मशौच औ वाचाशौचका मनशौचकेविषेहि अंतर्भाव है ॥ तथा सर्वदाहि मन वाणी औ शरीरकरके स्त्रीसंगमका जो वर्जन करणाहै तिसका नाम ब्रह्मचर्य है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै "कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते" अर्थ० शरीर मन औ वाणीकरकें सर्व अवस्था औ सर्व कालविषे जो मैथुनका परित्याग करणा है तिसका नाम ब्रह्मचर्य है इति ॥ सो तिस मैथुनके अष्ट अंग हैं तिन सर्वके लक्षण दक्षसंहितामें कथन कियेहैं "ब्रह्मचर्यं यदा रक्षेदष्टधा लक्षणं पृथक्"

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ॥
न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्तव्यं कदाच न ।
एतैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो यतिर्भवति नेतरः ॥"

अर्थ० स्त्रीका मनमें स्मरण करणा औ मुखसें कीर्तन करणा तथा तिसके साथ हासविलास करणा औ एकांतमें भाषण करना तथा तिसके भोगका मनविषे संकल्प करणा पुनः भोगका निश्चय करणा तथा भोग करणा इस भेदसें मैथुनके अष्ट अंग बुद्धिमान् मुनि लोकोंने कथन किये हैं इन सर्वकरकेहि जो पुरुष रहित होवेहै सोई ब्रह्मचारी औ यति कहियेहै दूसरा नहि यातें साधक पुरुषकूं किसी कालविषेभी मैथुनका मनमें स्मरण औ मुखसें भाषण तथा शरीरकरके संपादन नहि करणा चाहिये इति ॥ तथा अन्यस्मृतिमेंभी कहाहै "न संभाषेत् स्त्रियं कांचित् पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ॥ कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येत् लिखितामपि" अर्थ० ब्रह्मचारी पुरुषकूं किसी स्त्रीके साथ संभाषण करणा नहि चाहिये औ जो कधी पूर्वकालविषे किसी स्थलमें सुंदर स्त्री देखी होवे तो हृदयमें तिसका स्मरणभी नहि करणा चाहिये तथा परस्पर स्त्रियोंकी कथाभी नहि करणी चाहिये किंच स्त्रीकी चित्रित मूर्तिभी नहि देखनी चाहिये इति ॥ सो इस ब्रह्मचर्यकेविना कदाचित्भी योगकी सिद्धि नहि होवेहै, यह वार्ता अमृतसिद्धिनामक ग्रंथमेंभी कथन करीहै

"असिद्धं मं विजानीयाच्चरमब्रह्मचारिणम् ।
जरामरणसंकीर्णं सर्वक्लेशसमाश्रयम्" ॥

अर्थ० जो पुरुष ब्रह्मचारी नहिहै सो कदाचित्भी सिद्धिकूं नहि प्राप्त होवेहै यातें तिसकूं असिद्धहि जानना चाहिये काहेतें सो सर्वदाहि जन्ममरणादिक क्लेशोंकरके युक्त होवेहै इति ॥ तथा विनाब्रह्मचर्यके चित्तकी एकाग्रताभी नहि होवेहै यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै "बिन्दुश्चलति यस्यांगे चित्तं तस्यैव चंचलम्" अर्थ० जिस पुरुषके इन्द्रियद्वारा वीर्य चलायमान रहताहै तिसका चित्तभी सर्वदाहि चलायमान रहताहै इति ॥ किंच इस ब्रह्मचर्यके विषेहि सर्व धर्म अंतर्भूत होवेहैं यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्य उपनिषत्मेंभी कथन करीहै "अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते, अथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दते, अथ यत् सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्यमनुते" अर्थ० जिसकूं कर्मकांडीलोक यज्ञ कहतेहैं सो ब्रह्मचर्यहि हैं काहेतें ब्रह्मचर्यकरकेहि ज्ञाता पुरुष यज्ञके फलभूत ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवेहैं औ जिसकूं इष्ट कहतेहैं सोभी ब्रह्मचर्यहि है काहेतें ब्रह्मचर्यसेंहि ईश्वरका यजन करके अधिकारी पुरुष आत्माकूं प्राप्त

होवैहै.तथा जिसकूं सत्रायण कहतेहैं सोभी ब्रह्मचर्यहि है काहेतें ब्रह्मचर्यकरके युक्त भयाहि पुरुष अपणे आत्माकी जन्ममरणरूप संसारसें रक्षा करैहै तथा जिसकूं मौन कहतेहैं सोभी ब्रह्मचर्यहि है काहेतें ब्रह्मचर्यकरकेहि यह अधिकारी पुरुष अपणे स्वरूपकूं जानकरके हृदयमें मनन करैहै इति ॥ यातें साधक पुरुषकूं योगाभ्यासकी सिद्धिविषे परम साधनभूत ब्रह्मचर्यसें कदाचित्भी मांसकी पुतलीके कटाक्षोंसें मोहित होयकरके स्खलित नहि होना चाहिये इति ॥ तथा मिताहारका लक्षण हठयोगप्रदीपिकामें निरूपण कियाहै ॥

"सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ।
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते" ॥

अर्थ० स्निग्ध औ मधुर भोजनका उदरका चतुर्थ भाग खाली रखकरके ईश्वरकी प्रीतिके अर्थ जो आहार करणा है तिसका नाम मिताहार है इति ॥ तथा पूर्वाचार्योंनेभी कहाहै

"द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत् ।
वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्" ॥

१ जो वैदिक कर्म बहुत यजमानोंकरके अनुष्ठान किया जावैहै तिसका नाम सत्रायण है.

अर्थ० उदरके दो भाग तो अन्न शाकादिकोंसें औ एक भाग जलसें पूर्ण करणा चाहिये तथा चतुर्थ एक भाग प्राणोंके संचारके अर्थ बाकी रखना चाहिये इति ॥ तथा अमृतबिंदुउपनिषत्विषेभी कहाहै "अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत्" अर्थ० क्षुधासें अत्यंत अधिक औ अतिअल्प आहारका योगीकूं सर्वदाहि वर्जन करणा चाहिये इति ॥ तथा गीताके षष्ठाध्यायविषेभी कहाहै "नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकांतमनश्नतः" अर्थ० अत्यंत अधिक तथा किंचित्भी भोजन नहि करणेसें योगकी सिद्धि नहि होवेहै किंतु युक्ताहार करणेसेंहि सिद्धि होवेहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै "अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनाम्॥द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य नियतं ब्रह्मचारिणाम्" अर्थ० संन्यासीकूं अन्नके अष्ट ग्रास भक्षण करणे चाहिये औ वानप्रस्थकूं षोडश ग्रास भक्षण करणे चाहिये तथा गृहस्थोंकूं बत्तीस ग्रास भक्षण करणे चाहिये औ ब्रह्मचारीकूं मिताहार अर्थात् चतुर्विंशति ग्रास भक्षण करणे चाहिये इति ॥ सो अन्नभी योगीकूं स्निग्धहि भोजन करणा चाहिये तीक्ष्ण कटुआदिक नहि । यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकामेंभी कथन करीहै "पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम् ॥ मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्" अर्थ० योगी

पुरुषकूं पुष्टिकारक औ मधुर तथा स्निग्ध औ गव्य तथा शरीरकी धातुवोंके पोषण करणेहारा औ मनकरके अभिलषित तथा शास्त्रविहित जो भोजन है सोई भक्षण करणा योग्य है इति ॥ तथा स्कंदपुराणमेंभी कहाहै "त्यजेत् कट्वम्ललवणं क्षीरभोजी सदा भवेत्" अर्थ० मिरचीआदिक कटु औ निंबुआदिक खट्टा तथा अतिलवणयुक्त भोजनका परित्यागकरके अभ्यासी पुरुषकूं सर्वदा क्षीरकाहि भोजन करणा योग्य है इति ॥ औ "कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भारत ॥ स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥ भुंजानो यावकं रूक्षं दीर्घकालमरिंदम ॥ एकाहारो विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्" अर्थ० कण औ पिण्याकके[1] भक्षण करणेसें औ घृतादि स्नेहोंके वर्जनमें युक्त भया योगी शीघ्रहि सिद्धिकूं प्राप्त होवेहै ॥ तथा दीर्घकालपर्यंत यवोंके रूक्षे सक्तुवोंके भक्षण करणेसें अथवा सर्वदा दिवसमें एकवार भोजन करणेतें योगी शीघ्रहि सिद्धिकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ इस महाभारतके मोक्षपर्वके वाक्योंविषे जो योगी पुरुषकूं रूक्षे अन्न भक्षण करणेका विधान कियाहै सो प्राणजय कियेतें अनंतर जानना प्राणायामके अभ्यासकालविषे नहि काहेतें प्राणायामके अभ्यास करणेतें सर्व शरीरका शोषण होवेहै यातें तिस

[1] तिलके मोदक.

कालमें तो अवश्यहि साधक पुरुषकूं क्षीरादिक स्निग्ध भोजनहि करणा चाहिये, यह वार्ता शिवसंहिताविषेभी कथन करीहै

"अभ्यासकाले प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यभोजनम् ।
ततोऽभ्यासे दृढीभूते न तादृङ्नियमग्रहः" ॥

अर्थ० प्राणायामके अभ्यासकालमें प्रथमहि दुग्धघृतादिकयुक्त स्निग्ध भोजन करणा चाहिये औ प्राणायामके दृढ होनेसें अनंतर तो स्निग्ध भोजनका कुछ नियम नहिहै इति ॥ तथा मन वाणी औ शरीरकरके सर्व दीन प्राणियोंके ऊपर जो अनुग्रह करणा है तिसका नाम दयाहै ॥ यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै "दया सर्वेषु भूतेषु सर्वत्रानुग्रहः स्मृतः" अर्थ० सर्वदाहि सर्वभूतोंपर जो अनुग्रह करणा है तिसका नाम दया है इति ॥ तथा अन्य स्मृतिमेंभी कहाहै "प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा ॥ आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वंतु मानवाः" अर्थ० जैसे पुरुषकूं अपणे प्राण प्रिय हैं तैसेहि पशु पक्षी आदिक सर्वप्राणियोंकूंभी प्रिय हैं औ जैसे अपणेकूं सुखदुःख होवेहै तैसेहि तिनकूंभी सुखदुःखका अनुभव होवेहै यातें विवेकी पुरुषोंकूं अपणेतुल्य जानकर सर्व प्राणियोंपर दयाहि करणी

योग्य है इति ॥ तथा वसिष्ठसंहितामेंभी कहाहै "उपवासात्पर भैक्षं दयादानाद्विशिष्यते" अर्थ० उपवासकरणेसें भिक्षाका अन्न भक्षण करणा श्रेष्ठ है औ दान करणेसे दया करणी श्रेष्ठ है इति, तथा पूर्वाचार्योंनेंभी निरूपण कियाहै "सर्वत्र सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयः ॥ सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्" अर्थ० इस संसारविषे सर्वहि प्राणी सुखकूं प्राप्त होवो औ सर्वहि दुःखसें रहित नीरोग होवो तथा सर्वहि कल्याणकूं प्राप्त होवो कोईभी क्लेशकूं नहि प्राप्त होवो इस प्रकार सर्वदाहि सर्व प्राणियोंपर हृदयकरके अनुकंपा करणो योग्य है इति ॥ तथा तिस दयालु पुरुषपर सर्वभूत प्राणीभी दया करतेहैं, यह वार्ता वसिष्ठसंहितामेंभी कथन करीहै "अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो द्विजः ॥ तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते" अर्थ० जो पुरुष सर्वभूतोंकूं अभयदान देकर विचरताहै तिसकूंभी सर्व भूतोंसे कदाचित् भय नहिं होवेहै इति ॥ सो यह दया योगाभ्यासीकूं तो सामान्यसेंहि करणी चाहियें काहेतें अत्यंत दयाकरके दुःखी पुरुषोंके दुःखकी निवृत्तिमें प्रवृत्त भया योगी योगसें भ्रष्ट होवेहै जैसे राजा भरत मृगीके बच्चेपर अत्यंत दया करणेतें योगसें भ्रष्ट होता भयाहै यह वार्ता भागवतमें प्रसिद्ध है ॥ किंच इस जगत्में अनेकहि जीव

दुःखी हैं तो सो दयालु पुरुष तिनमेंसें किसकिसका दुःख निवृत्त करेगा, यह वार्ता योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणमेंभी कथन करीहै "यः प्रवृत्तः कुबुद्धीनां दयावान् दुःखमार्जने ॥ स्वगतच्छत्रनिर्मृष्टसूर्यांशुः खिद्यते नभः" अर्थ० जो पुरुष अज्ञानी जीवोंपर दयावान् होयकरके तिनके दुःखोंकी निवृत्ती करणेमें प्रवृत्त होवेहै सो अपणे हाथमें स्थित छत्रकरके सर्व आकाशकूं सूर्यकी किरणोंसें रहित करणेके अर्थ परिश्रम करताहै अर्थात् जैसे तिसका परिश्रम व्यर्थ है तैसेहि सर्व जीवोंके दुःखकी निवृत्तिके अर्थ दयालु पुरुषका परिश्रम व्यर्थहि है काहेतें जैसे एक छत्रकरके सर्वआकाशकूं सूर्यकी-किरणोंसें रहित करणा असंभव है तैसेहि एक दयालु पुरुषकरके सर्व अज्ञानी जीवोंके दुःखोंकी निवृत्ति होनी असंभव है इति ॥ यातें अत्यंत दया नहि करणी चाहिये औ अत्यंत उपेक्षाभी नहिं करणी चाहिये किंतु सर्वत्रहि सामान्यतें वर्तना चाहिये यह वार्ता शंकराचार्यनेंभी कहीहै "जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्" अर्थ० हे मुमुक्षु पुरुषो तुम अत्यंत दया औ निठुरताका परित्यागकरके सर्वत्र सामान्यसें वर्तो इति ॥ यह दश प्रकारके यमोंके लक्षण हैं इति ॥ ॥ इस प्रकारसें दश प्रकारके यमोंको व्याख्या करके अब योगका दूसरा अंग जो नियम है तिसके लक्षणकूं निरूपण करेंहैं ॥

"वंशस्थं वृत्तम्"

जपस्तपो दानमथागमश्रुति-
स्तथास्तिकत्वं व्रतमीश्वरार्चनम् ॥
यथामितोषो मतिरप्यपत्रपा
बुधैर्दशैते नियमाः समीरिताः ॥ १० ॥

जप इति ॥ जप, तप, दान, वेदांतशास्त्रका श्रवण, आस्तिकभाव, व्रत, ईश्वरपूजन, यथालाभमें संतोष, मति लज्जा, इस भेदसे नियमभी पूर्वाचार्योंने दश प्रकारके कथन[१] कियेहैं तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै "यमश्च नियमश्चैव दशधा संप्रकीर्तितः" अर्थ० यम औ नियम यह दश दश प्रकारके हैं इति ॥ औ "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" इन पतंजलिके सूत्रोंविषे जो यम नियम पांच पांच प्रकारके निरूपण कियेहैं सो दूसरे पांच पांचोंकेभी उपलक्षण जानलेने नहि तो उक्त याज्ञवल्क्यके वाक्यसाथ विरोध होवेगा तिनमें गुरुमुखद्वारा ग्रहणकरके गायत्री प्रणवादिक पवित्र मंत्रोंका अथवा वेदका जो अध्ययन करणा है तिसका नाम

१ श्रद्धा.

•जपहै, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै "गुरु- णा चोपदिष्टोपि वेदबाह्यविवर्जितः ॥ विधिनोक्तेन मार्गेण मंत्राभ्यासो जपः स्मृतः ॥ अधीत्य वेदं सूत्रं वा पुराणं वेतिहासकम् ॥ एतेष्वभ्यसतस्तस्य अभ्यासेन जपः स्मृतः" अर्थ० वेदोक्त मंत्रका गुरुमुखद्वारा ग्रहणकरके विधिपूर्वक जो आवर्तन करणा है तिसका नाम जप है" तथा गुरुमुखद्वारा अध्ययन- करके वेद, ब्रह्मसूत्र, पुराण, इतिहासादिक सत्शास्त्रोंका जो अभ्यास करणा है सोभी जप कहियेहै इति ॥ सो जप वाचिक जप, मानस जप इस भेदसें दो प्रकारका है पुना सोभी दो दो प्रकारका है तिनमें उच्चैः औ उपांशु यह दो भेद वाचिक जपके हैं तथा ध्यानरहित औ ध्यानयुक्त यह दो भेद मानस जपके हैं तिन च्यारोंमें ध्यानयुक्त मानस जप उत्तम है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करीहै "उच्चैर्जपरदुपांशुस्तु सहस्रगुण उच्यते ॥ मानसश्च तथो- पांशोः सहस्रगुण उच्यते ॥ मानसाच्च तथा ध्यानं सहस्रगुण मुच्यते" अर्थ० उच्चैः जप करणेसें शनैः शनैः करणा सहस्र- गुण अधिक फलका हेतु होवेहै औ शनैः शनैः करणेसें म- नविषे करणा सहस्रगुण अधिक होवेहै तथा केवल मनविषे

१ शनैः शनैः जपकरणेका नाम उपांशुजप है.

करणेतें एकाग्र मनसें करणा सहस्रगुण अधिक होवेहै इति ॥ सो मंत्रके ऋषि छंद औ देवता तथा न्यासकूं जानकरकेहि जप करणा चाहिये जानेविना नहि. काहेतें ऋषि देवता आदिकोंके जानेसेंविना जप करणेसें यथोक्तफलकी प्राप्ति नहि होवेहै, यह वार्ताभी याज्ञवल्क्यसंहितामेंहि कथन करीहै

"ऋषिं छन्दोधिदैवं च ध्यायन् मंत्रस्य सत्तमे ।

यस्तु मंत्रं जपेद्गार्गि नदेवं हि फलप्रदम्" ॥

अर्थ० हे गार्गि जो पुरुष मंत्रके ऋषि छंद औ देवताके स्मरणपूर्वक जप करताहै तिसकूंहि यथोक्तफलकी० प्राप्ति होवेहै अन्यकूं नहि इति ॥ तथा मंत्रके अर्थकूंभी जानना चाहिये, यह वार्ता वृद्धहारीतसंहितामेंभी कथन करी है

"इत्थं संचिंत्य मंत्रार्थं जपेन्मंत्रमतंद्रितः ।

अविदित्वा मनोरर्थं जपेत् प्रयतमानसः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति स्वरूपं च न विन्दते" ॥

अर्थ० इस प्रकारसें साधक पुरुषकूं आलस्यसें रहित होय-० करके मंत्रके अर्थकूं चिंतन करते हुये जप करणा. योग्यहै औ मंत्रके अर्थकूं जानेसेंविना जो एकाग्र मनकरकेभी जप करे तो सो मंत्रकी सिद्धि औ उपास्यदेवताके स्वरूपकूं प्राप्त नहि होवेहै इति ॥ तथा सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्मेंभी कहाहै "य-

देव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति अर्थ० जो पुरुष मंत्रके अर्थ औ रहस्यकूं जानकर श्रद्धापूर्वक तिसका जप करताहै तिसहिकूं अधिक फलकी प्राप्ति होवेहै अन्यकूं नहि इति ॥ किंच यह जपरूप यज्ञहि सर्व यज्ञोंमें श्रेष्ठ है, यह वार्ता गीताके दशमाध्यायविषे भगवान्नेभी कथन करीहै "यज्ञानां जपयज्ञोस्मि" अर्थ० हे अर्जुन ज्योतिष्टोमादि सर्वयज्ञोंमें जपरूप यज्ञ मेरा स्वरूप है इति ॥ तथा मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायविषेभी कहाहै

"ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हंति षोडशीम्" ॥

अर्थ० वैश्वदेवहोम, बलिदान, नित्यश्राद्ध, अतिथिभोजन यह जो च्यारि प्रकारके पाकयज्ञ हैं औ दर्शपौर्णमासादिक जो विधियज्ञ हैं सो सर्वहि जपरूप यज्ञके सोलमा भागके समानभी नहि होवेहैं इति ॥ सो इस कालविषे जितनी जपकी संख्या होवे तिससें चतुर्गुण अधिक करणा चाहिये यह वार्ता मंत्रशास्त्रमेंभी कहीहै "कलौ संख्या चतुर्गुणा" अर्थ० कलियुगमें मंत्रकी संख्यासें चतुर्गुण जप अधिक करणा चाहिये इति ॥ औ जो विधिपूर्वक अनुष्ठान करणेतेंभी मंत्रकी सिद्धि नहि होवे तो तिसमें प्रतिग्रह आदिक प्रतिबंधक जानना, यह वार्ता महादेवजीनेभी कथन करीहै

"जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्वरानने" ॥

अर्थ० हे पार्वति जिस पुरुषकी जिह्वा तो पराये अन्न भक्षणकरके दग्ध होवेहै औ हस्त दान लेनेकरके दग्ध होवेहै तथा परस्त्रियोंके चिंतनकरके मन दग्ध होवेहै तिसकूं किस प्रकारसें मंत्रकी सिद्धि प्राप्त हो सकेहै इति ॥ यहि कारण तप आदिकोंकी असिद्धिविषेभी जानलेना ॥ तथा तपका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें निरूपण कियाहै

"विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम् ॥

अर्थ० धर्मशास्त्रोक्तविधिपूर्वक कृच्छ्रचांद्रायणादिक व्रतोंकरके जो शरीरका शोषण करणाहै सोई सर्व तपोंसें उत्तम तप कहियेहै इति ॥ यह वार्ता महाभारतमेंभी कथन करी है "तपो नानशनात्परम्" अर्थ० अनशनतें परे दूसरा कोई तप नहि है इति ॥ ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपना शरदऋतुमें कंठपर्यंत जलविषे स्थित होना वर्षाऋतुमें मैदानमें रहना इंगितमौन अथवा काष्ठमौन धारण करणा इत्यादि तिस त-

१ मौन धारणकरके पश्चात् नेत्रादिकोंसें जो सैनत करणी है तिसका नाम इंगितमौन है। २ औ जो सैनतभी नहि करणी है तिसका नाम काष्ठमौन है।

पके अवांतर भेद हैं ॥ सो तप करणेतें विना योगकी सिद्धि नहिं होवेहै, यह वार्ता योगभाष्यमें व्यासजीनेभी कथन करीहै "नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति" अर्थ० जो पुरुष तपकरके वर्जित है तिसकूं योगकी सिद्धि नहि होवेहै इति तथा मनुस्मृतिके एकादशे अध्यायविषेभी कहाहै

"औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यंति तपस्तेषां हि साधनम्" ॥

अर्थ० रसायनादिक औषधियां औ शरीरकी अरोगता तथा वेदादिक विद्या औ आकाशगमन अमृतपानादिक जो विविधप्रकारकी देवतोंकी स्थिति हैं इत्यादिक सर्व कार्य तपकरकेहि सिद्ध होवेंहैं काहेतें तपहि तिनकी सिद्धिविषे परम साधनभूत है इति ॥ तथा विष्णुस्मृतिमें पृथिवीकेमति विष्णु भगवान्नेभी कहाहै॥

"यद्दुश्चरं यद्दुरापं यद्दूरं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तत्तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥
तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं जगत् ।
तपोमध्यं तपोन्तं च तपसा च तथावृतम्" ॥

अर्थ० हे देवि पर्वतादिक जो दुर्गम स्थान हैं औ आकाशगमनादिक जो दुष्प्राप्य सिद्धियां हैं तथा सुमेरु आदिक

जो दूरदेश हैं औ समुद्रपानादिक जो दुष्कर कर्म हैं सो स-र्वेहि तपकरके सिद्ध होवेहैं, यह वार्ता अगस्त्यादिक महर्षियों-विषे विख्यातहि है सो तिस तपका कोईभी अतिक्रमण न-हि करसकैहै अर्थात् इस जगत्में ऐसा कोई पदार्थ नहिहै जो तपकरके नहि प्राप्त होसकैहै तथा देवता मनुष्य दैत्यादिक जंतुवोंकरके संकुल जो यह सर्व चराचर जगत् है तिसकोभी तपकरकेहि उत्पत्ति स्थिति औ विनाश होवेहै तथा तपकर-केहि यह जगत् सर्वतरफसें आवृत होय रहाहै इति ॥ तथा भागवतके द्वितीयस्कंधमेंभी लिखाहै

"स चिंतयन् द्व्यक्षरमेकदांभ-
स्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ।
स्पर्शेषु यत् षोडशमेकविंशं
निष्किंचनानां नृप यद्धनं विदुः" ॥

अर्थ० सृष्टिके आदिकालविषे विष्णुभगवानकी नाभिसें उत्पन्न भये कमलमें स्थित भया ब्रह्मा जगत्की रचना कर-णेमें असमर्थ हुया चिंतन करताथा तो एक समयविषे ककारसें लेकरके मकारपर्यंत जो स्पर्शसंज्ञावाले अक्षर हैं तिनमें-सें सोलमा औ एकीशवांअर्थात् तप तप इस प्रकारसें दो अक्षरोंके दोवार श्रवण करता भया । तात्पर्य यह है ब्रह्मा

जो तुं तप करेगा सो सृष्टिकी उत्पत्ति करणेमें समर्थ होवेगा इति ॥ सो तप सात्विकतप, राजसतप, तामसतप, इस भेदसें तीन प्रकारका है सो तिन तीनोंके लक्षण गीताके सप्तदशे अध्यायविषे भगवान्‌ने कथन कियेहैं तिनमें

"श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते" ॥

अर्थ० हे अर्जुन जो विवेकी पुरुष फलकी कामनाकरके रहित भये परम श्रद्धापूर्वक पूर्वोक्तलक्षण तपका आचरण करतेहैं, सो सात्विकपत कहियेहै इति ॥ तथा

"सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्" ॥

अर्थ० जो पुरुष जगत्‌विषे अपणे सत्कार मान पूजादिकोंके अर्थ दंभपूर्वक तप करतेहैं सो राजस तप कहियेहै सो तप चलायमान् औ अध्रुव होवेहै अर्थात् तिसका परलोकविषे कुछभी फल नहि होवेहै इति ॥ तथा

"मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्" ॥

अर्थ० जो मूढ पुरुष शरीरकूं अत्यंत पीडा देकर हठपूर्वक तप करतेहैं अथवा किसीके मारण उच्चाटनके अर्थ कर-

तेहै सो तामस तप कहियेहै इति ॥ यातें मुमुक्षु पुरुषकूं तो अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षपदके देनेहारे सात्विक तपकाहिं आचरण करणा योग्य है ॥ तथा दानका लक्षणभी याज्ञवल्क्यसंहितामेंहि निरूपण कियाहै

"न्यायार्जितधनं चापि विधिवद्यत्प्रदीयते ।
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतदुदाहृतम्" ॥

अर्थ० स्वधर्मके अनुसार न्यायपूर्वक संचित कियेहुये द्रव्यका विधिवत् श्रद्धाकरके जो याचकोंकेप्रति समर्पण करणा है तिसका नाम दान है इति ॥ सो दान करणेयोग्य पदार्थ बृहस्पतिसंहितामें कथन कियेहैं

"अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं
भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।
लोकास्त्रयस्तेन भवंति दत्ता
यः कांचनं गां च महीं च दद्यात्" ॥

अर्थ०अग्निदेवताका प्रथमपुत्र सुवर्ण है औ पृथिवी विष्णुकी पुत्री है तथा गौ सूर्यकी पुत्री है यातें जिस पुरुषने सुवर्ण पृथिवी औ गौका दान कियाहै तिसने मानो त्रिलोकीकाहि दान करलिया इति ॥ तिनसेंभी अन्नका दान करणा अति उत्तम है, यह वार्ता संवर्तसंहितामेंभी कथन करीहै

"सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं फलम् ।
यस्मादन्नात् प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत् प्रभुः ।
तस्मादन्नात्परं दानं न भूतं न भविष्यति" ॥

अर्थ० सर्व दानोंमेंसें अन्नका दान ऋपिलोकोंने उत्तम कथन कियाहै काहेतें जिस कारणतें अन्नकरकेहि सर्वप्राणियोंका जीवन होवेहै ॥ तथा अन्नकरकेहि कल्पकल्पके आदिविषे ब्रह्मा सर्व प्रजाकी उत्पत्ति करेहै यातेंभी अन्नसें परे दूसरा कोई दान न हुयाहै औ न होवेहिगा इति ॥ सो यह दान सुपात्रकेप्रतिहि देना चाहियें कुपात्रकेप्रति नहि, काहेतें कुपात्रविषे दान कियाहुया निष्फल होवेहै, यह वार्ता वृद्धगौतमसंहितामें युधिष्ठिरके प्रति कृष्णभगवान्‌नेभी कथन करीहै

"अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानि सुबहून्यपि ।
वृथा भवंति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुतिर्यथा" ॥

अर्थ०हे राजेंद्र अपात्रोंकेप्रति विपुल दान दियेहुयेभी भस्मविषे घृतकी आहुतिकी न्यांई व्यर्थहि होवेंहैं इति ॥ किंच दानकरकेहि द्रव्यकी रक्षा होवेहै अन्यथा नहि, यह वार्ता अमरकोशकी टीकामेंभी लिखीहै

"उपार्जितानां वित्तानां दानमेव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परिवाह इवांभसाम्" ॥

अर्थ० जैसे तलावविषे स्थित भये जलकी झरणेद्वारा प्रस्रवणकरके कृमि दुर्गंधि आदिकोंसे रक्षा होवेहै तैसेहि संचित कियेहुये द्रव्योंकी दानकरणेतेंहि चोर, राजा, अग्नि, आदिकोंसें रक्षा होवेहै इति ॥ तथा अन्य ग्रंथमेंभी कहाहै

"चत्वारो धनदायादा धर्माग्निनृपतस्कराः ।
ज्येष्ठस्य त्ववमानेन कुप्यंति सोदरास्त्रयः" ॥

अर्थ० संचित कियेहुये द्रव्यके धर्म, अग्नि, राजा, चोर यह च्यारि भागी होवेहैं तिन च्यारोंमें धर्म बडा भाई है सो तिसके अपमान करणेतें अर्थात् दान नहि करणेतें दूसरे तीनों भाई कोपकूं प्राप्त होतेहैं अर्थात् जातो अग्निसें जलजावेहै जातो राजा दंडकरके आकर्षण करेहै अथवा चोर हरण करलेवेहै इति ॥ यातें द्रव्यकी रक्षाकेअर्थभी अवश्यहि दान करणा योग्य है ॥ किंच सत्पुरुषोंका जो द्रव्यसंचय होवेहै सो दानके अर्थहि होवेहै इति ॥ यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेंभी कथन करीहै

"पिबंति नद्यः स्वयमेव नोदकं
स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः ।
धाराधरो वर्षति नात्महेतवे
परोपकाराय सतां विभूतयः" ॥

अर्थ० जैसे जलकरके पूर्ण गंगाआदिक नदियां वहतीहैं

सो अपणे जलपानके अर्थ नही वहती किंतु तीरके रहनेहारे, अन्यपुरुष पशु पक्षि आदिकोंके जलपान करनेके अर्थही वहती है औ जैसे आम्रादिक वृक्ष अनेक फलोंकूं धारण करतेहै सो अपणे भक्षण करणेके अर्थ नहि किंतु अन्य पुरुष प्रक्षी आदिकोंके भक्षण करणेवास्ते धारण करतेहैं तथा जैसें मेघ वर्षाऋतुविषे जलकी वर्षा करेहै सो अपणे लाभके अर्थ नहि करेहै किंतु अन्य पुरुष पशुआदिकोंके अर्थहि करेहै तैसेहि अनेक व्यापारोंकरके सत्पुरुष जो द्रव्यका संचय करतेहैं सो अपणे उपभोगके अर्थ नहि करते किंतु परोपकार अर्थात् सत्पात्रोंविषें दान करणेके अर्थहि करतेहैं इति ॥ किंच दान करकेहि पुरुष महत् पदकूं प्राप्त होवेहै यह वार्ता पराशरस्मृतिमेंभी कथन करीहै

"दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः" ॥

अर्थ० दानकरकेहि यह पुरुष स्वर्गकूं प्राप्त होवेहै औ दानकरकेहि परम सुखकूं प्राप्त होवेहै तथा इस लोक औ परलोकविषें दानकरके यह पुरुष पूज्य होवेहै इति ॥ तथा मोक्षकी प्राप्तिभी दानमेंहि होवेहै, यह वार्ता यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै "रातेर्दातुः परायणम्"

अर्थ० सो परमात्मा द्रव्यके दानकरणेहारें पुरुषोंका परायण है अर्थात् जो पुरुष द्रव्यका दान करणेहारा है तिसकूंहि अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ सो दान उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, इस भेदसें तीन प्रकारका है तिन तीनोंके लक्षण पराशरस्मृतिविषे कथन कियेहै

"अभिगम्योत्तमं दानमाहूतं चैव मध्यमम् ।
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानं तु निष्फलम्" ॥

अर्थ० धनार्थी पात्रके गृहविषे आप जायकर जो दान देनाहै तिसका नाम उत्तम दान है औ अपणे गृहविषे बुलायकर जो दान देनाहै सो मध्यम दान कहियेहै. तथा याचते हुये अर्थीकूं जो दान देनाहै सो कनिष्ठ दान है औ जो सेवा करणेहारेकूं दान देनाहै सो तो निष्फलहि होवेहै इति ॥ पुनः सो दान सात्विक, राजस, तामस इस भेदसें तीन प्रकारका है तिन तीनोंके लक्षण गीताके सप्तदशे अध्यायमें भगवान्‌ने अर्जुनकेप्रति कथन कियेहैं तिनमें

"दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्" ॥

अर्थ०हमारेकूं दान करणा उचितहि है ऐसी बुद्धिपूर्वक कुरुक्षेत्रादि पवित्र देश औ सूर्यग्रहणादिक कालविषे वेदा-

ध्ययनआदिक सद्गुणोंकरके युक्त अनुपकारी विप्रकूं फ-लकी कामनासें रहित होयकर विधिवत् जो दान करणाहै तिसका नाम सात्विक दान है ॥ तथा

"यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्" ॥

अर्थ० इतना द्रव्य व्यय होजावेगा इसप्रकार चित्तमें क्लेशकरके औ देशकालादिकोंका विचार नहि करके फलकी कामनापूर्वक अपणेऊपर उपकार करणेहारे पुरुषकूं केवल लोकविषे यशके अर्थ जो दान करणा है सो राजस दान कहियेहै ॥ तथा

"अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्" ॥

अर्थ० अपवित्रदेशविषे औ सूतकादिककालविषे असत्कार औ अवज्ञापूर्वक कुपात्रपुरुषकेप्रति जो दान करणा है तिसका नाम तामस दान है इति ॥ किंच हमारेपास विपुल द्रव्य नहिहै यातें हम किसप्रकारसें दान करें ऐसा नहि जानना चाहिये किंतु यथाशक्तिहि दान करणा योग्य है काहेतें जो धनी पुरुषकूं विपुल दानकरके फलकी प्राप्ति होयेहै सोई दरिद्री पुरुषकूं अल्पदानकरके प्राप्त होयेहै ॥

इस प्रसंगपर महाभारतके आश्वमेधिकपर्वविषे एक इतिहास लिखाहै सो संक्षेपसें यहां लिखेहैं ॥ सो जैसे जिस कालविषे राजा युधिष्ठिर अश्वमेधयज्ञकी समाप्तिके अनंतर स्नानकरके सर्व ऋषिमुनियोंकरके संस्तुत भया सिंहासनपर बैठा था तो इतनेमें अर्ध सुवर्णके शरीरवाला एक नकुल[1] आयकर सर्व सभाके समक्ष कहता भया हे राजन्, यह तेरा यज्ञ कुरुक्षेत्र-निवासी ब्राह्मणके तुल्य नहि भयाहै तूं काहेतें वृथा अभिमान करताहै, जब इस प्रकार नकुलने मनुष्यभाषामें विस्मयकारक वचन कहा तो सर्व ब्राह्मण तिसके समीप जायकर पूछने लगे हे नकुल, जो जो महान् यज्ञ पृथिवीविषे होताहै तहां तहां हम अवश्य गमन करतेहैं सो हमनें इस समयमें जिस प्रकारका विधपूर्वक युधिष्ठिरका यज्ञ संपूर्ण हुयाहै ऐसा अन्य कोई नहि देखाहै औ श्रवणभी नहि कियाहै यातें जो तैनें कोई देखा अथवा श्रवण किया होवे तो हमारेमति यथार्थ कथन कर, जब इस प्रकारसें तिन ब्राह्मणोंने कहा तो नकुल कहने लगा हे विप्रो, मैं आदिसेंलेकर अंतपर्यंत तुमारेआगे वर्णन करताहुं तुम एकाग्रमनकरके श्रवण करो, कुरुक्षेत्रमें उंछवृत्तिवाला[2] सहितपरिवारके एक

१ नोलिया. २ क्षेत्रादिस्थलोंसे अन्नके कणके चुगकरके भोजन करणेकी उंछवृत्ति कहते हैं.

शुक्लवृत्तनामा ब्राह्मण निवास करताथा सो कपोतपक्षीकी न्यांई चुग चुगकरके अन्नके कणके संचय करताथा औ तीसरे दिवस पीछे एकवार तिन कणकोंके सक्तु बनायकरके भक्षण करताथा औ जो कदाचित् तीसरा दिवस चूकजावे तो पुना षट्दिवसके अनंतर भक्षण करताथा इस प्रकारसें सहितपरिवारके तिसका नियम था तो एक समये दुर्भिक्षके पडनेसें तिसकूं तीन दिवसमेंभी भक्षण करणे योग्य कणकोंकी प्राप्ति नहि होतीभयी तो दूसरे तीन दिवसभी उपवासहि रहा पुना जब षट्दिवसके अनंतर कणकोंके सक्तु बनायकर च्यारि भागकरके सहित परीवारके भक्षण करणे लगा तो इतनमें वनमेंसें एक तपस्वी अतिथिने आयकर भोजनकी याचना करी तब ब्राह्मणने अतिथिकूं देखतेहि सत्कारपूर्वक किंचित्भी मनविषे खेदकूं नहि प्रातहोयकर अपणे भागके सक्तुवोंका द्रोण तिसकूं समर्पण करदिया तो सो अतिथिने प्रसन्नतापूर्वक भक्षण करलिया परंतु तिसकी तृप्ति नहि होती भयी तो सो ब्राह्मण विचार करणे लगा इतनेमें तिसकी स्त्रीने कहा हे स्वामिन्, तुम शोच काहेको करतेहो यह जो मेरे भागका द्रोण है सो इस अतिथिकूं अर्पण करदेवो तो ब्राह्मण कहनेलगा हे प्रिये, तूं षट्दिवससें क्षुधातुर है औ तेरा

शरीरभी वृद्धावस्थाकरके कृश होय गयाहै सो तुं अपणे भागकूं देकर किस प्रकारसें प्राणोंकूं धारण करेगी इत्यादिक वांक्योंकरके तिस ब्राह्मणने बहुत कहा तोभी सो स्त्री धैर्यसें चलायमान नहि होती भई तो तिसने सो अपणी स्त्रीका भागभी तिस अतिथिकूं अर्पण करदिया तोभी सो तृप्तिकूं प्राप्त नहि होता भया तब पुनः अपणे पिताकूं चिंतातुर देखकर तिसका पुत्र कहनेलगा हे पिता, यह मेरा भाग इस अतिथिकूं समर्पण करदेवो तो ब्राह्मणने कहा हे पुत्र, तेरी कुमारअवस्था है औ इस अवस्थामें पुरुषकूं क्षुधाभी विशेष लगतीहै औ पद्दिवससें तेरा उपवास है यातें यह द्रोण देकरके तूं किस प्रकारसें जीवेगा इत्यादिक वचनोंसेंभी जब वो धैर्यसें चलायमान नहि होताभया तो ब्राह्मणने तिसका भागभी अतिथिके प्रति समर्पण करदिया तिसके भक्षण करणेसेंभी तिसकी तृप्ति नहि होतीभयी तो पुनः अपणे श्वशुरकूं शोकातुर देखकर तिसकी स्नुषा[1] कहनेलगी हे पिता, यह मेरा भाग इस अतिथीकूं समर्पण करदेवो तो ब्राह्मणनें कहा हे पुत्रि, तेरा शरीर अतिकोमल है औ स्त्रियोंकूं पुरुषसें द्विगुणी क्षुधा लगती है औ तैनें पिताके गृहविषे बहुत सुख भोगेहै याते तुं पद्दिवससें क्षुधातुर भयी अपणे भागकूं अ-

1 पुत्रकी स्त्री.

र्पणाकरके किस प्रकारसें जीवेगी इत्यादिक वचनोंके कहनेसें-भी जब सो धैर्यसें चलायमान नहि होतीभयी तो ब्राह्मणनें तिसका भागभी अतिथिकेप्रति समर्पण करदिया तो सो तिसकूंभी भक्षण करजाताभया परंतु तिन च्यारोंकेहि मनमें किंचित्मात्रभी ग्लानि नहि होतीभयी किंतु अतिथिकी तृप्ति होनेसें अपणेकूं कृतार्थ मानते भये इस प्रकारसें सो ऋषि तिनका धैर्य औ उदारता देखकर बहुत प्रसन्नताकूं प्राप्त भया इतनेमें आकाशमें दुंदुभियोंके शब्द होने लगे औ पुष्पोंकी वृष्टि तिनके ऊपर पडने लगी औ इन्द्रादिक देवता आयकर तिन च्यारोंकूंहि विमानपर बैठायकरके स्वर्गकूं लेजातेभये औ सो ऋषिभी अंतर्धान होयगया तो पश्चात् हे ब्राह्मणो, मैं मध्यान्हकी उष्णताकरके तप्त भया अपणे बिलसें निकसकर जिस स्थलविषे तिस अतिथिके पान करनेसें पृथिवीपर जल पतित भयाथा तहां जायकर लोटा तो तत्कालहि तिस जलके औ सक्तुवोंके कणकोंके स्पर्शसें मेरा अर्ध शरीर कांचनमय होजाताभया तो तिसतें अनंतर मैं जहां जहां महान् यज्ञतप दानादिक श्रवण करताहुं तहां तहांहि जायकर लोटताहूं औ तुमारीभी सर्व यज्ञवाटिकामें लोटाहूं परंतु मेरे शरीरका दूसरा अर्ध भाग सुवर्णका नहि हुयाहै यातें मैं सत्य कहताहूं जो तुमारा यज्ञ तिस कुरुक्षेत्रनिवासी ब्राह्मणके तुल्य नहि

भयाहै इति ॥ यातें श्रद्धापूर्वक अल्पदान क्रिया हुआभी महत् फलका हेतु होवैहै इति ॥ तथा वेदांतश्रवणका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

"वेदांतश्रवणं प्रोक्तं सिद्धांतश्रवणं बुधैः" ॥

अर्थ० उपनिषदादिकरूप सिद्धांतवाक्योंके विधिपूर्वक श्रवण करणेका नाम वेदांतश्रवण है इति ॥ तथा आस्तिक्यका लक्षणभी तहांहि निरूपण कियाहै

"धर्माधर्मेषु विश्वासो यस्तदास्तिक्यमुच्यते" ॥

अर्थ० शास्त्रोक्त धर्म औ अधर्मविषे जो विश्वास है सो आस्तिक्य कहियेहै इति ॥ किंच आस्तिक पुरुषकाहि योगाभ्यासादिक सर्व शुभकर्मोंमें अधिकार है नास्तिकका नहिं, यह वार्ता मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायविषेभी कथन करीहै

"योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः" ॥

अर्थ० धर्म औ अधर्मके बोधक जो श्रुतिस्मृतिरूप मूल प्रमाण हैं तिनका "वेदवाक्यमप्रमाणं वाक्यत्वात् विप्रलंभकवाक्यवत्" अर्थ० वेदकावाक्य अप्रमाण है काहेतें वाक्य होनेतें विप्रलंभकवाक्यकी न्याई ॥ इत्यादिक अनुकूल

१ वंचक.

तर्कोंकूं आश्रय करके जो पुरुष अनादर करेहै सो वेदकी निंदा करणेहारा नास्तिक विद्वान् पुरुषोंकरके सर्व कर्मोंसें बाहिर करणेयोग्य है अर्थात् तिसके साथ कुछभी खानपान विवाह आदिक क्रिया नहि करणी चाहिये इति ॥ तथा धर्मशास्त्रोक्त विधिपूर्वक कृच्छ्रचांद्रायण आदिक व्रतोंका जो आचरण करणा है तिसका नाम व्रत है तिनमें कृच्छ्रव्रतका लक्षण मनुस्मृतिके एकादशे अध्यायविषे कथन कियाहै

"त्र्यहं प्रातरुयहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ॥
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥"

अर्थः-जो द्विजाति पुरुष प्राजापत्यनाम कृच्छ्रव्रत करणेकी इच्छावान् होवे सो प्रथमके तीन दिवस तो प्रातःकालविषे अर्थात् दिनके भोजनकालविषे एकवार भोजन करे औ दूसरे तीन दिवस रात्रीविषे एकवार भोजन करे तथा तीसरे तीन दिवस मांगेसें विनाहि जो अन्न आय प्राप्त होवे तिसकूं भक्षण करें औ चतुर्थ तीन दिवस केवल उपवास करे इस प्रकारसें द्वादश दिवसके व्रत पालनेसें प्राजापत्यनाम कृच्छ्रव्रत होवेहै इति ॥ सांतपनकृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, पराककृच्छ्र, यह च्यारि तिसके अवांतर भेद हैं इनके विशेष प्रकार मनुस्मृतिमें लिखे हैं तहां देखलेने, तथा चान्द्रायणव्रतका लक्षणभी तहांहि कथन कियाहै

"एकैकं ह्रासयेत्पिंडं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चांद्रायणं स्मृतम् ॥"

अर्थ० पूर्णमासीसें लेकर चतुर्दशीपर्यंत कृष्णपक्षविषे एक एक ग्रास घटावता जाना औ अमावास्यामें उपवास करणा पुना एकमसें लेकर पूर्णमासीपर्यंत शुक्लपक्षविषे एक एक ग्रास अधिक करते जाना इस प्रकारसें त्रिकालस्नानपूर्वक एकमासपर्यंत व्रत करणेसें पिपीलिकामध्यमनामा चांद्रायण-व्रत होवैहै इति ॥ तथा यवमध्यम, यतिचांद्रायण, शिशुचांद्रायण, यह तीन तिसके अवांतर भेद हैं तिनके लक्षणभी तहांहि कथन कियेहैं यहां विस्तारके भयसें नहि लिखे ॥ सो तिस भक्षणयोग्य ग्रासका परिमाण पराशरस्मृतिमें कथन कियाहै

"कुक्कुटांडप्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखम् ॥
एतं ग्रासं विजानीयात् शुद्ध्यर्थं व्रत शोधनम् ॥"

अर्थ० कुक्कटपक्षीके अंडेके समान अथवा जितना अपने मुखमें सुखपूर्वक प्रवेश होयसके तिसकूं व्रतकी शुद्धिके अर्थ ग्रास जानना चाहिये इति ॥ तथा जो अन्यभी एकादशी आदिक अनेकप्रकारकेहि व्रत हैं सोभी इनके अंतर्भूतहि जानलेने ॥ इन व्रतोंकरकेहि सर्व पापोंका क्षालन होवैहै, यह वार्ता मनुस्मृतिविषेभी कथन करीहै ।

"एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ॥"

अर्थ० इन उक्त व्रतोंकरके महापापीपुरुषोंकेभी पापरूप मलका क्षालन होवेहै इति ॥ तथा ईश्वरपूजनका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

"यदासम्यस्त्वभावेन विष्णुं वा रुद्रमेव वा ॥
यथाशक्त्यर्चयेत् भक्त्या एतदीश्वरपूजनम् ॥
रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टानृतादिभिः ॥
हिंसादिरहितः काय एतदीश्वरपूजनम् ॥"

अर्थ० विष्णुजीका अथवा महादेवजीका एकाग्रचित्तकरके यथाशक्ति पुष्पादिकोंसें जो अर्चन करणा है तिसका नाम ईश्वरपूजन है तथा जिस पुरुषका मन तो रागकामक्रोधादिक दोषोंसें रहित है औ वाणी असत्यभाषण कपटयुक्तभाषणादिकोंसें दूषित नहिहै तथा शरीर हिंसा परस्त्रीगमनादिकोंकरके दूषित नहिहै सोभी ईश्वरका पूजन है अर्थात् मनवाणीशरीरकी जो शुद्धि है सोई ईश्वरका परम पूजन है यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै

"यस्य वाङ्मनसी गुप्ते सम्यक्प्रणिहिते सदा ॥
वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्वमाप्नुयात् ॥"

अर्थ० जिस पुरुषके वाचा औ मन यह दोनों सम्यक्प्रका-

दूसें काम, लोभ, परका अनिष्टचिंतन, औ असत्यभाषणादि-कोंसें रक्षण किये हुये हैं तिस पुरुषकूंहि वेदाध्ययन, तप, त्याग, ईश्वरपूजनादिक सर्व कर्मोंका यथोक्त फल प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा अन्य स्थलमेंभी मोक्षपर्वविषेहि कथन कियाहै "वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ॥ एतान् वेगान् यो विषहेदुदीर्णांस्तं मन्येहं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥"

अर्थ० अनृतादिक भाषणरूप जो वाचाका वेग है औ कामादिक जो मनका वेग है तथा जो क्रोधका वेग है औ जो विधित्साका वेग है तथा मिष्टान्नभोजनोंविषे रुचिरूप जो उदरका वेग है औ स्त्रीसंगमकी अभिलाषारूप जो उपस्थका वेग है इन सर्व महावेगोंकूं जो पुरुष सहन करेहै तिसहिकूं हम ब्राह्मण औ मुनि मानतेहैं दूसरेकूं नहि इति ॥ सो यह ईश्वरपूजन शुद्धमनकरकेहि करणा चाहिये, केवल पुष्पादिकोंसें नहि, यह वार्ता शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

"गभीरे कासारे विशति विजने घोरविपिने
विशाले शैले च भ्रमति कुसुमार्थं जडमतिः ॥
समर्प्यैकं चेतः सरसिजमुमानाथ भवते
सुखेनैव स्थातुं जन इह न जानाति किमहो ॥"

अर्थ० हे महादेव आपकूं समर्पण करणेयोग्य पुष्पोंके

अर्थ अविवेकी पुरुष निर्जन वन औ गहन तडागविषेभी प्र-
वेश करतेहैं तथा विकट पर्वतपरभी आरोहण करतेहैं परंतु
अपणे समीपहि स्थित जो प्रेमरूप सुगंधिकरके युक्त मनरूप
सुंदर कमल हैं तिसकूं सुखसैंहि आपकेविषे अर्पण करके
स्थित नहि होतेहैं यह बडे आश्चर्यकी वार्ता है इति ॥ तथा
प्रारब्धकर्मके अनुसार जिस प्रकारका अन्नवस्त्रादिक शा-
स्त्रोक्त भोग आय प्राप्त होवें तिसहीवें जो तृप्ति माननी है
तिसका नाम संतोष है ॥ सो यह संतोषहि योगीलोकोंका
परम धन है, यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कहीहै

"सर्पाः पिबंति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवंति ॥
कंदैः फलैर्मुनिवरा गमयंति कालं
संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥"

अर्थ० अजगर केवल पवनकाहि आहार करतेहैं परंतु दु-
र्बल नहि होतेहैं औ वनके रहनेहारे हस्ती शुष्क पत्रतृणादि-
कोंके भक्षण करणेतेंहि बलवान् औ पुष्ट होतेहैं तथा श्रेष्ठ
मुनि ऋषि तपस्वी लोक कंदमूलफलोंकरकेहि सर्व आयुषका
निर्गमन करदेतेहैं यातें यह जानाजावेहै जो पुरुषकी संतो-
षहि परम निधि है इति ॥ तथा मनुस्मृतिमेंभी कहाहै

"संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ॥
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥"

अर्थ० सर्व सुखोंका मूल संतोष है औ सर्व दुःखोंका मूल तृष्णा है यातें जो पुरुष सर्व सुखकी इच्छा करैहै तिसकूं प्रमादसैरहित होयकरके परम संतोषहि करणा चाहिये इति ॥ तथा योगवासिष्ठमेंभी कहाहै

"संतोषैश्वर्यसुखिनां चिरं विश्रांतचेतसाम् ॥
साम्राज्यमपि शांतानां जरत्तृणलवायते ॥"

अर्थ० जो पुरुष संतोषरूप परम ऐश्वर्यकरके सुखी औ विश्रांतचित्त हैं तिनकूं चक्रवर्ती राज्यका सुखभी शुष्कतृणके समान तुच्छ प्रतीत होवैहै इति ॥ यातें साधक पुरुषकूं अनायासमें प्राप्त जो भिक्षादिक भोजन औ निवास करणेकूं गुहा आदिक स्थान हैं तिनहीमें संतोष करणा योग्य है भोजनादिकोंके अर्थ धनीलोकोंके अधीन नहि होना चाहिये, यह वार्ता भागवतके द्वितीयस्कंधमें शुकदेवजीनेभी कथन करीहै

"सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासै-
र्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥
सत्यंजलौ किं पुरुधान्नपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥"

अर्थ० ईश्वरनिर्मित पृथिवीरूप विस्तृत शय्याके होनेतें अन्य पलंग आदिक शय्याके अर्थ काहेको प्रयास करणा चाहिये औ अपणी स्थूल भुजारूप सिरानेके होनेतें अन्य कार्पासादिनिर्मित सिरानोसें क्या प्रयोजन है तथा ईश्वरके दिये हुये अपणे दोनों हस्तरूप पात्रके होनेसें पुना अन्य कलशादिक पात्रोंसें क्या प्रयोजन है औ दशों दिशा तथा वल्कल मृगचर्मादिक वस्त्रोंके होनेसें अन्य रेशम आदिक वस्त्रोंसें क्या कार्य है इति ॥ तथा भर्तृहरिनेभी वैराग्यशतकमें कहाहै

"गंगातरंगकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिंडरता मनुष्याः ॥"

अर्थ० गंगाजीके तरंगके कणोंकरके शीतल औ विद्याधरोंकरके सेवित जो हिमालय पर्वतविषे गुहाआदिक सुंदर स्थान हैं सो इस कालमें क्या नष्ट होगयेहैं, जो विवेकी पुरुषभी सहित अपमानके स्थानादिकोंके अर्थ धनीलोकोंकी अधीनता करतेहैं इति ॥ यद्यपि यह भर्तृहरिका कहना यथार्थ है तथापि इस कालविषे अन्नकेविना शरीरकी स्थिति नहि संभवेहै, यह वार्ता पराशरसंहितामेंभी कथन करीहै

"कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः ॥
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ॥"

अर्थ० सत्युगमें प्राणोंकी अस्थियोंविषे स्थिति थी अर्थात् जबपर्यंत शरीरमें अस्थियां रहती थीं तबपर्यंत प्राण शरीरका परित्याग नहिकरतेथे औ त्रेतायुगमें मांसके आश्रयमाण रहतेथे तथा पुना द्वापरयुगमें जबपर्यंत शरीरविषे रुधिर रहताथा तबपर्यंत प्राणन हि निकसतेथे औ इस समय कलियुगमें तो अन्नकरके हि प्राणोंकी स्थिति होवेहै आदिशब्दसें दुग्धादिकोंका ग्रहण जानना" इति ॥ औ जो पूर्वकालविषे पृथिवीसें कंदमूलादिक निकसतेथे सोभी पापके प्रभावसें इस कालविषे सम्यक्प्रकारसें नहि मिलतेहैं यह वार्ता सुभाषितरत्नभांडागारमेंभी कथन करीहै

"धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यं च दूरे गतं
पृथ्वी मंदफला नराः कपटिनो वित्तं च. पापार्जितम् ॥
राजानोऽर्थपरा न रक्षणपरा नीचा महत्वं गताः
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवंति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ॥"

अर्थ० जिस कालसें कलियुगका आगमन भयाहै तबसेंहि स्वस्वकुलका धर्म जो वेदाध्ययनादिक था सो लोकोंने परित्याग करदिया अर्थात् लोभके वशीभूत होयकरके ब्राह्म-

णभी शूद्रोंकी सेवामें तत्पर होयरहेहैं ॥ औ कृच्छ्रचांद्रायण आदिक व्रतोंका आचरणरूप जो तप था सोभी नष्ट होगयाहै तथा सत्यभाषण करणा तो अनेक योजनोंपर दूरहि चला गयाहै औ पृथिवीसें जो मधुर रसदायक कंद मूल फल निकसतेथे सोभी मंद पड गयेहैं तथा पुरुषभी वहुलतासें कपटी होगयेहैं औ द्रव्यकाभी पापकरकेहि संचय होवेहै तथा राजाभी लोभके वश भये प्रजाकूं पीडन करतेहैं रक्षामें तत्पर नहिहैं औ जो नीच पुरुष थे सो महत्ताकूं प्राप्त होगयेहैं तथा जो निष्कपट साधु पुरुष हैं सो क्लेशकूं भोगतेहैं औ जो कपटी दुष्ट पुरुष हैं सो मोदपूर्वक विचरते हैं इति ॥ यातें पृथिवीविषे कंदमूलोंकी न्यूनता होनेतें औ प्राणोंकूं अन्नके आधार होनेतें इस समयविषे तो साधक पुरुषकूं किसी पवित्र ग्रामके समीपहि नदीके किनारे अथवा देवालये वा उपवनविषेहि निवास करणा चाहिये, यह वार्ता मनुस्मृतिके षष्ठाध्यायविषेभी कथन करीहै "ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्" अर्थ॰ त्यागी पुरुषकूं अन्नकेः अर्थ ग्रामका आश्रय करणा चाहिये इति ॥ इस प्रकारसें ग्रामका आश्रयकरकेभी सर्वदा एकके गृहविषेहि भोजन नहि करणा चाहिये किंतु भिक्षावृत्तिसेंहि शरीरका निर्वाह चटाना योग्य है, यह वार्ता अत्रिसंहितामेंभी कथन करीहै

"चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥
एकान्नं न तु भोक्तव्यं बृहस्पतिकुलादपि ॥"

अर्थ० म्लेच्छके गृहसें अर्थात् शूद्रके गृहसेंभी भिक्षाका आचरण करलेना चाहिये परंतु बृहस्पतिकी कुलकाभी पवित्र ब्राह्मण होवे तोभी तिस एककाहि सर्वदा अन्न नहिं भक्षण करणा चाहिये इति ॥ तथा मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायमेंभी कहाहै

"भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ॥
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥"

अर्थ० ब्रह्मचर्यादिक व्रतके आचरण करणेहारा जो पुरुष है तिसकूं सर्वदा एकका अन्न नहि भक्षण करणा चाहिये किंतु भिक्षावृत्तिसेंहि वर्तना योग्य है काहेतें व्रती पुरुषकूं भिक्षावृत्ति उपवासके तुल्य ऋषिलोकोंने कथन करीहै इति ॥ तथा वसिष्ठसंहितामेंभी कहाहै

"उपवासात्परं भैक्षं दयादानाद्विशिष्यते" .

अर्थ० दान करणेसें दया करणी अधिक है औ उपवास करणेसें भिक्षाका आहार करणा श्रेष्ठ है इति ॥ तथा भर्तृहरिनेभी वैराग्यशतकमें कहाहै

"भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा
दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम् ॥
सर्वत्रान्वयमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं
शंभोः सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसंति योगीश्वराः ॥"

अर्थ० भिक्षाका जो आहार है सो दीनताकरके रहित औ अप्रतिहत है अर्थात् कोईभी तिसमें विघ्न नहि करसकैहै तथा भयके छेदन करणेहारा है काहेतें जो एकके गृहविषेहि सर्वदा भोजन करतेहैं तिनकूंहि तिस गृहस्थके प्रतिकूलाचरण करणेसें भय होवेहै औ मात्सर्य, मद, अभिमानादिकोंकेभी मथन करणेहारा है काहेतें जब हस्तविषे झोलीहि पकडलीया तो अभिमानादिक कैसे संभवेहैं ॥ तथा दुःखोंके समूहकूंभी नाश करेहै काहेतें क्षुधासें अधिक अन्नके भक्षण करणेसेंहि अजीर्णादिक सर्व रोगोंकी उत्पत्ति होवेहै सो अधिक भक्षण रसदायक अन्नके विना संभवता नहि औ भिक्षामें विशेषकरके रसदायक अन्नकी प्राप्ति नहि होवेहै यातें रोगोंकी उत्पत्ति नहि होवेहै ॥ तथा प्रयत्नसें विनाहि सुलभ औ विरक्त साधुजनोंकूं अत्यंत प्रिय तथा सोमपानके समान पवित्र है तथा अवार्य कहिये कोईभी तिसका वारण नहि करसकैहै ऐसा जो अक्षयनिधिरूप महादेवजीके यज्ञसमान भिक्षान्न

अन्न है तिसकी योगीश्वरलोकभी स्तुति करतेहैं इति ॥
औ जो पूर्व नवमश्लोककी टीकाविषे योगाभ्यासीकूं स्निग्ध अन्न भक्षण करणा कथन कियाहै सो तो हठयोगके अभ्यासकालमें जानना, अभ्यासके परिपक्व हुये पीछे सो नियम नहि है औ जो अत्यंत वृद्ध अथवा रोगग्रस्त अथवा अभ्यासके परिश्रमसें अतिकृश शरीर होवे तो एकके अन्न भक्षण करणेसेंभी दोष नहि होवेहै परंतु आपत्कालसें विना राजाका अन्न तो त्यागी पुरुषकूं कदाचित्भी भक्षण नहि करणा चाहिये, काहेतें तिसका अन्न अत्यंत अपवित्र होवेहै, यह वार्ता मनुस्मृतिके चतुर्थाध्यायविषेभी कथन करीहै

"दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥"

अर्थ० दश कसाईके समान एक तेली होवेहै औ दश तेलियोंके समान एक कलाल होवेहै तथा दश कलालोंके समान एक वेश्या होवेहै औ दश वेश्याके समान एक राजा होवेहै यातें तिसका अन्न अतीव अपवित्र होवेहै इति ॥ तथा मतिका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

"विहितेषु च सर्वेषु श्रद्धा या सा मतिर्भवेत् ॥"

अर्थ० वेदविहित जो यज्ञ तप दान योगादिक कर्म हैं

तिनविषे जो असंभावनासें रहित श्रद्धा है, तिसका नाम मति है इति ॥ किंच श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान किया हुयाहि योगाभ्यास फलदायक होवेहै, यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलीनेभी कथन करीहै

"श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥"

अर्थ० केचित् देवता आदिकोंकूं तो जन्मसेंहि योगकी सिद्धि होवेहै औ मनुष्योंकूं तो श्रद्धा वीर्य स्मृति प्रज्ञा इनके अनुष्ठानपूर्वकहि योगकी सिद्धि होवेहै अर्थात् प्रथम श्रद्धा होवे तो अभ्यास करणेमें उत्साहरूप वीर्य होवेहै वीर्यके अनंतर एकसें दूसरी भूमिकाविषयक स्मृति होवेहै तिसके अनंतर चित्तका समाधानरूप समाधि होवेहै समाधिके अनंतर विवेकख्यातिरूप प्रज्ञा होवेहै तिसतें पश्चात् संप्रज्ञातसमाधि होवेहै तिसतें अनंतर असंप्रज्ञातसमाधिकी सिद्धि होवेहै इस प्रकार परंपरासें योगकी सिद्धिविषे श्रद्धाहि मूलकारण है इति ॥ तथा शिवसंहितामेंभी कहाहै

"फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम् ॥"

अर्थ० यह योगाभ्यास अवश्यमेव फलदायक होवेगा इस प्रकारका जो दृढ विश्वास है सोई योगकी सिद्धिका प्रथम लक्षण है इति ॥ तथा महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कहाहै

"वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धं च भारत ॥
श्रद्धावृद्धं वाङ्मनसी न कर्म त्रातुमर्हति ॥"

अर्थ० हे राजन्, जो जपादिक कर्म वाचाकरके भ्रष्ट होवे औ मनकरकेभी भ्रष्ट होवे तो तिसका श्रद्धा रक्षण करेहै औ जो कर्म श्रद्धाकरके भ्रष्ट होवेहै तों तिसका वाचा औ मन कदाचित् रक्षण करणेमें समर्थ नहि होवेंहैं इति ॥ तथा गीताके सप्तदशे अध्यायमेंभी कहाहै

" अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥"

अर्थ० हे अर्जुन श्रद्धासेंविना यह पुरुष जो. होम दान तप आदिक कर्म करेहै सो तिस कर्मका इस लोक औ परलोकविषे किंचित्भी फल नहि होवेहै किंतु असत् कहिये व्यर्थहि होवेहै इति ॥ तथा लज्जाका लक्षणभी याज्ञवल्क्यसंहितामेंहि कथन कियाहै

" वेदलौकिकमार्गेषु कुत्सितं कर्म यद्भवेत् ॥
तस्मिन् भवति या ह्रीस्तु लज्जा सैवेति कीर्तिता ॥"

अर्थ० वेदविषे औ लोकविषे जो परस्त्रीगमन मदिरापानादिक निंदित कर्म हैं तिनके करणेमें लोकापवादसें जो भय करणा है तिसका नाम लज्जा है इति ॥ यह दश प्रकारसें

नियमोंके लक्षण हैं इति ॥ इस प्रकारसें यमनियमोंके सेवन करणेविषे प्रतिबंधकरूप जो हृदयमें कुतर्को स्फुरें तो तिनका साधककूं विवेकसें निवारण करणा योग्य है, यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी निरूपण करीहै

"एतेषां यमनियमानां वितर्कबाधने प्रतिपक्षभानवम् ॥"

अर्थ० इन पूर्वोक्त यमनियमोंके सेवन करणेसें इस अपकारी पुरुषकूं मारणा चाहिये, परस्त्रीभी गमन करणी चाहिये, मांसादिकभी भक्षण करणा चाहिये, पराये द्रव्यकाभी हरण करलेना चाहिये, इत्यादिक जो कुतर्को हृदयमें स्फुरण होवें तो तिनका विचारकरके निवारण करणा योग्य है सो विचारका प्रकार उक्तसूत्रके भाष्यमें व्यासजीने दिखाया है "घोरेषु संसारांगारेषु पच्यमानेन मया शरणमुपागतः सर्वभूताभयप्रदानेन योगधर्मः स खल्वहं त्यक्त्वा वितर्कान् पुनस्तानाददानस्तुल्यः श्ववृत्तेनेति भावयेत् तथा श्वा वांतावलेही तथा त्यक्तस्य पुनराददान् इति ॥" अर्थ० कीट पतंग सर्प आदिक घोर योनियोंविषे नानाप्रकारके क्लेशरूप अंगारोंविषे चिरकालसें जलतेहुयेने मैंने किसी पूर्वले सुकृतकरके इस जन्मविषे सर्वभूतोंकें अभयदानपूर्वक यह योगाभ्यासका आश्रय लियाहै सो मैं सर्व विषयोंका

परित्याग करके पुना जो तिनका सेवन करौंगा तो श्वानके तुल्यहि होवूंगा काहेतें श्वानहि परित्याग करी हुयी अपणी वांतकूं[1] पुना भक्षण करेहै इस प्रकारसें चिंतन करणा चाहिये इति ॥ १० ॥ इस प्रकारसें यमनियमोंके लक्षण वर्णन करके अब तिनके फलोंकूं निरूपण करेहैं ॥

"वंशस्थं वृत्तम्"

स्खलत्यसौ नैव यदा कथंचना-
चलाशयोऽहिंसनमुख्यशीलतः॥
तदा तु तज्जानि फलान्युपाश्नुते-
ऽविरोधमुख्यान्यचिरादुदारधीः ॥११॥

स्खलतीति ॥ जिस कालविषे उदारबुद्धिवाला यह साधक पुरुष दृढ निश्चयकरके युक्त भया पूर्वोक्त अहिंसा आदिकरूप यमनियमोंसें किसी प्रकारसें कदाचित्भी चलायमान नहि होवैहै, तात्पर्य यह धर्मशास्त्रमें गुरुके कार्य अर्थ औ अपणे प्रा-णोंकी रक्षाके अर्थ इत्यादिक पांच स्थलोंमें जो असत्यभाषण करणेकी अनुज्ञा करीहै औ देवता पितृब्राह्मणादिकोंके निमि-त्त यज्ञादिक स्थलोंमें जो पशु आदिकोंकी हिंसाका विधान

१ वमन।

कियाहै तथा यज्ञसंपूर्तिके अर्थ जो कदर्य वैश्यादिकोंके द्रव्य-का बलात्कारसे हरण करणा कथन कियाहै औ तीन रात्रीके उपवास होनेतें जो एक दिवसके भक्षण करणे योग्य अन्न-की चोरीकी अनुज्ञा करीहै इत्यादिक स्थलोंविषेभी जो अ-पणे अहिंसा आदिक व्रतोंका परित्याग नहि करेहै तो पश्चात् जो पुरुष अहिंसा आदिकजन्य जो अविरोधता आदिक फल हैं तिनका अनुभव करेहै, यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥"

अर्थ० जिस कालविषे चिरकाल अनुष्ठान करणेसें अ-हिंसा व्रतको स्थिरता होवेहै तो तिस पुरुषके समीप सर्व प्राणियोंका जो स्वाभाविक वैर है सो नहि रहता अर्थात् जिस स्थलविषे सो पुरुष निवास करताहै तो तहां प्राप्त भये नकुल, सर्प, मूषक, मंजार, मृग, सिंह, गरुड, सर्प, इत्या-दिक जो स्वाभाविक परस्पर विरोधि जंतु हैं सो सर्वहि विरो-धका परित्याग करके एकत्रहि रमतेहैं इति ॥ तथा योगवासि-ष्ठके उपशमप्रकरणमेंभी कथन कियाहै

"समसंविद्विलासाढ्ये यद्यदायाति देहके ॥
हिंस्रचेतः पतत्याशु समतामेति तत्तदा ॥
योगिदेहसमीपात्तु गत्वा प्राप्नोति हिंस्रताम् ॥"

अर्थ॰ सर्वविषे आत्मरूपसें समान दृष्टिवाले अहिंसक योगीके शरीरविषे जिस कालविषे सिंहादिक हिंस्र जंतुवोंका चित्त भक्षण करणे अर्थ प्रवृत्त होवेहै तो तिसके समीप जानेसें समभावकूं प्राप्त होय जावेहैं औ जब योगीकी देहसें दूर जावेहै तो पुना अपणे पूर्वले हिंस्र स्वभावकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ यातें पूर्वकालविषे ऋषिलोक जो गव्हर वनोंविषे निर्भय निवास करतेथे तिसमें अहिंसाकी स्थिरताहि कारण थी ॥ तथा सत्यका फलभी योगसूत्रोंमेंहि कथन कियाहै

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥"

अर्थ॰ जिस कालविषे चिरकालपर्यंत पालन करणेसें सत्यभाषण व्रतकी स्थिरता होवेहै तो तिस पुरुषका वाक्य क्रियाजन्य फलका आश्रयभूत होवेहै अर्थात् जो जो यज्ञ तप दानादिक शुभक्रियाकरके औ कपट लोभ असत्यभाषण हिंसा मदिरापान परस्त्रीगमनादिक अशुभ क्रियाकरके पुरुषकूं स्वर्गनरकादिक फलोंकी प्राप्ति होवेहै सो सो तिस योगीपुरुषके वर शापरूप वचनकरकेहि होवेहै इति ॥ तथा अस्तेयका फलभी तहांहि कथन कियाहै

"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥"

अर्थ॰ जिस कालविषे चिराभ्याससें अस्तेयव्रतकी स्थिरता होवेहै तो दशोंदिशाविषे जो दिव्य मुक्ताफलादिक रत्न हैं

सो सर्वहि तिस पुरुषके समीप आयकर स्थित होवेहैं अर्थात् श्रद्धालुलोक तिसकेप्रति भेटाकरेहैं इति०॥ तथा ब्रह्मचर्यका फलभी तहांहि कथन कियाहै

"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"

अर्थ० ब्रह्मचर्यके स्थिर होनेतें वीर्यका लाभ होवेहै अर्थात् सो पुरुष जो जो जप तप आदिक क्रिया करेहै सो सो वीर्यवती होवेहै, तथा तिसके मन औ इन्द्रियोंकी शक्ति प्रकर्षताकूं प्राप्त होवेहै तथा आप सिद्ध भया साधकोंके हृदयमें ज्ञानधारण करणेमें समर्थ होवेहै इति ॥ तथा अपरिग्रहका फलभी तहांहि निरूपण कियाहै "अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथंतासंबोधः"

अर्थ० पंचम श्लोकविषे निरूपण किया जो सर्व गृह स्त्री पुत्रादिकोंका परित्याग तिसके चिरकालविषे स्थिर भयेतें जन्मकथाओंका संबोध होवेहै अर्थात् पूर्वजन्मविषे मैं कौन था औ क्या क्या कर्म मैंने कियेहैं तथा इस शरीरके अनंतर मैं कौन होवूंगा औ क्या कर्म करोंगा इस प्रकारसें जिस कालविषे एकाग्रचित्त होयकरके योगी भावना करेहै तो उक्तवृत्तांतोंकूं यथार्थ जान लेवेहै ॥ इस स्थलविषे केवल स्त्रीधनादिकोंकाहि परित्याग नहि जानना किंतु शरीरकी अहंममताकाभी

परित्याग करणा चाहिये, काहेतें शरीरविषे अध्यास होनेतें तिसके अनुकूल व्यवहारोंविषे प्रवृत्त भये बहिर्मुख योगीकूं उक्त ज्ञानका प्रादुर्भाव नहि होवेहै इति ॥ तथा शौचका फलभी तहांहि कथन कियाहै "शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः" अर्थ० शौचके स्थिर भयेतें योगीकूं अपणे शरीरविषे ग्लानि उत्पन्न होवेहै, काहेतें वारंवार मृज्जलादिकोंकरके शरीरकी शुद्धि करणेसेंभी पुनः अपवित्रका अपवित्रहि रहताहै औ अन्य पुरुषोंके शरीरोंसेभी असंसर्ग होवेहै, काहेतें जब सम्यक्प्रकारसें मृत्जलादिकोंकरके क्षालन कियेहुयेभी अपणे शरीरविषे ग्लानि होवेहै तो अत्यंत अपवित्र जो अन्य संसारी लोकोंके शरीर हैं तिनके साथ किसे प्रकारसें तिसका संसर्ग होवेगा इति ॥ किंच "सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च"

अर्थ० शौचकी स्थिरताके होनेतें 'सत्वशुद्धि' कहिये रजोगुण औ तमोगुणकरके चित्तका अनभिभव होना औ 'सौमनस्यं' कहिये सत्वगुणकी अधिकताकरके चित्तकी प्रसन्नता होनी तथा 'ऐकाग्र्य' कहिये ध्येयवस्तुविषे चित्तकी वृत्तिका सदृश प्रवाह होना औ 'इन्द्रियजयः' कहिये विषयोंकी अभिमुखताका परित्यागकरके चक्षु आदिक इन्द्रियांकी चित्तके अनुकूल स्थिति होनी 'आत्मदर्शनयोग्यत्वं' क-

हिये चित्तका विवेकख्यातिके अभिमुख होना अर्थात् शौचसें सत्वशुद्धि होवेहै सत्वशुद्धिसें चित्तकी प्रसन्नता होवेहै तिसतें अनंतर एकाग्रता होवेहै पश्चात् इन्द्रियोंका जय होवेहै तिसतें अनंतर आत्मदर्शनकी योग्यता होवेहै इसप्रकारसें इन सर्वकी प्राप्तिविषे शौचहि हेतुभूत है इति ॥ तथा संतोषका फलभी तहांहि कथन कियाहै ॥

"संतोषादनुत्तमसुखलाभः" अर्थ० संतोषकी स्थिरताके होनेसें साधककूं अनुत्तम सुखका लाभ होवेहै इति ॥ तथा इस सूत्रके भाष्यमें व्यासजीनेभी कहाहै

"यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ॥
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥"

अर्थ० जो इस लोकके स्त्रीधनादिक सर्व विषयोंकी प्राप्तिकरके सुख होवेहै औ जो स्वर्गलोकके अप्सरादिक दिव्य विषयोंकी प्राप्तिकरके सुख होवेहै सो सर्वहि संतोषजन्य सुखके सोलमां भागके समानभी नहि होवेहै इति ॥ तथा तपका फलभी तहांहि कथन कियाहै ॥

"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥"

अर्थ० दीर्घकालपर्यंत अनुष्ठान करणेसें तपकी स्थिरताके भयेतें शरीर औ चक्षुआदिक इन्द्रियोंकी शुद्धिके होनेतें

अणिमा, लघिमा, महिमा, आदिक जो शरीरकी सिद्धियां हैं औ दूरश्रवण, दिव्यदृष्टि आदिक जो इन्द्रियोंकी सिद्धियां हैं तिनकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा जपका फलभी तहांहि कथन कियाहै "स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः" अर्थ० गायत्री आदिक पवित्र मंत्रोंके दीर्घकालपर्यंत पूर्वोक्त विधिसें जप करणेसें इष्ट देवताका संप्रयोग होवेहै अर्थात् देवता औ सिद्धोंका समागम होवेहै इति ॥ तथा उक्त सूत्रके भाष्यविषे व्यासजीनेभी कहाहै "देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छंति कार्ये चास्य वर्तंत इति ॥" अर्थ० जप करणेहारे पुरुषका दर्शन करणेके अर्थ देवता, ऋषि औ सिद्धभी आगमन करतेहैं औ तिसके साथ वार्तालाप वरदानादिक कार्यभी करतेहैं इति ॥ तथा ईश्वरपूजनका फलभी तहांहि निरूपण कियाहै "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्" चिरकालपर्यंत चित्तरूप पुष्पके समर्पणपूर्वक ईश्वरके पूजन करणेसें प्रयासके विनाहि समाधिकी सिद्धि होवेहै जिसकरके साधककूं सर्व वांछित पदार्थोंकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ यह यमनियमोंके फल हैं ॥ औ जो इस स्थलमें अनुक्त अवशेष रहे क्षमा, धृति आर्जवादिक यमनियम हैं तिन सर्वका परंपरासें समाधिकी सिद्धिहि फल जानलेना इति ॥ ११ ॥

इस् प्रकारसें यमनियमोंके फल निरूपण करके अब योगका तृतीय अंग जो आसन है तिसका वर्णन करेहैं ॥

"इन्द्रवंशा वृत्तम्"

पीठान्यनल्पानि वदन्ति योगिन-
स्तेषां चतुष्कं तु तथोत्तमोत्तमम् ॥
तत्रापि यत्स्थैर्यसुखावहं भवे-
त्तच्चैव योगेप्सुरिहाभ्यसेत्सदा ॥ १२ ॥

पीठानीति ॥ शरीरकी स्थिरता औ सुखके हेतु जो आसन हैं तिनके योगीलोकोंने अनेकहि भेद कथन कियेहैं सो तिन सर्वके भेदोंकू महायोगी जो महादेवजी हैं सोई जानतेहैं, यह वार्ता गोरक्षशतकमेंभी कथन करीहै

"आसनानि च तावंति यावंत्यो जीवजातयः ॥
एतेषामखिलान् भेदान्विजानाति महेश्वरः ॥
चतुरशीतिलक्षाणि एकैकं समुदाहृतम् ।
ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम् ॥"

अर्थ० जितनी चौरासी लक्ष जीवजाति हैं, तितने प्रकारकेहि आसन हैं सो तिन सर्वके भेदोंकू महादेवजीहि जानतेहैं

सो चौरासी लक्ष आसनोंमेंसे महादेवजीने चौरासी आसन मुख्य कियेहैं इति ॥ पुनः तिन चौरासी आसनोंमेंभी स्वात्मारामयोगीने च्यारि आसन मुख्य कथन कियेहैं सो तिन च्यारोंके नाम औ लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे निरूपण कियेहैं

"चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानि च ।
तेभ्यश्चतुष्कमादाय सारभूतं ब्रवीम्यहम् ॥
सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम् ॥"

अर्थ० चौरासी लक्ष आसनोंमेंसे जो मुख्य चौरासी आसन महादेवजीने कथन कियेहैं तिनमेंसेभी श्रेष्ठ जो सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन यह च्यारि आसन हैं तिनके पृथक् पृथक् लक्षण हम कथन करतेहैं इति ॥ तिनमें

"योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् ॥
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद्भ्रुवोरंतरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥"

अर्थ० वामपादकी एडीकूं गुदा औ लिंगके मध्यदेशविषे स्थापन करणां औ दक्षिणपादकी एडीकूं लिंगके ऊपरदेशमें स्थापन करणा तथा मुखकी ठोडीकूं हृदयके समीप-

देशविषे लगाना औ सर्व इन्द्रियोंकूं वशीभूतकरकें स्थाणु-की न्यांई अचल होयकर बैठना तथा दृष्टिकूं भ्रूवोंके मध्य-देशविषे लगाना इसकूं मोक्षद्वारके कपाट भेदनकरणेहारा सिद्धासन योगीलोक कथन करतेहैं इति ॥ तथा

> "वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
> दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढाम् ।
> अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये-
> देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥"

अर्थ० दहने पादकूं वाम ऊरूपर औ वामपादकूं दहने ऊरूपर स्थापन करे औ शरीरके पश्चिम भागसें दोनों हाथोंकूं फेरकरके दोनों पादके अंगुष्ठोंकूं दृढ ग्रहण करे तथा हृदयदेशके समीप मुखकी ठोडीकूं जमावे औ नासाके अग्र-भागविषे दृष्टि रखे यह योगीलोकोंकी सर्व व्याधियोंके नाश करणेहारा पद्मासन कहियेहै इति ॥ तथा

> "गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ॥
> दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके ।
> हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वांगुलीः संप्रसार्य च ॥
> व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ।
> सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुंगवैः ॥"

अर्थ० वृषणके नीचे सीवनीके दक्षिण देशमें वामपादके गुल्फकूं स्थापन करे औ वामभागविषे दक्षिणपादके गुल्फकूं लगावे तथा जानुवोंके ऊपर अपणी अंगुली फेलायकरके दोनों हाथ स्थापन करे तथा मुखकूं खोलकर औ जिह्वाकूं बाहिर निकासकरके नासाके अग्रभागविषे दृष्टि लगायकर एकाग्रचित्तसें स्थित होवे यह योगीलोकोंकरके पूजित सिंहासन कहियेहै इति ॥ तथा

"गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे ॥
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बध्वा सुनिश्चलम् ।
भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥"

अर्थ० वृषणके नीचे सीवनीके वामभागमें वामपादका गुल्फ स्थापन करे औ दक्षिणभागविषे दक्षिणपादका गुल्फ स्थापन करे तथा पार्श्वके समीप आये जो पाद तिन दोनोंकूं हाथोंसें दृढ जोडकरके स्थित होवे यह सर्व रोगोंके नाश करणेहारा भद्रासन कहियेहै इति ॥ इन उक्त च्यारी आसनोंमेंभी जो अपणे शरीरको स्थिरता औ सुखका हेतु होवे तिसकाहि साधककूं सर्वदा अभ्यास करणा योग्य है परंतु

१ अंडकोश. २ यहां गुल्फकरके एडीका ग्रहण जानना.

विशेषकरके योगाभ्यासविषे सिद्धासन औ पद्मासन यह दोहि उपयोगी हैं औ स्वात्माराम योगीने तो तिनमेंभी एक सिद्धासनहि उत्तम कथन कियाहै ॥

"मुख्यं सर्वासनेष्वेकं सिद्धाः सिद्धासनं विदुः ।
चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाभ्यसेत् ॥"

अर्थ० योगीलोक सर्व आसनोंमें एक सिद्धासनकूंहि मुख्य जानते हैं यातें साधक पुरुषकूं चौरासी प्रकारके आसनोंमेंभी मुख्य जो सिद्धासन है तिसहिका विशेषकरके अभ्यास करणा योग्य है, तात्पर्य यह है कि हठयोगके अभ्यासमें सिद्धासनकी प्रधानता है औ राजयोगके अभ्यासमें पद्मासनकी प्रधानता है सो स्वात्मारामने हठयोगके अभिप्रायसे सिद्धासनकी प्रधानता कथन करीहै इति ॥ १२ ॥ इस प्रकार संक्षेपसें आसनोंके लक्षण निरूपण करके अब तिसके फलकूं वर्णन करेंहैं ॥

(द्रुतविलंबितं वृत्तम्)

अनलसत्वमुपस्थवलक्षयो-
ऽनिलनिरोधपटुत्वमनूर्मिता ॥

पवनमंथरताप्युपजायते
स्थिरमतेरिह पीठजयाद्ध्रुवम् ॥ १३ ॥

अनलसत्वमिति ॥ चिरकालके अभ्यास करणेसें जिस कालविषे आसनका जय होवेहै तो 'अनलसत्वं' कहिये योगाभ्यासविषे महाप्रतिबंधक जो आलस्य है तिसकी निवृत्ति होवेहै ॥ औ 'उपस्थबलक्षयः' कहिये उपस्थ इन्द्रियका जो बल है तिसकीभी क्षीणता होवेहै काहेतें लिंग औ गुदाके मध्यदेशविषे जो सीवनीकी नाडी है तिसद्वाराहि वीर्यका निर्गमन औ उपस्थके बलकी वृद्धि होवेहै सो जिस कालविषे सिद्धादिक आसनकरके सीवनीका दमन होवेहै तो उपस्थ इन्द्रियका बल क्षीण होय जावेहै ॥ तथा 'अनिलनिरोधपटुत्वं' कहिये अनिल जो प्राणवायु है तिसके निरोध करणेमेंभी सामर्थ्य होवेहै काहेतें चलने औ शयनकालविषे प्राणोंकी गतिका निरोध नहि संभवेहै. ॥ तथा 'अनूर्मिता' कहिये क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, राग, द्वेष; यह जो षट् ऊर्मियां हैं तिनकीभी पीडा नहि होवेहै काहेतें चलने फिरनेसेंहि विशेषिकरके क्षुधा पिपासा आदिकोंकी वृद्धि होवेहै इति ॥ यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै "ततो द्वंद्वानभिघातः" अर्थ० आसनके जय

होनेतें पश्चात् साधक पुरुषकूं शीतोष्णादिक द्वंद्वोंकी बाधा नहिं होवेहै इति ॥ तथा (पवनमंथरता) कहिये प्राणवायुकी गतिभी मंद मंद होवेहै काहेतें जैसें चलनेकाल अथवा पर्वतादिकोंपर आरोहणकालविषे प्राणोंकी शीघ्र गति होवेहै तैसे बैठनेकालविषे नहि होवेहै इति॥औ जो मयूरासन, पश्चिमतानासन, मत्स्येन्द्रासन, शवासन इत्यादिक आसनोंके अजीर्णादिक रोगशांतिआदिक अवांतर फल हैं सो हठयोगप्रदीपिकाविषे विस्तारपूर्वक कथन कियेहैं तहां देखलेने, यहां विस्तारके भयसें नहि लिखेहैं ॥ किंच योगकी सिद्धिभी आसनके जय करणेतेंहि होवेहै काहेतें जो पुरुष दो अथवा तीन मुहूर्त एक आसनसें बैठहि नहि सकैहै सो योगाभ्यास करणेमें कैसे समर्थ होवेगा ॥ यह वार्ता शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कथन करीहै "आसीनः संभवात्" अर्थ० आसन लगायकर बैठनेमेंहि योगाभ्यास करणा योग्यहै काहेतें आसन लगायकर बैठनेसेंहि योगकी सिद्धि संभवेहै इति ॥ सो तिस आसनकी सर्व प्रयत्नोंके शिथिलकरणेसें औ शेषनागजीके स्मरण करणेसेंहि शीघ्र सिद्धि होवेहै यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी निरूपण करीहै "प्रयत्नशैथिल्यानंतसमापत्तिभ्याम्" अर्थ० तीर्थयात्रादिक वैदिक लौकिक सर्व प्रयत्नोंके शिथिल करणेसें औ शेषभगवान्के ध्यानकरकेहि आसनकी सिद्धि होवेहै

इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाकी टीकाविषेभी लिखाहै "अनंतं प्रणमेद्देवं नागेशं पीठसिद्धये" अर्थ० आसनकी सिद्धिके अर्थ साधक पुरुषकूं प्रथम सर्व नागोंका ईश्वर जो शेषभगवान् है तिसकूं नमस्कार करणा योग्य है इति तथा नंमस्कार करणेका मंत्रभी तहांहि कथन कियाहै "मणिभ्राजत्फणासहस्रविधृतविश्वंभरामंडलायानंताय नागराजाय नमः" अर्थ० हे दिव्यमणियोंकरके प्रकाश्यमान सहस्रफणोंपर सर्व पृथिवीमंडलके धारण करणेहारे सर्व नागोंके राजा अनंतजी आपके प्रति मेरी वारंवार नमस्कार होवो ॥ १३ ॥ इस प्रकारसें आसनजयका फल निरूपण करके अब योगका चतुर्थ अंग जो प्राणायाम है तिसका लक्षण कथन करैहैं ॥

(वंशस्थं वृत्तम्)

ततोऽनिलायामचतुष्कमभ्यसे-
दहर्निशं रेचकमुख्यसंज्ञकम् ॥
क्रियाभिराशुद्धतनुर्मिताक्रियः
शनैश्शनैर्दैशिकवाक्यचोदितः ॥ १४ ॥

तत इति ॥ 'ततः' कहिये आसनजयके अनंतर स्वगुरु गणेश महादेवादिकोंकूं नमस्कार करके प्राणायामका अ-

भ्यास करणा चाहिये काहेतें गणेशादिकोंकूं नमस्कार कियेतें विना प्राणायामकी निर्विघ्नसिद्धि नहि होवेहै, यह वार्ता कूर्मपुराणमें महादेवजीनेभी कथन करीहै ॥

"नमस्कृत्वाथ योगीन्द्रान् सशिष्यांश्च विनायकम् ।
गुरुं चैवाथ मां योगी युंजीत सुसमाहितः ॥
न सिध्यति महायोगी मदीयाराधनं विना ॥"

अर्थ० हे पार्वति, सहितशिष्योंके जो गोरक्षादिक योगीश्वर हैं औ सर्व विघ्नोंके नाश करता जो विनायकहैं औ योगविद्याका अध्यापक जो आपणा गुरु है तथा सर्व योगकी सिद्धिके दाता जो हम हैं तिन सर्वकूं आदिविषे नमस्कार करकेहि साधक पुरुषकूं प्राणायामका अभ्यास करणा चाहिये औ जो हमारे आराधन कियेतें विनाहि अभ्यास करेहै सो यद्यपि महायोगीराजभी होवे तो सिद्धिकूं नहि प्राप्त होवेहै इति सो० प्राणायाम रेचक, पूरक, सहितकुंभक, केवलकुंभक, इस भेदसें च्यारि प्रकारका है तिनमें प्रथम तीनों के लक्षण-अथर्ववेदकी अमृतबिंदुउपनिषत्में निरूपण कियेहैं

"उत्क्षिप्य वायुमाकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम् ।
शून्यभावेन युंजीयाद्रेचकस्येति लक्षणम् ॥"

अर्थ० उदरगत सर्व प्राणवायुका नासापुटद्वारा बहिर

विरेचनकरके आकाशविषे निश्चल धारण करै औ शरीरकूं वायुमें रहितकरके शून्यभावमें स्थित होवे यह रेचक प्राणायामका लक्षण है इति ॥ तथा "वक्त्रेणोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः । एवं वायुर्ग्रहीतव्यः पूरकस्येति लक्षणम् ॥"

अर्थ० जैसे मुखरूप कमलको नालकरके पुरुष पानीका आकर्षण करेहै तैसेहि बाह्यस्थित प्राणवायुकूं मुखसें अथवा नासाद्वारा अभ्यंतर आकर्षणकरके प्राणोंकी नीचे ऊपर गतिका जो निरोध करणा है तिसका नाम पूरक प्राणायाम है इति ॥ तथा "नोच्छ्वसेन्न च निःश्वसेन्नैव गात्राणि चालयेत् । एवं तावन्नियुंजीत कुंभकस्येति लक्षणम् ॥" अर्थ० प्रथम रेचक अथवा पूरकसें प्राणोंका निरोधकरके पश्चात् रेचक पूरकसेंरहित होयकर शरीरके सर्व अवयवोंकूं अचल धारण करे इस प्रकारसें जो प्राणवायुका संयमन करणा है तिसका नाम सहितकुंभकप्राणायाम है ॥ औ चतुर्थ जो केवल कुंभक है तिसका लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियाहै

"रेचकं पूरकं त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ।
प्राणायामोयमित्युक्तः स वै केवलकुंभकः ॥"

अर्थ० न रेचक करणा औ न पूरक करणा किंतु नासापुटोंमें स्थित प्राणवायुका एकवारहि जो सुखपूर्वक तहांहि

निरोध करणा है तिसका नाम केवल कुंभकप्राणायाम है इति ॥ सो जबपर्यंत यह केवल कुंभक नहि सिद्ध होवे तबपर्यंत सहितकुंभककाहि अभ्यास करणा चाहिये, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै "यावत्केवलसिद्धिः स्यात्तावत्सहित अभ्यसेत् ॥" अर्थ० जबपर्यंत केवल कुंभककी सिद्धि नहि होवे तबपर्यंतहि सहितकुंभकका अभ्यास करणा योग्य है केवल कुंभककी सिद्धिके अनंतर नहि इति ॥ सो इस केवल कुंभकसेंहि समाधिकी शीघ्र सिद्धि होवेहै, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै ॥

"केवले कुंभके सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥"

अर्थ० रेचकपूरककरके वर्जित जो केवल कुंभक है तिसकी सिद्धिके भयेतें योगी पुरुषकूं त्रैलोक्यविषे किंचित् वस्तुभी दुर्लभ नहि होवेहै अर्थात् समाधि आदिक सर्वहि सुलभ होवेहै इति ॥ पुनः यह कुंभक अवांतर भेदसें अष्टप्रकारका है सो तिन सर्वके नाम औ लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे निरूपण कियेहैं ॥

"सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा ॥
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लावनीत्यष्ट कुंभकाः ॥"

अर्थ० सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लावनी, इस, भेदसें कुंभक अष्टप्रकारके हैं इति ॥ तिनमें

"दक्षनाड्या समाकृष्य बहिःस्थं पवनं शनैः ।
आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुंभयेत् ॥
ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत्पवनं सुधीः ।
पुनःपुनरिदं कार्यं सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥"

अर्थ० बाह्यस्थवायुकूं प्रथम दक्षिण नासापुटसें शनैः शनैः अभ्यंतर आकर्षणकरके शिखासें लेकर नखपर्यंत सर्व शरीरविषे यथाशक्ति कुंभक करे पश्चात् वामनासापुटसें शनैः शनैः रेचन करे इसका नाम सूर्यभेदनकुंभक है सो यहि वारंवार करणे योग्य है इति ॥ तथा

"मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः ।
यथा लगति कंठात्तु हृदयावधि सस्वनम् ॥
पूर्ववत्कुंभयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः ।
गच्छता तिष्ठता कार्यमुज्जाय्याख्यं तु कुंभकम् ॥"

अर्थ० मुखकूं बंद करके जिस प्रकार सहित शब्दके कंठमें हृदयपर्यंत प्राणवायु स्पर्श करे तैसेंहि पूर्वोक्त प्रकारसें दक्षिणनासापुटद्वारा आकर्षण करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभक-

करके वामनासापुटद्वारा रेचन करे इसका नाम उज्जायीकुंभक है सो यह चलते बैठते सर्वकालविषेहि करणेयोग्य है इति ॥ तथा

"सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृंभिकाम् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ॥"

अर्थ० सीत्कारपूर्वक मुखसें वायुका आकर्षण करे पुनः यथाशक्ति कुंभककरके नासाद्वारा रेचन करे इसका नाम सीत्कारीकुंभक है इसके अभ्यास करणेतें योगी कामदेवके समान् सौंदर्यकरके युक्त होवेहै इति ॥ तथा

"जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुंभसाधनम् ।
शनकैर्घ्राणरंध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधीः ।
विषाणि शीतली नाम कुंभिकेयं निहंति हि ॥"

अर्थ० काकचंचुकी न्याई जिह्वाकूं मुखसें किंचित् बाहिर निकासकरके बाह्यस्थित वायुकूं अभ्यंतर आकर्षण करे, तथा पूर्वोक्त प्रकारसें यथाशक्ति कुंभककरके पश्चात् नासापुटोंसें शनैःशनैः रेचन करे यह शीतलीकुंभककहिये है इसके चिरकाल अभ्यास करणेसें सर्वप्रकारके विषोंका शरीरविषे असर नहि होवेहै इति ॥ तथा

"पुनर्विरेचयेत् तद्वत् पूरयेच्च पुनःपुनः ।
यथैव लोहकारेण भस्त्रा वेगेन चाल्यते ॥

तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत् पवनं शनैः ।
विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुंभकं त्विदम् ॥"

अर्थ० मुखकूं बंदकरके जैसे लोहकार भस्त्रांकूं चलावताहै तैसेहि अपणे शरीरमें स्थित जो प्राणवायु है तिसकूं एक नासाद्वारसें रेचन करे पुना दूसरे नासाद्वारसें शीघ्रहि पूरक करे पुना रेचक करे पुना शीघ्र पूरक करे जिस पुटसें रेचक करे तिसहिसें पूरक करे इसप्रकार वारंवार रेचकपूरक करतेहुये जिस कालमें परिश्रम होवे तो दक्षिणनासापुटसें पूरक करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके वामनासापुटसें रेचक करे पुना पूर्ववत्हि रेचक पूरक करे इसका नाम भस्त्रिकाकुंभकहै सो सर्वकुंभकोंसें यहि विशेषकरके करणा योग्य है इति ॥ तथा "वेगात् घोषं पूरकं भृंगनादं भृंगीनादं रेचकं मंदमंदम् । योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगाच्चित्ते जाता काचिदानंदलीला" ॥ अर्थ० जैसे भ्रमरका शब्द होवेहै तैसेहि गुंजारसहित वामनासापुटसें वायुका पूरक करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके जैसे भ्रमरीका शब्द होवेहै तैसेही मध्यमगुंजारसहित दक्षिणनासापुटसें शनैशनै रेचक करें इसका नाम भ्रामरीकुंभक है इसके अभ्यास करणेसें योगीन्द्र लोकोंके हृदयमें कोई अद्भुत आनंदकी लीला होवेहै इति ॥

१ अग्निके धमनकरणेकी चर्मकी मसक ।

तथा "पूरकांते गाढतरं बध्वा जालंधरं शनैः । रेचयेन्मूर्छ्नाख्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा" ॥ अर्थ० पूरक करणेतें पश्चात् वक्ष्यमाण जालंधरबंधकूं कंठमें दृढ स्थापन करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके प्राणवायुकूं नासापुटोंसें शनै शनै रेचक करे इसका नाम मूर्च्छाकुंभक है इसके अभ्यास करणेतें मनकी मूर्च्छाद्वारा आनंदकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा

"अंतः प्रवर्तितोदारमारुता पूरितोदरः ॥
पयस्यगाधेपि सुखात् प्लवते पद्मपत्रवत् ॥"

अर्थ०. बाह्यस्थितवायुकूं उदरपूर्तिपर्यंत पूरक करणेसें योगी लोक अगाधजलविषे कमलपत्रकी न्याई ऊपर तरेहै सो प्लावनीकुंभक कहियेहै इति ॥ यह अष्टकुंभकोंके लक्षण हैं ॥ पुनः कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम इसभेदसें कुंभक तीन प्रकारके हैं तिन तीनोंके लक्षण याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियेहैं

"प्रस्वेदजनको यस्तु प्राणायामेषु सोधमः ॥
कम्पे च मध्यमः प्रोक्त उत्थाने चोत्तमो भवेत् ॥"

अर्थ० जिसकालविषे प्राणके कुंभक करणेसें शरीरविषे प्रस्वेद[1]की उत्पत्ति होवेहै सो कनिष्ठकुंभक कहिये औ जिस कालविषे कुंभककरणेसें शरीरविषे कंप होवेहै तिसका नाम मध्यमकुंभक है तथा जिसकालविषे कुंभककरणेसें पृथि-

---

१ पसीना ।

वीसें किंचित् ऊपर शरीरका उत्थान होवेहै सो उत्तमकुंभक कहियेहै इति ॥ सो यह प्राणका कुंभक संख्यापूर्वक करणेसें हि वृद्धिकूं प्राप्त होवेहै तिस संख्याका लक्षण पूर्वाचार्योंने कथन कियाहै

"इडया पिब पवनं षोडशभि-
श्चतुरुत्तरषष्टिकमोदरकम् ॥
त्यज पिंगलया शनकैः शनकै-
र्दशभिर्दशभिर्दशभिर्व्यधिकैः ॥"

अर्थ० इडा जो वामनासापुटकी नाडी है तिसद्वारा षोडशमात्राकरके प्राणवायुका पूरक करे औ चौसठमात्रापर्यंत तिसका उदरविषे कुंभक करे तथा बत्तीसमात्राकै पिंगला जो दक्षिणनासापुटकी नाडी है तिसद्वारा रेचक करे अर्थात् जितनी मात्राकरके प्राणका पूरक होवे तिसतें चतुर्गुणीमात्रापर्यंत कुंभक करणा चाहिये औ कुंभककी संख्यासें अर्धमात्राकरके रेचक करणा चाहिये काहेतें शीघ्र रेचक करणेतें शरीरके बलकी हानि होवेहै इति ॥ सो तिस मात्राका लक्षण स्कंदपुराणमें कथन कियाहै

"जानुं प्रदक्षिणीकुर्यान्न द्रुतं न विलंबितम् ॥
प्रदद्याच्छोटिकां यावत्तावन्मात्रेति गीयते ॥"

अर्थ० न तो शीघ्रतासें औ न विलंबसें जानुकी हस्तसें

प्रदक्षिणाकरके पश्चात् एक चुटकी देवे इतने कालकी मात्रा संज्ञा है इति ॥ अन्यभी मात्राके बहुत भेद हैं सो विस्तारके भयसें यहां नहि दिखाये हैं ॥ इस प्रकारसहित संख्याके साधकपुरुषकूं अष्टप्रहरमें च्यारिवार प्राणायामका अभ्यास करणा चाहिये यह वार्ता स्वात्मारामयोगीनेभी कथन करीहै

"प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुंभकान् ॥
शनैरशीतिपर्यंतं चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥"

अर्थ० प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, सायंकाल, अर्धरात्रीमें इन च्यारीकालोंविषे असी असी० प्राणायाम करणे चाहिये अर्थात् अष्टप्रहरामें ३२० प्राणायाम करणे चाहिये इति ॥ सो यह प्राणायाम देवताके ध्यानपूर्वकहि करणा चाहिये नहीं तो निर्विघ्नसिद्ध होना बहुत कठिन है सो ध्यानका प्रकार अथर्ववेदकी ध्यानबिंदुउपनिषत्में निरूपण किया है

"अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थाने प्रतिष्ठितम् ॥
चतुर्भुजं महावीरं पूरकेण विचिंतयेत् ॥"

अर्थ० प्राणके पूरककालविषे नाभिदेशमें अतसीपुष्पके समान नीलवर्ण औ चतुर्भुजोंकरके युक्त तथा शंखचक्रादिक आयुधोंकरके शोभायमान औ लक्ष्मीकरके समन्वित विष्णु भगवान्का ध्यान करणा चाहिये इति ॥ तथा

"कुंभकेन हृदि स्थाने चिंतयेत् कमलासनम् ॥
ब्रह्माणं रक्तगौरांगं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥

अर्थ० प्राणके कुंभकसमयविषे हृदयस्थानमें चतुर्मुखोंक-रके युक्त औ रक्तवर्ण कमलासन सर्वके पितामह ब्रह्माका ध्यान करे इति ॥ तथा

"रेचकेन तु विद्यात्तु ललाटस्थं त्रिलोचनम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥"

अर्थ० प्राणके रेचककालविषे ललाटदेशमें शुद्धस्फटिकम-णिके समान गौरवर्णकरके युक्त औ सर्वपापोंके नाश करणे-हारे सर्वकालसें अतीत त्रिलोचनमहादेवका ध्यान करे इति॥ इस प्रकार देवताके ध्यानविषे मनके स्थिर होमेतें प्राणका स्वतेहि निरोध होयजावे है काहेतें प्राण औ मनकी परस्पर तदात्मता है, यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करीहै

"दुग्धांबुवत्संमिलितावुभौ तौ तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ।
यतो मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिर्यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः ॥"

अर्थ० जैसे दुग्ध औ जल मिलकर एकरूप होयजावेहैं तै-सेहि मन औ प्राण दोनों एकस्वरूप[1] हैं सो जिसकालविषे प्राणका स्फुरण होवेहै तो मनकाभी स्फुरण होवेहै औ जि-सकालविषे मनका स्फुरण होवेहै तो प्राणकाभी स्फुरण

१ एकरूपता ।

होवेहै इस प्रकारसैं तिन दोनोंकी तुल्यहि क्रिया है इति ॥ सो तिन दोनोंमेंसें एकके निरोध करणेसें दूसरेकाभी निरोध होयजावेहै यह वार्ता अमनस्कखंडविषे महादेवजीनेभी निरूपण करी है

"प्राणो यत्र विलीयेत मनस्तत्र विलीयते ।
मनो विलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते ॥"

अर्थ० हे वामदेव, जिस कालविषे प्राणवायुका विलय होवेहै तो मनकाभी विलय होवेहै औ जिसकालविषे मनका विलय होवेहै तो प्राणवायुकाभी विलय होवेहै इति ॥ तिन दोनोंमेंभी मनका निरोध करणा सुकर है यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै

"तत्राप्यसाध्यः पवनस्य नाशः
षडङ्गयोगस्य निषेवणेन ॥
मनोविनाशस्तु गुरुप्रसादा-
न्निमेषमात्रेण सुसाध्य एव ॥"

अर्थ० तिन दोनोंमेंभी प्राणवायुका षड्ंगयोगके अभ्यासकरके निरोध करणा असाध्य अर्थात् दुःसाध्य है औ मनका

१ सुषुप्तिकालमैंतो अपणे कारणविषे विलीन होनेतें मनका अभाविहि होयजावेहै यातें तिनकी सहचारताके अभाव होनेतें प्राणका विलय नहि होवेहै ॥

निरोध करणा तो गुरुउक्त षट्चक्रादिकोंविषे धारणारूप युक्तिसें निमेषमात्र अर्थात् अल्पकालविषेहि सुसाध्य है इति॥ यातें साधक पुरुषकूं प्राणायामके अभ्यासकालविषे उक्तदेवतोंका ध्यानकरके मनका निरोधभी अवश्य संपादन करणा योग्य है ॥ तथा प्राणके निरोध करणेमें शीघ्रताभी नहि करणी चाहिये किंतु शनैःशनैहि निरोध करणा चाहिये यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करीहै

"यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैःशनैः ।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हंति साधकम् ॥
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूरयेत् ।
युक्तं युक्तं च बध्नीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥"

अर्थ० जैसे वनके विचरणेहारे सिंह, हस्ति, व्याघ्रादिक क्रूर जंतु शनैशनै उपायपूर्वक वशीभूत होतेहैं औ जो उपायसें विना तिनकूं शीघ्रहि पकडने जाताहै सो नाशकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि प्राणवायुभी प्राणायामादिक उपायपूर्वक शनैःशनैहि वशीभूत होवेहै नहि तो कासश्वासादिक रोगोंकी उत्पत्तिद्वारा उलटा साधकपुरुषका नाश करे है ॥ यातें युक्तिपूर्वकहि प्राणका रेचन करे औ युक्तिपूर्वकहि पूरक करे तथा युक्तिपूर्वकहि कुंभक करे काहेतें युक्तिपूर्वक शनैःशनैः करणेसेंहि प्राणवायुके जयरूप सिद्धिकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाकी टीकाविषेभी लिखा है

"हठान्निरुद्धः प्राणोयं रोमकूपेषु निःसरेत् ।
देहं विदारयत्येष कुष्ठादि जनयत्यपि ॥
ततः शनैःप्रायितव्योसौ क्रमेणारण्यहस्तिवत् ॥"

अर्थ० केवल हठकरके अत्यंत निरोध कियाहुया प्राणवायु रोमछिद्रोंसें निकसजावेहै तिसके रोमद्वारा निकसनेतें शरीरविषे कुष्ठादिरोगोंकी उत्पत्ति होवेहै यातें गुरुमुखद्वारा युक्तिपूर्वक वनके हस्ती सिंहादिकोंकी न्यांई शनैः शनैहिं प्राणकूं वशीभूतकरणा योग्यहै इति ॥ पूर्वोक्त यमनियम औ आसनके अनुष्ठानकालमें विशेषकरके गुरुकी अपेक्षा नहिं होवेहै परंतु प्राणायामके अभ्यासकालमें तो अवश्यमेव गुरुकी अपेक्षा चाहिये । यह वार्ता योगबीजमें महादेवजीनेंभी कथन करीहै

"मरुज्जयो यस्य सिद्धस्तं सेवेत गुरुं सदा ।
गुरुवक्त्रप्रसादेन कुर्यात्प्राणजयं बुधः ॥"

अर्थ० हे पार्वति साधककूं जिस गुरुके प्राणजय सिद्ध हुया होवे तिसहिकी सर्वदा सेवा करणी चाहिये औ जिसप्रकारसें सो प्राणजय करणेकी विधि बतावे तैसेहि अभ्यास करे इति ॥ तथा अमनस्कखंडमेंभी महादेवजीनेंहि कहाहै

"वेदांततर्कोक्तिभिरागमैश्च
नानाविधैः शास्त्रकदंबकैश्च ॥

ध्यानादिभिः सत्करणैर्न गम्य-
श्चिंतामणिर्ह्येकगुरुं विहाय ॥"

अर्थ० हे वामदेव, योगाभ्यासी गुरुकेविना वेदांत, तर्क, योग, मीमांसा, आदिक शास्त्रोंके पठनकरणेसें तथा अन्य जो नानाप्रकारके पुराणादिक ग्रंथसमूह हैं तिनके अवलोकन करणेसें तथा स्वबुद्धिकरके अनुष्ठान किये ध्यान, आसन, प्राणायामादिक उपायोंकरकेभी योगरूप चिंतामणिकी प्राप्ति नहि होवेहै इति ॥ तथा स्कंदपुराणमेंभी कहाहै

"आचार्याद्योगसर्वस्वमवाप्य स्थिरधीः स्वयम् ।
यथोक्तं लभते तेन प्राप्नोत्यपि च निर्वृतिम् ॥"

अर्थ० प्रथमसें आचार्यके मुखद्वारा योगचर्याका सर्व रहस्य जानकरकेहि पश्चात् अभ्यासद्वारा पुरुष स्वयमेव सिद्धि औ आनंदकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा सामवेदकी छांदोग्य उपनिषत्मेंभी कहाहै "आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थ० आचार्यवान् पुरुषहि यथार्थयोगके रहस्यकूं जानेहै इति ॥ सो केवल गुरुके समीप जानेसें योगकी प्राप्ति नहि होवेहै किंतु चिरकालपर्यंत सेवा करणेसेंहि होवेहै, यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कहीहै

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥"

अर्थ० जिस पुरुषकी ईश्वरविषे परमभक्ति होवैहै औ ईश्वरकी न्यांई गुरुमैंभी परमशक्ति होवैहे तिसकूंहि योगरहस्यके प्रतिपादन करणेहारी श्रुतियोंके अर्थोंका सम्यक्प्रकारसें बोध होवैहे इति ॥ तथा मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायमैंभी कहाहै

"यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥"

अर्थ०जैसे कुद्दालकरके पृथिवीकूं खोदतेखोदते पुरुष निर्मल जलकूं प्राप्त होवैहै तैसेहि जितनी गुरुके हृदयविषे योगादिक विद्या होवैहै सो सर्वहि सेवा करतेकरते साधककूं प्राप्त होयजावैहै इति ॥ तथा सांख्यसूत्रोंमें कपिलदेवजीनेभी कहाहै

"प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि
कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात्तद्वत् ॥"

अर्थ० जैसें ब्रह्मचर्यकरके युक्तभये इन्द्रकूं नम्रभावसें ब्रह्माकी शरण जानेकरके चिरकालमें सिद्धिकी प्राप्ति होती भयो है तैसेहि ब्रह्मचर्ययुक्त पुरुषकूं नम्रभावसें गुरुकी शरण जानेसेंहि चिरकाल सेवाद्वारा योगकी सिद्धि होवैहै इति ॥ शंका ॥ भागवतके एकादशे स्कंधमें लिखाहै

"समुद्धरंति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ।
आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥"

अर्थ० यह पुरुषविशेषकरके आपहि अपणा गुरु होवेहै, काहेतें अपणे विचारकरकेहि आत्माका अशुभ संसारसें उद्धार करेहै इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमेंभी कहाहै

"उपदेशक्रमो राम व्यवस्थामात्रपालनम् ।
ज्ञप्तेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञैव राघव ॥"

अर्थ० हे रामचंद्र, गुरुशिष्यका जो उपदेशक्रम है सो तो केवल शास्त्रकी मर्यादापालनेके अर्थ है परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिविषे तो शिष्यकी शुद्धप्रज्ञाहि कारण होवेहै इति ॥ तथा गीताके षष्ठाध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्" अर्थ० हे अर्जुन, अपणे आत्माका आपसेंहि उद्धार करणा चाहिये संसारचक्रमें भ्रमावना नहि चाहिये इति ॥ तथा ऋग्वेदकी ऐतरेयउपनिषत्की "गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव उवाच" इस श्रुतिमें वामदेवकूं गर्भविषेहि ज्ञानकी प्राप्ति कथन करीहै ॥ तथा अन्यभी अष्टावक्र जडभरतादिकोंकूं विनाहि गुरुउपदेशसें ज्ञानकी प्राप्ति पुराणादिकोंमें श्रवण होवेहै यातें तुमने जो पूर्वकहा गुरुसेंविना योगरहस्यका बोध नहि होवेहै सो वार्ता असंभव है ॥ समाधान ॥ यद्यपि तुमारा कहना यथार्थ है तथापि योगाभ्यासविषे तो गुरुकी अवश्यकता है औ

जो तुमने भागवत, योगवासिष्ठ औ गीताके वाक्य प्रमाण दीयेहैं तिनका तो अत्यंत शुद्ध अंतःकरणपुरुषपरहि निधान है सो अत्यंत अंतःकरणकी शुद्धि उपासनादिकोंसें होवे है औ तिन उपासनाआदिकोंका गुरुमुखसें विना यथार्थ बोध होवे नहीं यातेंभी बोधविषे परंपरासें गुरुकूंहि कारणता है ॥ औ दूसरा तिन वाक्योंका यह अभिप्राय है साधककूं केवल गुरुके आश्रयहि नहि रहना चाहिये किंतु कुछ अपणा पुरुषार्थभी करणा चाहिये काहेतें गुरु तो केवल मार्गकूंहि बतावे है परंतु तहां चलकर जाना तो साधककेहि अधीन होवेहै ॥ औ जो तुमने कहा वामदेव जडभरतादिक जन्मसेंहि बोधसंपन्न हुयेहैं सोभी पूर्वजन्मविषे सनकादिकोंके उपदेशद्वाराहि बोधसंपन्न हुयेहैं, यह वार्ता आत्मपुराणादिकोंविषे प्रसिद्ध है ॥ औ जो गुरुकेविना कथंचित् शास्त्रअवलोकनद्वारा मेधावान् पुरुषकूं योगरहस्यका यथार्थ बोध होयभी जावे तो तिसके अनुष्ठानसें यथोक्तफलकी प्राप्ति नहि होवेहै, यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै "आचार्याद्ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति" अर्थ० गुरुमुखद्वारा ज्ञात भयी विद्याहि यथेष्टफलकी प्राप्ति करे है इति ॥ तथा शिवसंहितामेंभी कहाहै

"भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा ॥"

अर्थ० हे पार्वति, गुरुमुखसें निकसीहुयी विद्याही वीर्यवती होवेहै औ अन्यथा तो फलसें हीन औ वीर्यसें रहित तथा अतिक्लेशके देनेहारी होवेहै इति ॥ तथा गीताके षोडशमे अध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै,

"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥"

अर्थ० हे अर्जुन, गुरुमुखसेंहि विद्याका ग्रहण करणा इसप्रकारकी जो धर्मशास्त्रकी विधि है तिसका परित्यागकरके अपणी इच्छाके अनुसारहि जो पुरुष किसीकार्यका अनुष्ठान करेहै सो तिस अनुष्ठानजन्य फल औ सुख तथा परमगतिकूं नहि प्राप्त होवेहै इति ॥ इसप्रकारसें गुरुमुखद्वारा प्राणायामकी यथार्थविधि जानकरके 'मितक्रियः', कहिये सर्वक्रियाके संयमनपूर्वकहि अभ्यास करणा योग्य है इति ॥ सो क्रियाका संयम गीताके षष्ठाध्यायविषे भगवानने कथन कियाहै

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥"

अर्थ० जो साधक पूर्वोक्तप्रकारसें युक्तिपूर्वक आहार करताहै औ युक्तिपूर्वकहि गमनादिक व्यवहार करता है अर्थात् एकादशीआदिक उपवास करणा शरदऋतुमें प्रातःकालविषे शीतल जलसें स्नान करणा, शिरपर भार उठावना, अग्नि तापना, बहुत सोवना अत्यंत जागरण करणा इत्यादिक जो प्राणकी शीघ्रगतिके हेतु कार्य हैं तिन सर्वका परित्यागकरके मितभोजन, शरदऋतुमें उष्णजलसें स्नान, स्वल्प निद्रा, स्वल्प गमन, स्वल्प भाषण, इत्यादिक जो प्राणकी गतिके शिथिल करणेहारे कार्योंका सेवन करताहै तिस पुरुषकूंहि सर्व दुःखोंके नाश करणेहारे योगकी सिद्धि होवे है इति ॥ तथा गोरक्षशतकमेंभी कहाहै

"वर्जयेद्दुर्जनप्रांतं वह्निस्त्रीपथसेवनम् ।
प्रातःस्नानोपवासादि कायक्लेशविधिं तथा ॥"

अर्थ० साधककूं प्राणायामके अभ्यासकालविषे दुर्जनका संसर्ग, अग्नितापन, स्त्रीगमन, पंथगमन, प्रातःस्नान, उपवासादिक शरीरके क्लेशदेनेहारी विधि, इन सर्वका परित्याग करणा चाहिये इति ॥ तथा अथर्ववेदको अमृतबिंदुउपनिषत्मेंभी कहाहै

"भयं क्रोधमथालस्यमतिस्वप्नातिजागरम् ।
अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत् ॥"

अर्थ॰ भय, क्रोध, आलस्य, अतिस्वप्न, अतिजागरण, अतिभोजन, अतिउपवास, इन सर्वकार्योंका योगीपुरुषकूं निरयहि वर्जन करणा चाहिये इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कहाहे

"अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रहः ।
जनसंगश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति ॥"

अर्थ॰ अतिभोजन करणा, बहुत प्रयास करणा, बहुत भाषण करणा, उपवासादिक नियमका ग्रहण करणा, संसारीलोकोंका संसर्ग करणा, विषयोंविषे लोलुपता करणी, इन षट्कार्योंकरके योगाभ्यासका विनाश होवे हे इति ॥ यातें सर्वक्रिया युक्तिपूर्वकहि करणी चाहिये ॥ तथा "क्रियाभिराशुद्धतनुः" कहिये उक्तप्राणायामके अभ्याससें प्रथम षट्क्रियाकरके अपणे शरीरकी शुद्धि करणी चाहिये काहेतें शरीरकी शुद्धि कियेविना सम्यक्प्रकारसें प्राणका निरोध नहि होवेहै ॥ सो तिन षट्क्रियाके नाम औ लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे निरूपण कियेहैं

"धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥"

अर्थ॰ धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति, इसभेदसें षट्प्रकारकी क्रिया हैं इति ॥ तिनमें

"चतुरंगुलविस्तारं हस्तपंचदशायतम् ॥
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥
पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत् ॥"

अर्थ० च्यारि अंगुल चौडा औ पंद्रा हस्त लंबा सूक्ष्म वस्त्र लेकर गुरुउक्तरीतिसें उष्णजल अथवा दुग्धसें आर्द्र करके शनैशनै मुखद्वारा भोजनकी न्यांई गिलजावे औ पुना नौलिकर्मकरके शनैशनै बाहिर निकासलेवे इसका नाम धौतिक्रिया है ॥ तात्पर्य यह उक्तप्रकारसें एकहाथपरिमाण नित्यप्रति गिले जब पंद्रा दिवसमें सर्व गिलजावे तो तिसका एक किनारा मुखकी दहनीतरफ दांतोंमें दबाय रखे पश्चात् दो अथवा तीन पलके अनंतर वक्ष्यमाण नौलिकर्मकरके मुखकूं अत्यंत खोलकर शनैशनै बाहिर निकासकरके क्षालन करलेवे इति ॥ इस क्रियाके चिरकाल अभ्यास करणेसें कास, श्वास, प्लीह, जलोदर, कुष्ठ, इत्यादिक कफजन्य विंशतिरोगोंकी निवृत्ति होवेहै ॥ तथा

"नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः ।
आधाराकुंचनं कुर्यात् क्षालनं वस्तिकर्म तत् ॥"

अर्थ० गुदाद्वारमें बांसकी नलकी प्रवेशकरके नाभिपर्यंत निर्मलजलविषे उत्कटासनसे बैठकर गुदाद्वारसें काजल ऊ-

र्ध्व आकर्षण करे पश्चात् नौलीकर्मकरके तिसका परित्याग करे इसका नाम वस्तिक्रिया है इति ॥ तात्पर्य यह, कनिष्ठिका अंगुलिके प्रवेशयोग्य षट्अंगुललंबी कोमलवांसकी नलकी लेकर गुदाद्वारमें च्यारि अंगुल प्रवेशकरके दो अंगुल बाहिर रखे पश्चात् नाभिपर्यंत स्वच्छजलविषे उत्कट आसनसें बैठकरके नौलिक्रियासें उदरके नलोंकूं उत्थापन करके अपानवायुके ऊर्ध्वआकर्षणद्वारा जलका आकर्षण करे पश्चात् नौलिकर्मकरके सर्व जलका परित्याग करे औ जो किंचित्मात्र जल उदरमें रहजावे तो मयूरासनकरके निकास् देवे तो वस्तिकर्म सिद्ध होवेहै इस प्रकारसें कोईदिन अभ्यास करे तो पश्चात् विनानलकीसेंभी जलका आकर्षण[1] होवेहै इति ॥ इस क्रियाके अभ्यास करणेतें वात, पित्त कफजन्य जितने गुल्म प्लीह अजीर्णादिक रोग होवेहैं तिन सर्वका नाश होवेहै औ धातुकी वृद्धि तथा इन्द्रिय औ मनकी स्वच्छता औ शरीरविषे कांति तथा जठरानलकी वृद्धि होवेहै इति ॥ तथा

"सूत्रं वितस्तिसुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥"

---

१ शौचकालकी न्याई ॥

अर्थ० एकवितस्तिपरिमाण कोमल सूत्र लेकर नासाद्वार-विषें प्रवेश करे पश्चात् मुखसें बाहिर निकासलेवे इसका नाम नेतिक्रिया है ॥ तात्पर्य यह ॥ वस्त्र सोवनेका सूक्ष्म तागा लेकर जितना अपणी नासिकाविषे प्रवेशकरसके तितनाहि बीस अथवा पचीसगुणितकरके स्थूल करे तिसमेंसें एक वालिस्तपरिमाण अग्रभागसें गुंथनकरके ऊपर मोम लगायकर स्निग्ध करे औ पीछले भागसें एक वालिस्त खुलाहि रहने देवे पश्चात् तिसकूं अग्रभागसे नम्र करके शनैः शनै नासाद्वारमें प्रवेश करे सो जब कंठके साथ स्पर्श करे तो मुखमें दहने हस्तकी अंगुलि प्रवेशकरके शनैःशनै बाहिर निकासलेवे जब गुंथन कियाहुया भाग मुखसें बाहिर आयजावे तो नासिका-विषे स्थित जो तागाका पीछला भाग तिसकूं दूसरे हाथसें पकडकरके दो अथवा तीन वार एक दूसरी तरफ फिरावे पश्चात् शनैःशनै मुखसें बाहिर निकासलेये तो नेतिक्रिया सिद्ध होवेहै इति ॥ इसक्रियाके अभ्यास करणेसें कपालकी शुद्धि औ नेत्रोंकी दृष्टि सूक्ष्म होवेहै, तथा शिरका रोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, अर्थात् जितने कंठसें ऊपर रोग होवेहैं तिन सर्वकी निवृत्ति होवेहै इति ॥ तथा

"निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।
अश्रुसंपातपर्यंतमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥"

अर्थ॰ दोनोंनेत्र खुलेकरके जबपर्यंत अश्रुपात नहि होवे तबपर्यंत एकटक सूक्ष्मदृष्टिसें नासिकाके अग्रभागविषे देखता रहै इसका नाम आचार्यलोक त्राटकक्रिया कहतेहैं इति ॥ इस क्रियाके अभ्यास करणेसें नेत्रके रोग औ आलस्य निद्रादिकोंकी निवृत्ति होवेहै ॥ तथा

"अमंदावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः ।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥"

अर्थ॰ ग्रीवाकूं नीचेकरके दोनोंहाथ जानवींपर धरे पश्चात् प्राणके रेचकपूर्वक उदरके दोनोंनलोंकूं उत्थापनकरके शीघ्रतासें वारंवार दहनी वांमीतरफ फिरावे इसकूं सिद्धलोक नौलिक्रिया कथन करतेहैं इति ॥ इस क्रियाके अभ्यास करणेसें जठरानलकी वृद्धि औ उदरगत सर्वरोगोंकी निवृत्ति होवेहै ॥ तथा इसकरकेहि धौति औ वस्तिक्रियाभी सिद्ध होवेहै औ इस क्रियासे विना कुंडलिनीका बोध होनाभी अत्यंत कठिन होवेहै यातें यह क्रिया योगाभ्यासीको अवश्य करणी योग्य है ॥ तथा

"भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषिणी ॥"

अर्थ॰ लोहकारकी भस्त्राकी न्यांई शीघ्रशीघ्र जो प्राणका रेचक पूरक करणाहै तिसका नाम कपालभातिक्रिया है इति॥

इस क्रियाके अभ्यास करणेसें सर्व प्रकारके कफजन्य दो-षोंका शोषण होवेहै ॥ यह षट्क्रियाके लक्षण हैं ॥ इन क्रियासें प्रथम शरीरकी शुद्धिकरके प्राणायाम करणेसें शीघ्रहि प्राणोंका निरोध होवेहै तथा शरीर हलका औ मन स्वच्छ होवेहै इति ॥ जिस पुरुषके शरीरविषे मेद, श्लेष्म अधिक होवे सो इन षट्क्रियाका आचरण करे दूसरा नहि काहेतें वात, पित्त, कफ, तीनो धातुवोंके समान होते जो उक्तषट्क्रियाका आचरण करे तो कफके शोषण होनेतें वातपित्तकी अधिकतातें शरीरविषे ज्वरादिकरोगोंकी उत्पत्ति होवेहै ॥ औ केचित् याज्ञवल्क्यादिक आचार्य तो केवल प्राणायामके अभ्याससेंहि शरीरकी शुद्धि मानते हैं उक्त षट्क्रिया तिसकूं संमत नहिहैं परंतु जिस पुरुषके शरीरविषे श्लेष्मकी अधिकता होवेहै तिसकूं तो अवश्यमेव करणी चाहिये इति ॥ १४ ॥ इस प्रकारसें प्राणायामका लक्षण औ तिसके अवांतर भेद तथा तिसकी उपयोगी षट्क्रियाका निरूपण करके अब तिसके फलकूं वर्णन करेहैं ॥

"वंशस्थं वृत्तम्"

शिराविशुद्धिर्जठरानलोन्नति-
स्तथाक्षदोषापचयोऽङ्गलाघवम् ॥

सुशक्तिबोधो मनसश्च योग्यता
विधारणा स्वस्य ततोभिजायते॥१५॥

शिरेति ॥ 'ततः' कहिये पूर्वोक्तप्रकारसें सांगोपांग प्राणायामके चिरकालपर्यंत अभ्यास करणेसें 'अस्य' कहिये इस साधकपुरुषकी 'शिराविशुद्धि' कहिये शरीरविषे जो इडा-पिंगला आदिक नाडियां हैं तिनकी शुद्धि होवे है, यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कहीहै

"प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेत्
पीत्वा पिंगलया समीरणमथो बध्वा त्यजेद्वामया ॥
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाऽभ्यासं सदा तन्वतां
शुद्धा नाडिगणा भवंति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥"

अर्थ० प्रथम इडाद्वारसें प्राणवायुका पूरक करे पश्चात् यथाशक्ति कुंभककरके पिंगलाद्वारसें रेचक करे पुनः पिंगलासें पूरककरके यथाशक्ति कुंभकके अनंतर इडाद्वारसें रेचक करे इस प्रकारसें चंद्रमारूप इडा औ सूर्यरूप पिंगलाद्वारा प्राणायामके अभ्यास करणेतें तीन मासके अनंतर योगीलोकोंकी सर्वनाडियां शुद्ध होवे हैं इति ॥ तथा याज्ञवल्क्य-संहितामेंभी कहाहै

"नाडी शुद्धिमवाप्नोति पृथक् चिन्होपलक्षिताम् ॥"

अर्थ०उक्तप्राणायामके अभ्यास करणेसें साधकपुरुष वा-ह्यके चिह्नोंकरके उपलक्षित भयी नाडियोंकी शुद्धिकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ सो वाह्यके चिन्हभी तहांहि कथन कियेहैं

"शरीरलघुता दीप्तिर्वन्हेर्जठरवर्तिनः ॥
नादाभिव्यक्तिरित्येतत् चिह्नं तत्सिद्धिसूचकम् ॥"

अर्थ० जिसकालविषे सर्वनाडियोंकी शुद्धि होवेहै तो श-रीरकी लघुता औ जठरानलकी वृद्धि तथा नादका श्रवण यह चिन्ह होवेहैं इति ॥ किंच नाडीशुद्धिके हुयेहि सम्यक्-प्रकारसें प्राणका निरोध होवेहै, यह वार्ता हठयोगप्रदीपिका-मेंभी कथन करीहै

"शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम् ।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥"

अर्थ० जिसकालविषे कफादिकोंसें वेष्टित जो नाडीचक्र है तिसकी शुद्धि होवेहै तिसकालविषेहि योगी प्राणका चिर-काल निरोध करणेमें समर्थ होवेहै इति ॥ तिन नाडियोंकी संख्या अथर्ववेदकी प्रश्नउपनिषद्में कथन करीहै

"अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां
द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवंति ॥"

अर्थ० इस शरीरमें एकसौ नाडी मुख्य हैं तिन एकएकमेंसें

सौ सौ शोखानाडी निकसी हैं पुना तिन शाखानाडियोंमेंसें एकएक नाडीसें बहत्तर बहत्तर हजार उपशाखा नाडी निकसीहैं इति ॥ औ जो

"द्वासप्ततिसहस्राणि प्रतिनाडीषु तैतिलम्"

अर्थ० जैसे मस्तकका आधार कपोलदेश है तैसेहि बहत्तर हजार नाडियोंका सुषुम्नानाडी आधारभूत है इति ॥ इस अथर्ववेदकी क्षुरिकाउपनिषत्के वाक्यमें जो नाडियोंकी बहत्तर हजार संख्या कथन करी है सो स्थूलनाडियोंके अभिप्रायसें जानना नहिं तो उक्तप्रश्न उपनिषत्के वाक्यसाथ विरोध होवेगा ॥ सो अत्यंत सूक्ष्महोनेतें उदरके विदारण करणेसेंभी तिन सर्वकी प्रतीति नहि होवेहै ॥ सो तिन सर्वनाडियोंमें दशनाडी प्रधान हैं तिन सर्वके नाम गोरक्षशतकमें लिखेहैं

"इडा च पिंगला चैव सुषुम्नाच तृतीयका ।
गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ॥
अलंबुषा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी स्मृता ।
एतन्नाडीमयं चक्रं ज्ञातव्यं योगिभिः सदा ॥"

अर्थ० इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा,

---

१ सर्व मिलकरके नाडियोंकी संख्या ७२, ७२, १०, २०१, है ।

यशस्विनी, अलंबुषा, कुहूः, शंखिनी यह दश प्रधाननाडि-योंका चक्र सर्वदाहि योगिलोकोंकूं जानना योग्य है इति ॥ तथा तिनके स्थानभी तहांहि कथन कियेहैं

"इडा वामे स्थिता भागे दक्षिणे पिंगला तथा ।
सुषुम्ना मध्यदेशे तु गांधारी वामचक्षुषि ॥
दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्णे च दक्षिणे ।
यशस्विनी वामकर्णे वदने चाप्यलंबुषा ॥
कुहूश्च लिंगदेशे तु मूलाधारे च शंखिनी ।
एवं द्वारं समाश्रित्य तिष्ठंति दश नाडयः ॥"

अर्थ० नासाके वामपुटमें इडानाम नाडीका स्थान है औ दक्षिणपुटमें पिंगलाकी स्थिति है तथा मध्यदेशमें सुषुम्ना रहती है औ वामनेत्रविषे गांधारीका निवास है औ दक्षिण नेत्रमें हस्तिजिह्वाका वासस्थान है तथा दक्षिणकर्णविषे पूषाकी स्थिति है औ वामकर्णमें यशस्विनीका वास है तथा मुखमें अलंबुषाका स्थान है औ लिंगदेशमें कुहूका निवास है तथा मूलाधारमें शंखिनीका स्थान है इसप्रकारसें यह मुख्य दशनाडियां अपणे अपणे द्वारकूं आश्रयकरके शरीरविषे निवास करतीहैं इति ॥ तिन दशोंमेंभी इडा, पिंगला, सुषुम्ना, यह तीन नाडी श्रेष्ठ हैं तिनमेंभी एक सुषुम्ना श्रेष्ठ है यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करी है

"तासां मुख्यतमास्तिस्रस्तिसृष्वेकोत्तमोत्तमा ।
मुक्तिमार्गे तु सा प्रोक्ता सुषुम्ना विश्वधारिणी ॥"

अर्थ० पूर्वोक्त सर्वनाडियोंमें उक्त तीन नाडी श्रेष्ठ हैं पुना तिनमेंभी एक सुषुम्ना मुख्य है काहेतें सर्वनाडियोंका आधारभूत एक सुषुम्नाहि योगीलोकोंकूं मोक्षविषे द्वारभूत होवेहै इति ॥ तिन सुषुम्नाआदिक सर्व नाडियोंका मूलस्थान कंद है, यह वार्ता गोरक्षशतकविषेभी कथन करी है

"ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कंदयोनिः खगांडवत् ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥"

अर्थ० लिंगदेशसें ऊपर औ नाभिसें किंचित् नीचे कंदका स्थान है सो कंदहि पूर्वोक्त सर्वनाडियोंका उत्पत्तिस्थान है तहांसेंहि सर्वनाडियोंकी उत्पत्ति होवेहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

"कंदस्थानं मनुष्याणां देमहध्यान्नवांगुलम् ।
चतुरंगुलविस्तारमायामं च तथाविधम् ॥
अंडाकृतिवदाकारं भूषितं च त्वगादिभिः ॥"

अर्थ० मनुष्योंके लिंग औ गुदाके बीचमें जो देहका मध्यभाग सीवनी है तिसतें नवअंगुल ऊपर नाभिके अधोभागविषे कंदका स्थान है सो कंद च्यारि अंगुल ऊंचा औ

च्यारि अंगुल चौडा है तथा कुक्कुटके अंडाके समान तिसकी आकृति औ रंग है तथा च्यारि तरफसें त्वचा औ कफआदिकोंकरके वेष्टित है इति ॥ तिस कंदके मध्यदेशविषे सुषुम्नानाडीका मूलस्थान है, यह वार्ताभी तहांहि याज्ञवल्क्यने कथन करी है

"कंदस्य मध्यमे गार्गि सुषुम्ना संप्रतिष्ठिता ।
पृष्ठमध्यस्थितेनास्था सह मूर्धानमागता ॥"

अर्थ० हे गार्गि कंदके मध्यभागविषे सुषुम्नानाडीकी स्थिति है सो पृष्ठभागसें मेरुदंडद्वारा ब्रह्मरंध्रपर्यंत गई है इति ॥ यहां यह रहस्य है ॥ सुषुम्नाकंदके मध्यभागसें उठकर आधारचक्रमें आवे है आधारसें स्वाधिष्ठानचक्रविषे आवे है तहांसें मणिपूरचक्रमें आवेहै तिसतें ऊर्ध्व अनाहतचक्रमें आवेहै तहांसें कंठचक्रमें आवेहै, तहांसें सुषुम्नाके पश्चिम औ पूर्व इसभेदसें दो मार्ग है तिनमें पश्चिम मार्ग तो ग्रीवाके पृष्ठभागविषे स्थित जो मेरुदंड है तिसके द्वारा ब्रह्मरंध्रविषे जावे है ॥ औ पूर्वमार्ग भ्रूमध्यविषे जो आज्ञाचक्र है तिसके द्वारा ब्रह्मरंध्रकूं जावेहै ॥ तिनदोनोंमें पश्चिममार्ग उत्तम है यह वार्ता अथर्ववेदकी योगशिखाउपनिषत्‌मेंभी कथन करी है

"द्वितीयं सुषुम्नाद्वारं परिशुद्धं विसर्पति ॥"

अर्थ० योगचर्यामें कुशल जो योगी है सो सुषुम्नाका द्वि-

तीय जो भेरिशुद्धकहिये निर्मल पश्चिमद्वार है तिसमेंहि प्राण-कालके सहित प्रवेश करे है इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिका-मेंभी कहाहै "वाहयेत् पश्चिमे पथि" अर्थ० योगीकूं सुषु-म्नाके पश्चिममार्गसेंहि ब्रह्मरंध्रविषे प्राणोंकूं वहनकरणा चाहि-यें इति ॥ इसस्थलमें विशेष वार्ता गुरुमुखसें जाननी योग्य· है अत्यंत गोप्य होनेतें नहि लिखी है ॥ सो तिन उक्त चक्रों-कूं क्रमसें भेदनकरकेहि योगी प्राणोंकूं दशमद्वारमें लेजानेकूं समर्थ होवेहै इति ॥ सो पूर्वोक्त प्राणायामके अभ्यासकरके नाडीचक्रके शुद्धहोनेतेंहि सुषुम्नाविषे प्राणका प्रवेश होवे है यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करी है

"विधिवत् प्राणसंयामैर्नाडीचक्रे विशोधिते ।
सुषुम्नावदनं भित्त्वा सुखाद्विशति मारुतः ॥"

अर्थ०विधिपूर्वक प्राणायामके अभ्यासकरके नाडीच-क्रके शुद्ध होनेतें सुषुम्नाका मुखभेदनकरके प्राण सुखसेंहि दशमे द्वारमें प्रवेश करे है इति, तथा 'जठरानलोन्नतिः, कहिये पूर्वोक्तप्राणायामके अभ्यास करणेतें उदरमें 'स्थित जो जठराग्नि है तिसकीभी वृद्धि होवेहै ॥ तथा 'अक्षदो पापचयः 'कहिये चक्षुआदिक इन्द्रियोंके जो पापरूप दोष हैं तिनकीभी निवृत्ति होवेहै यह वार्तावेदकी अमृतबिंदु उप-निषत्मेंभी निरूपण करी है

"यथा पर्वतधातूनां दह्यंते धमनान्मलाः ॥
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यंते प्राणनिग्रहात् ॥"

अर्थ० जैसे सुवर्णादिक धातुवोंका मल अग्निमें धमन करणेसें जलजावे है तैसेहि प्राणायामके अभ्यास करणेसें सर्व इन्द्रियोंकरके कियेहुये पापोंका विनाश होवे है इति ॥ तथा संवर्तसंहितामेंभी कहाहै, ॥

"मानसं वाचिकं पापं कायेनैव तु यत्कृतम् ।
तत्सर्वं नश्यते तूर्णं प्राणायामत्रये कृते ॥"

अर्थ० पूर्वोक्तप्रकारसें प्रणवादिकमंत्रका जप औ देवताके ध्यानसहित तीनवार प्राणायाम करणेसेंभी जितने मानस, वाचिक, औ कायिक पाप होवेंहें तिनका शीघ्रहि विनाश होवेहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

"नित्यमेव प्रकुर्वीत प्राणायामांस्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहनं मासात् पुनंत्यहरहः कृताः ॥
ऋतुत्रयात् पुनंत्येवं जन्मांतरकृतादघात् ।
संवत्सराद्ब्रह्मवधात्तस्मान्नित्यं समभ्यसेत् ॥"

अर्थ० पूर्वोक्तप्रकारसें नित्यंप्रति मासपर्यंत षोडश प्राणायाम करणेसें भ्रूणहत्याजन्य पापकी निवृत्ति होवेंहै औ षट्

---

१ गर्भमेंहि बालककी हत्याकरणेका नाम भ्रूणहत्या है ।

मासपर्यंत) करणेतें जन्मांतरोंविषे कियेहुये अज्ञातपापोंकी निवृत्ति होवे है तथा एकवर्षपर्यंत करणेसें ब्रह्महत्याजन्य पापकी निवृत्ति होवे है इसकारणसें पुरुषकूं नित्यहि प्राणायामका अभ्यास करणा योग्य है इति ॥ तथा "अंगलाववं" कहिये प्राणायामके अभ्यास करणेसें शरीरकीभी लघुता होवेहै, यह वार्ता याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कथन करी है

"धारणं कुर्वतस्तस्य वह्निस्थाने प्रभंजनम् ।
देहश्च लघुतां याति जठराग्निश्च वर्धते ॥"

अर्थ० प्राणायामके अभ्याससें उदरविषे प्राणके संयमन करणेसें जठरानलकी वृद्धि औ शरीरकी लघुता होवे है इति ॥ तथा कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कथन किया है इति ॥ "लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्" अर्थ० प्राणायामके अभ्यास करणेतें योगीके शरीरविषे लघुता औ अरोगता होवे है तथा विषयोंविषे जो इन्द्रियोंकी लोलुपता है तिसकीभी निवृत्ति होवेहै इति ॥ तथा 'सुशक्तिबोधः' कहिये पूर्वोक्तप्राणायामकें अभ्यास करणेसें कुंडलिनीनाडीकाभी उत्थान होवे है सो कुंडलिनीशक्ति पूर्वोक्त सुषुम्नानाडीके द्वारकूं अपणे मुखसें रोधनकरके कंदके उपरिभागमें स्थित है यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कथन करी है

"कंदोर्ध्वे कुंडलीशक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम् ।
बंधनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित् ॥"

अर्थ० कंदके उपरिभागविषे कुंडलिनीशक्ति शयनकर रही है सो जो योगीलोक तिसका उत्थापन करतेहं सो मोक्षकूं प्राप्त होतेहैं औ जो मूढलोक नहि करते हैं तिनकूं बंधनका कारण होवे है तथा जो योगीपुरुष तिस कुंडलिनीके जगानेकी युक्ति जानता है सोई योगकलाकूं यथार्थ जानता है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

"शिरां समावेष्ट्य मुखेन मध्ये
स्वपुच्छमास्येन निगृह्य सम्यक् ॥
[1]नाभौ सदा तिष्ठति कुंडली सा
धिया समाधाय निबोधयेत्ताम् ॥"

अर्थ० सुषुम्नानाडीकूं अपणे शरीरसें आवेष्टनकरके औ साडेतीन वल देकर अपणी पुच्छकूं मुखसें सम्यक्प्रकार ग्रहणकरके नाभिके अधोभागविषे सर्वदाहि कुंडलीशक्ति स्थित होय रही है इसीकारणसें पुरुषके प्राण सुषुम्नाविषे प्रवेश नहि करसकते याते प्राणकूं दशमे द्वारविषे लेजानेकी इच्छावान् साधकपुरुषकूं युक्तिपूर्वक तिस स्थलमें प्राणोंका निरो-

१ कितनेक योगके ग्रंथमें समवलभी कथन कियेहैं परंतु बहुत स्थलोंमें साडेतीनहि कथन कियेहैं ।

धकरके तिसकूं तहांसें चलायमान करणा योग्यहै इति ॥ सो तिसका उत्थान बंधपूर्वक प्राणायाम करणेसें होवे हैं सो बंध उड्डियानबंध, जालंधरबंध, मूलबंध, इसभेदसें तीन प्रकारके हैं सो तिन तीनोंके लक्षण हठयोगप्रदीपिकाविषे स्वात्मारामयोगीने निरूपण करे हैं ॥ तिनमें

"उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।
उड्डियानो ह्यसौ बंधो मृत्युमातंगकेसरी ॥"

अर्थ० प्राणके रेचकपूर्वक उदरकूं पश्चिमकी तरफ आकर्षणकरके नाभिदेशकूं किंचित् ऊर्ध्व आकर्षण करे यह मृत्युरूप मातंगके जय करणेविषे सिंहरूप उड्डियानबंधकहिये है इति ॥ तथा

"कंठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बंधो जालंधराख्योयं जरामृत्युविनाशकः ॥"

अर्थ० कंठका संकोचकरके ठोडीकूं हृदयके समीप दृढकरके लगावे यह जरा औ मृत्युके नाशकरणेहारा जालंधरबंध है इति ॥ तथा

"पार्ष्णिभागेन संपीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबंधोभिधीयते ॥"

अर्थ० सिद्धासनपूर्वक वामपादकी एडीसें गुदा औ लिंगके

मुखसें जाननी योग्य है तथा यह सर्व वार्ता योगतारावलीविषे शंकराचार्यनेभी कथन करी है

"उड्डियानजालंधरमूलबंधैर्जाग्रितायामुरगांगनायाम् ।
प्रत्यङ्मुखेन प्रविशन् सुषुम्नांगमागमौ मुंचति गंधवाहः ॥"

अर्थ० उड्डियानबंध, जालंधरबंध, मूलबंध, इन तीनबंधपूर्वक प्राणायामके अभ्यास करणेतें कुंडलिनीका बोध होवे है पश्चात् सुषुम्नाके अनंतर प्रवेशद्वारा ब्रह्मरंध्रमें जानेमें प्राणवायुका पुनः गमन आगमन नहि होवे है अर्थात् तहांहि स्थितिकूं प्राप्त होवे है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

"बोधं गते चक्रिणि नाभिमध्ये
प्राणास्तु संभूय कलेवरेऽस्मिन् ॥
चरंति सर्वे सह वह्निनैव
तंतौ यथा जंतुगतिस्तथैव ॥"

अर्थ० नाभिके अधोभागविषे जो कुंडलिनीशक्ति है सो जब उक्तप्रकारसें बोधकूं प्राप्त होवे है तो जैसे ऊर्णनाभि, नामा जंतु तंतुपर आरोहण करे है तैसेहि सर्वप्राण एकीभूत होयकरके सहित अग्निके सुषुम्नाद्वारा ब्रह्मरंध्रविषे आरोहण करते हैं इति ॥ तथा 'विधारणासु' कहिये पूर्वोक्तप्राणा-

---

१ मकडी.

यामके अभ्यासकरणेसें अष्टादशम श्लोककी व्याख्याविषे वक्ष्यमाण जो धारण हैं तिनके विषेभी 'मनसश्च योग्यता' कहिये मलविक्षेपसें रहित भये साधक पुरुषके मनकी योग्यता होवे है यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करी है "धारणासु च योग्यता मनसः ॥" अर्थ० प्राणायामके अभ्यास करणेतें धारणाविषे मनकी योग्यता होवे है काहेतें प्राणायामके अभ्याससें पूर्व रजोतमोंके कार्य मलविक्षेपकरके संकलितभये मनकी धारणाविषे स्थिति नहि होवे है इति ॥ १५ ॥ इसप्रकारसें प्राणायामका फल वर्णनकरके अब योगका पंचम अंग जो प्रत्याहार है तिसका लक्षण निरूपण करेहैं ॥

(इन्द्रवंशावृत्तम्)

भोगोन्मुखाक्षौघनिवर्त्तनं सदा-
ऽसंसर्गतो दोषदृशा च दीर्घया ॥
संस्थापनं यच्च मनोनुरोधतो
योगस्य तत्पंचममंगमीरितम् ॥ १६ ॥

भोगोन्मुखेति ॥ शब्द, स्पर्श, रूपआदिक विषयोंके सन्मुख जो श्रोत्रादिक इन्द्रियसमूहका अनादिकालसें स्वाभा-

विकहि प्रीतिपूर्वक प्रवाह होय रहाहै तिसका सर्वकालविषे विषयोंके असंसर्ग औ तिनविषे दीर्घ दोषदृष्टिपूर्वक निवारणकरके चित्तके अनुकूल जो तिन इन्द्रियोंका स्थापन करणा है सोई योगका पंचम अंगरूप प्रत्याहार कहियेहै इति यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करी है

"स्वविषयासंप्रयोगे चित्तानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥"

अर्थ० स्वस्वविषयोंके संबंधके अभावसें श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी जो चित्तके अनुसार स्थिति है अर्थात् चित्तके निरोध करणेसें स्वतेहि जो इन्द्रियोंका निरोध होना है तिसका नाम प्रत्याहार है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते ॥"

अर्थ० स्वभावसेंहि जो श्रोत्रादिक इन्द्रिय शब्दादिक विषयोंविषे विचरती हैं तिनका विवेकरूप बलकरके जो विषयोंसें निवारण करणा है तिसका नाम प्रत्याहार है इति ॥ तथा शंखसंहितामेंभी कहाहै "संहारश्चेन्द्रियाणां च प्रत्याहारः स उच्यते" इसवाक्यका अर्थ ऊपर कहे अर्थके अंतर्भूतहि है इति ॥ सो इस प्रत्याहारमें उक्तदोषदृष्टि औ विषयोंके संसर्गका परित्याग यह दोनोंहि हेतु हैं काहेतें प्रथम

दोषदृष्टिकरके हुयेविना विषयोंका परित्याग संभवे नहि ॥ सो दोषदृष्टिभी दीर्घ कहिये सर्वदाहि करणी चाहिये काहेतें क्षणिक दोषदृष्टिकरके विषयोंसें इन्द्रियोंका प्रत्याहार नहि होसके है यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कथन करीहै

"भोजनांते श्मशानांते मैथुनांते च या मतिः ।
सा मतिः सर्वदा चेत्स्यात्को न मुच्येत बंधनात् ॥"

अर्थ० इस पुरुषकी भोजनके अंतमें जो बुद्धि होवे है औ जो श्मशानके अंतविषे होवेहै तथा जो बुद्धि मैथुनकर्मके अंतमें होवेहै ऐसीहि बुद्धि जो सर्वकालविषे रहे तो कौन पुरुष संसारबंधनतें मोक्षकूं नहि प्राप्त होवे अर्थात् सर्वहि होय जावें इति ॥ यातें साधकपुरुषकूं विषयोंविषे दीर्घदोषदृष्टिहि करणी योग्य है ॥ सो दोषदृष्टिका प्रकार योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणविषे वीतहव्यमुनिने दिखायाहै

"कुरंगालिपतंगेभमीनास्त्वेकैकशो हताः ।
सर्वैर्युक्तैरनर्थैस्तु व्याप्तस्याज्ञ कुतः सुखम् ॥"

अर्थ० हे मूढचित्त कुरंग एक श्रोत्र इन्द्रियका विषय जो शब्दहै तिसके अर्थ वीणाका शब्द सुनकरके मोहित भया व्याधके वशीभूत होयकर मृत्युकूं प्राप्त होवेहै ॥ औ भ्रमरभी एक नासिकाइन्द्रियका विषय जो सुगंधि है

तिसके अर्थ रात्रीमें कमलके संकुचित होनेतें मृत्युकूं प्राप्त होवेहै तथा पतंगभी एक चक्षुइन्द्रियका विषय जो रूप है तिसके अर्थ दीपकविषे भया मृत्युकूं प्राप्त होवेहै औ हस्ती एक त्वचाइन्द्रियका विषय जो स्पर्शहै तिसके अर्थ हस्तिनीके पीछे गर्तविषे पतित होयकरके नाशकूं प्राप्त होवेहै तथा मत्स्यभी एक जिह्वाइन्द्रियका विषय जो रसहै तिसके अर्थ लोहकुंडीका भक्षणकरके मृत्युकूं प्राप्त होवेहै इसप्रकारसें यह पांचहि एकएक इन्द्रियके अर्थ नाशकूं प्राप्त होवेहै तो तुं पांचों अनर्थोंकरके युक्त भया किसप्रकारसें सुखी होवेगा इति ॥ इसप्रकार दोषदृष्टितें विषयोंका परित्यागकरके पुना कदाचित्‌भी तिनका संसर्ग नाहि करणा चाहिये काहेतें विषयोंके संबंधकरके महात्मा पुरुषोंका चित्तभी चलायमान होवेहै यह वार्ता पूर्वाचार्योंनेभी कथन करीहै

"मनोहराणां भोज्यानां युवतीनां च वाससाम्।
वित्तस्यापि च सान्निध्याच्चलेच्चित्तं सतामपि ॥"

अर्थ० मनके हरण करणेहारे सुन्दर जो पायसादिक भोजन औ युवाअवस्थायुक्त स्त्रियां तथा पट्टआदिकोंके वस्त्र औ सुवर्णादिक द्रव्य हैं तिनके संसर्गसें महात्मापुरुषोंका चित्तभी चलायमान होवे है तो अन्य साधकपुरुषको क्या वार्ता

कहनी है इति ॥ तथा सौभरि, परासर, विश्वामित्र, ऋष्यशृंग इत्यादिक ऋषिभी स्त्रीरूपविषयके संसर्गकरकेहि तपसें भ्रष्ट होतेभयेहै यह वार्ता पुराणोंमें प्रसिद्धहि है ॥ यातें प्रत्याहार करणेहारे पुरुषकूं कदाचित्भी विषयोंकी सन्निधि नहि करणी चाहिये ॥ यह वार्ता मनुस्मृतिविषेभी कथन करीहै

"अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्त्तयेत् ॥"

अर्थ० शब्दादिक विषयोंकरके हरण करीहुयी जो श्रोत्रादिक इन्द्रियां है तिनकूं साधक पुरुष अल्पअन्नके भक्षण करणेतें औ एकांतविषे निवासकरके निवारण करे इति ॥ किंच मन औ विषयोंकूं आत्मस्वरूप जाननेसेंभी इन्द्रियोंका प्रत्याहार होवेहै यह वार्ता अथर्ववेदकी अमृतबिंदुउपनिषत्‌मेंभी कथन करी है

"शब्दादिविषयाः पंच मनश्चैवातिचंचलम् ।
चिंतयेदात्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते ॥"

अर्थ० शब्दादिक जो पांच विषय हैं अतिचंचल जो मन है तिनसर्वकूं आत्मारूप सूर्यकी किरणारूपसें चिंतन करे इसका नामभी प्रत्याहार है इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहा है

"जगत् यद्दृश्यते सर्वं पश्येदात्मानमात्मनि ॥
प्रत्याहारः स च प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ॥"

अर्थ० यावत्पर्यंत चराचरजगत् दृष्टि औ श्रवणमें आवेहै तिस सर्वकूं अपणे हृद्यमें आत्मस्वरूपसें देखे इसकूं योगग्रंथोंके जाननेहारे महात्मालोक प्रत्याहार कहते हैं इति ॥ तथा गोरक्षशतकमें कहाहै ॥

"यं यं शृणोति कर्णाभ्यांप्रियं प्रियमेव वा ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥
अस्पर्शमथवा स्पर्शं यं यं स्पृशति चर्मणा ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥
अमेध्यमथवा मेध्यं यं यं पश्यति चक्षुषा ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥
अलौण्यमथवा लौण्यं यं यं स्पृशति जिह्वया ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥
अगंधमथवा गंधं यं यं जिघ्रति नासया ।
तं तमात्मेति विज्ञाय प्रत्याहरति योगवित् ॥
अंगमध्ये यथांगानि कूर्म संकोचयेत् ध्रुवम् ।
योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि ॥"

अर्थ० प्रिय अथवा अप्रिय जो जो पदार्थ श्रोत्रइन्द्रियसें श्रवण करेहै तिसतिसकूं आत्मारूप जानकरके योगी श्रोत्रइ-

न्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ औ कोमल अथवा कठिन जो जो त्वचाइन्द्रियकरके स्पर्श करेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगी त्वचाइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ तथा सुरूप अथवा कुरूप जो जो पदार्थ नेत्रइन्द्रियकरके देखेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगी नेत्रइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ तथा स्वादु अथवा अस्वादु जो जो जिह्वा-इन्द्रियकरके रस लेवेहै तिसतिसकूंभी आत्मस्वरूप जानकरके योगी जिह्वाइंद्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ तथा सुगंध अथवा दुर्गंध जो जो नासिकाइन्द्रियसें सूंघेहै तिसतिसकूंभी आत्म-स्वरूप जानकरके योगीघ्राणइन्द्रियका प्रत्याहार करेहै ॥ सो जैसें कूर्म अपणे हस्तपादादिक अवयवोंका उदरविषे संकोच करेहै वैसेहि योगपुरुष उक्तप्रकारसें श्रोत्रादिक इन्द्रि-योंका आत्मस्वरूपविषे प्रत्याहार करे इति ॥ औ याज्ञवल्क्य-संहिताविषे तो प्रत्याहारका दूसरा लक्षणभी कियाहै सोभी प्र-संगमें यहां निरूपण करेहैं

"पादांगुष्ठौ च गुल्फौ च जंघामध्यौ तथैव च ।
चित्योर्मूलं च जान्वोश्च मध्ये चोरुद्वयस्य च ॥
पायुमूलं ततः पश्चात् देहमध्यं च मेढ्रकम् ।
नाभिश्च हृदयं गार्गि कंठकूपस्तथैव च ॥
तालुमूलं च नासाया मूलं चाक्ष्णोश्च मंडले ।

भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च मूर्द्धा च मुनिपुंगवे ॥
स्थानेष्वेतेषु मनसा वायुमारोप्य धारयेत् ।
स्थानात् स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारपरायणः ॥"

अर्थ० हे गार्गि दो पादके अंगुष्ठ, दो पादके गुल्फ, दो जंघाके मध्यदेश, दो चितियोंके मूलदेश, दो जानुवोंके मध्यदेश, दो ऊरुके मध्यदेश, एक गुदाका मूलदेश, एक देहका मध्यदेश, एक लिंगका मूलदेश, एक नाभिदेश, एक हृदयदेश, एक कंठकूप, एक तालुका मूलदेश, एक नासिकाका मूलदेश, दो नेत्रोंके मंडल, एक भ्रुवोंका मध्यदेश; एक ललाटदेश, एक ब्रह्मरंध्र इसभेदसें शरीरविषे पचीस मर्मस्थान हैं ॥ सो इन स्थानोंमें मनके सहित प्राणवायुकों धारण करके प्रत्याहार करणेहारा योगी एकस्थानसें दूसरेमें दूसरेसें तीसरेमें इसप्रकार क्रमसें प्राणका ऊर्ध्व आकर्षण करे. अर्थात् प्रथमपादके अंगुष्ठविषे प्राणका निरोध करके पश्चात् गुल्फोंमें लावे औ गुल्फोंसें जंघाके मध्यदेशमें लावे इसी प्रकार उक्तसर्वदेशोंसें ऊर्ध्वऊर्ध्व प्राणका आकर्षणकरके ब्रह्मरंध्रविषे लावे ॥ इसप्रकार प्राणवायुका ब्रह्मरंध्रपर्यंत ऊर्ध्व आकर्षणकरके पश्चात् यथेच्छा तहां स्थित होयकर पुनः प्राणोंका नीचे आकर्षण करे सो नीचे उतारणेका प्रकारभी तहांहि कथन किया है ॥

"वंशस्थं वृत्तम्"

सुरप्रसादो मनसः प्रसन्नतां
तपःप्रवृद्धिस्त्वपि दैन्यसंक्षयः ॥
द्रुतं प्रवेशश्च तथैव संयमे
जितेन्द्रियस्येह किलोपजायते ॥ १७ ॥

सुर इति ॥ 'सुरप्रसादः' कहिये पूर्वोक्तप्रकारसें जिस पुरुषने स्वस्वविषयोंसें निवारणकरके श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकूं अपने वशीभूत किया है तिसपर विष्णु, शंकरादिक देवतोंका प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता होवेहै ॥ इन्द्रियलंपट पुरुषपर देवताकी प्रसन्नता औ सन्निधि नहि होवे है यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करी है ॥

"शिश्नोदरे ये निरताः सदैव
स्तेना नरा वाक्परुषाश्च नित्यम् ॥
अपेतदोषानपि तान् निदित्वा
दूराद्देवाः संपरिवर्जयंति ॥
सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा
धर्मे रतास्तैः सह संभजंते ॥"

अर्थ॰ जो पुरुष सर्वदाहि शिश्न औ उदरके परायण औ चोर तथा सर्वके प्रति क्रूरवचनोंके भाषण करणेहारे हैं॥ सो यद्यपि प्रायश्चित्तकरके दोषोंतें रहितभी होवें तोभी देवतालोक तिनकी सन्निधि नहि करतेहैं किंतु दूरसेंहि तिनका परिवर्जन करतेहैं ॥ औ जो सर्वदा सत्यभाषण करणेहारे औ कृतज्ञ तथा स्वधर्मविषे निरत पुरुष हैं तिनके साथहि देवतालोक संभाषणादिक व्यवहार करतेहैं इति॥इसी कारणसें स्वधर्मनिरत, सत्यवादी, औ जितेन्द्रिय जो राजाशिबि, नल, अर्जुन,युधिष्ठिरादिक पुरुष थे तिनके पास कुवेर इन्द्रादिक देवता औ नारदादिक महर्पियोंका आगमन औ संभाषणादिक व्यवहार पुराणोंमें श्रवण होवेहै अन्य पापीपुरुषोंके साथ नहि ॥ तथा 'मनसः प्रसन्नता' कहिये इन्द्रियजित पुरुषका मनभी सर्वदा प्रसन्न रहताहै काहेतें इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति होनेतें तिनके उपार्जनादिकोंविषे प्रवृत्त भयाहि मन सर्वदा क्लेशकरके व्याकुल रहताहै औ इन्द्रियजितपुरुषकी उपार्जनादिक प्रवृत्तिके अभाव होनेतें सर्वदाहि निर्मलजलकी न्यांई तिसका मन स्वच्छ रहताहै ॥ तथा 'तपःप्रवृद्धिः' कहिये इन्द्रियजितपुरुषका तपभी दिनदिनप्रति वृद्धिकूं प्राप्त होवेहै काहेतें इन्द्रियोंका निग्रह करणाहि परम तप है, यह वार्ता अन्यस्मृतिविषेभी कथन करी है

"मनसश्चेन्द्रियाणां च निग्रहः परमं तपः ।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते ॥"

अर्थ० मन औ इन्द्रियोंका जो स्वस्वविषयोंसें निग्रह करणा है सोई परम तप है औ सोई सर्वधर्मोंसें श्रेष्ठ औ परमधर्म है इति ॥ तात्पर्य यह ॥ जितेन्द्रियपुरुष जोजो जपतप-आदिक क्रिया करेहै सोईसोई क्रिया यथोक्तफलकी प्राप्ति करे है, यह वार्ता मनुस्मृतिके द्वितीयाध्यायविषेभी कथन करी है

"वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥"

अर्थ० सर्व इन्द्रियोंकूं वशीभूतकरके औ मनकूंभी संयमनकरके तथा अन्नादिक योगसें शरीरका रक्षणकरता हुया साधकपुरुष सर्वकार्योंकी सिद्धिकूं प्राप्त होवे है इति ॥ औ जो अजितेन्द्रिय पुरुष है तिसकूं यथोक्तफलकी प्राप्ति नहि होवेहै यह वार्ताभी तहांहिं कथन करी है

"वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
नैवाजितेन्द्रियस्येह सिद्धिं गच्छंति कर्हिचित् ॥"

अर्थ० जो पुरुष जितेन्द्रिय नहि है तिसकूं वेदाध्ययन,

---

१ उपाय.

त्याग, यज्ञ, नियम, तप, आदिकर्मोंको कदाचित्भी सिद्धि नहि प्राप्त होवे है इति ॥ किंच पांच इन्द्रियोंमेंसें एक इन्द्रियकी उपेक्षा करणेतेंभी जपादिकोंकी सिद्धि नहि होवे है तो जिसके पांचोंहि वशीभूत नहि है तिसकी तो क्याहि वार्ता कहनी है ॥ यह वार्ताभी तहांहि मनुस्मृतिमें कथन करी है

"इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनाऽस्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम् ॥"

अर्थ॰श्रोत्रादिक इन्द्रियोंमेंसें जो एक इन्द्रियकाभी क्षरण होवे है तो तिसकरके जैसे छिद्रयुक्त मसकसें सर्वदाहि जल क्षरता रहता है तैसेहि तिसपुरुषके सर्वहि प्रज्ञासाध्य अपतपादिक क्षरजातेहैं इति ॥ तथा 'अपि दैन्यसंक्षयः' कहिये इन्द्रियोंके जयकरणेसें दीनताकाभी क्षय होवेहै काहेतें अजितेन्द्रियपुरुषहि स्त्रीआदिक विषयोंविषे प्रसक्त भया तिनके उपार्जनरक्षणादिकोंके अर्थ राजादिक धनीपुरुषोंकी दीनता करता है ॥ यह वार्ता वैराग्यशतकमें भर्तृहरिनेभी कथन करीहै

"दीनादीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी ॥
याच्ञाभंगभयेन गद्गदगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत् स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः॥"

अर्थ० दीनोंसेंभी दीन मुखवाले क्षुधाकरके पीडित भये औ रुदन करतेहुये वालकोंकरके जीर्णवस्त्रसें आकर्षणकरी-हुयी अपणी स्त्री जो इस पुरुषकरके नहि देखनेमें आवे तौ याञ्चाभंगके भयकरके गद्गदकंठसें टूटे-औ विलीन अक्षरों-करके युक्त जो देहि इसप्रकारकी दीनवाणी है तिसकूं केवल अपणे उदरपूरण करणेके अर्थ कौन विवेकी पुरुष धनी पुरुषोंके आगे कथन करे है अर्थात् कोईभी नहि करे है तात्पर्य यह अजितेन्द्रिय पुरुषहि भोगके साधन स्त्रीगृहादिकों-विषे आसक्त भया उक्तप्रकारकी स्त्रीकूं देखकरके तिनके पोषण करणेके अर्थ उक्तप्रकारकी दीनवाणी धनीलोकोंके आगे कथन करे है इति ॥ तथा अन्यत्र भी कहाहै

"जिह्वोपस्थादिकार्पण्याद्गृहपालायते जनः ॥"

अर्थ० यह पुरुष जिह्वा औ उपस्थादिक इन्द्रियोंके विषयोंमें लोलुप भया श्वानकी तुल्यताकूं प्राप्त होवे है इति तथा 'द्रुतं प्रवेशश्च तथैव संयमे' कहिये इन्द्रियोंके जय करणेसें साधकपुरुषका योगका मुख्य साधन जो धारणा, ध्यान, समाधिरूप वक्ष्यमाण संयम है तिसमेंभी द्रुत प्रवेश होवेहै अर्थात् शीघ्रहि योगकी सिद्धि होवे है ॥ यह वार्ता यजुर्वेदकी कठउपनिषत्मेंभी कथन करी है

"तां योगमिति मन्यंते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥"

अर्थ०, श्रोत्रादिक सर्वइन्द्रियोंकूं निरोधकरके जो स्थिर धारण करणा है तिसकूंहि ऋषिलोक योग मानतेहैं इति ॥ तथा महाभारतविषेभी कहाहै

"एष योगविधिः कृत्स्नो यावदिन्द्रियधारणम् ।
एष मूलं हि तपसः कृत्स्नस्य नरकस्य च ॥"

अर्थ० श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका जो वशीभूत करणा है यहि सर्वयोगकी विधिहै औ यहि सर्व तपका मूल है औ जो तिनका निग्रह नहि करणा है सोई नरकका मूल है इति ॥ तथा अन्यश्लोककरकेभी तहांहि कथन किया है

"इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत्स्वर्गनरकावुभौ ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥"

अर्थ० पुरुषके इन्द्रियहि स्वर्ग औ नरकरूप हैं तिनमें जो निग्रह करीहुयी इन्द्रियां हैं सो तो स्वर्गका हेतु हैं औ जो विषयोंमें छोडी हुयी हैं सो नरकका हेतु हैं इति ॥ किंच जितेन्द्रियपुरुषहि निर्विघ्न मोक्षपदकूं प्राप्त होवे है, यह वार्ताभी तहांहि कथन करी है

"रथः शरीरं पुरुषस्य दृष्ट-
मात्मा नियंतेन्द्रियाण्याहुरश्वान् ॥
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दांतैः स्वयं याति रथीव धीरः ॥"

पर्योसें निवारण करके वारंवार चित्तकूं धारणादेशमें ठावनेमें खेदकूं नहि प्राप्त होना चाहिये किंतु उत्साहपूर्वकहि तिसका निग्रह करणा चाहिये, यह वार्ता मांडूक्यउपनिषत्की कारिकाविषे गौडपादाचार्यनेभी कथन करी है

"उत्सेक उदधेर्यद्वत्कुशाग्रेणैकबिंदुना ।
मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥"

अर्थ०-इस श्लोकविषे एक पुरातन इतिहास है सो संक्षेपसें यहां लिखे हैं ॥ सो जैसे एक टिट्टिभनामा पक्षी सहितस्त्रीके समुद्रके तीरपर निवास करता था तो जिसकाळविषे तिसकी स्त्री गर्भवती भयी तो कहने लगी हे स्वामिन्, मैं गर्भवती भयीहूं यातें हमारेकूं अंडे देनेके अर्थ समुद्रके तीरसें दूर किसी शुष्कस्थळविषे जायकर निवास करणा योग्य है ॥ तो टिट्टिभने कहा, हे प्रिये, तूं भयका परित्यागकरके इसी स्थळमेंहि अंडे उतारदे समुद्रकी क्या शक्ति है जो हमारे अंडोंकूं अपणे जलमें डुबायसके ॥ इस प्रकार जब वारंवार कहनेसेंभी टिट्टिभने नहि माना .तो तिसकी स्त्रीने तहांहि अंडे उतारदिये तो कितनेक दिवसोंके अनंतर इससमाचारकूं जानकर समुद्रने मनमें उपहासपूर्वक अपणे जलकी एक लहरीसें तिन सर्व अंडोंका आहरण करलिया जब इसप्रकारसें समुद्रने तिस टिट्टिभके अंडोंका आहरण करलिया

तो सो पक्षी अत्यंत कोपकूं प्राप्त होयकर सर्व समुद्रके शोषण करणेके अर्थ दृढ व्यवसायकरके अपणी चंचुमें एक कशाका तृण ग्रहणकरके तिसके अग्रभागसें समुद्रमेंसें एक जलकी बिंदु लेलेकर बाहिर जायकरके क्षेपण करणे लगा जब इसप्रकार करते करते कितनाक काल हुया तो तिसकूं अत्यंत दुःखी देखकर तिसकी स्त्री औ सर्व बांधवलोक आयकरके कहने लगे हे मूर्ख, कहां लक्षयोजनविस्तृत समुद्र औ कहां तुं अल्पपक्षी यातें तूं इस असंभवव्यवसायका परित्याग करदे इत्यादिक अनेक शिक्षावाक्यों कहनेसेंभी सो टिट्टिभ अपणे धैर्यसें चलायमान नहि होता भया किंतु उलटा अपणी स्त्री औ बांधवोंकूं अनेक प्रकारके शिक्षावचन कहकरके अपणी सहायमें ले लेताभया तो सर्वबांधवोंके सहित पूर्ववत् जलका समुद्रसें बाहिर क्षेपण करणे लगा ऐसे करते करते जब कितनाक काल व्यतीत भया तो दैवयोगसें फिरतेफिरते तहां अत्यंत कृपालु नारदमुनिजी आयगये तो तिन पक्षियोंकूं अत्यंत दुःखित देखकर नारदजीनेभी तिस असाध्यकार्यसें बहुतप्रकार तिसकूं निवारण कियां परंतु तोभी सो टिट्टिभ अपणे धैर्यसें चलायमान नहि होताभया तो इसप्रकारसें तिसका दृढ निश्चय देखकरके नारदजीने वैकुंठमें जायकर गरु-

१ निश्चय.

रणाविषे स्थित होना बहुत कठिन है इति ॥ यातें साधककूं अत्यंत प्रयत्नकरकेहि चित्तकूं धारणादेशविषे स्थापन करणा योग्य है यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै

"स्नेहपूर्णे यथा पात्रे मन आधाय निश्चलम् ।
पुरुषो युक्त आरोहेत्सोपानं युक्तमानसः ॥"

अर्थ०जैसे तैलकरके पूर्ण पात्रकूं हस्तविषे ग्रहणकरके एकाग्रमनसें पुरुष सीढीपर आरोहण करेहै तैसेही योगीपुरुष धारणाविषे एकाग्र मन लगायकरके निर्विकल्पसमाधिविषे आरोहण करेहै इति ॥ सो यह धारणा स्वशरीरमें स्थित पांचमहाभूतोंविषेभी होवेहै सो तिसका प्रकार याज्ञवल्क्यसंहितामें निरूपण कियाहै सोभी प्रसंगसें यहां दिखावेहैं

"भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।
एतेषु पंचभूतेषु धारणा पंचधेष्यते ॥
पादादि जानुपर्यंतं पृथ्वीस्थानं प्रकीर्तितम् ।
आजान्वोर्नाभिपर्यंतमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥
आनाभेर्हृदयांतं च वन्हिस्थानमुदाहृतम् ।
आहृन्मध्याद्भ्रुवोर्मध्यं यावद्वायुस्थलं स्मृतम् ॥
आभ्रूमध्यात्तु मूर्द्धांतं यावदाकाशमिष्यते ॥"

अर्थ०भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच महाभूतोंमें पांच प्रकारकी धारणा होवेहै तिनमें पादसें लेकर

जानुपर्यंत पृथिवीतत्वका स्थान है औ जानुसें लेकर नाभिपर्यंत जलतत्वका स्थान है तथा नाभिसें लेकर हृदयपर्यंत अग्नितत्वका स्थान है औ हृदयसें लेकर भ्रुवोंके मध्यदेशपर्यंत वायुतत्वका स्थान है तथा भ्रुवोंके मध्यदेशसें लेकर ब्रह्मरंध्रपर्यंत आकाशतत्वका स्थान है ॥ सो इन पांच तत्वोंमें देवता औ वीजके सहित धारणा करणी चाहिये तिनमें प्रथम

"पृथिव्यां वायुमास्थाय लकारेण समन्वितम् ।
ध्यायेच्चतुर्भुजाकारं ब्रह्माणं सृष्टिकारणम् ॥
धारयेत् पंचघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥"

अर्थ० पृथ्वीस्थानविषे प्राणवायुका धारण करके लं बीजके सहित चतुर्भुजाकारके युक्त औ सृष्टिकी उत्पति करणेहारे ब्रह्माका ध्यान करे इस प्रकार पंच घटिकापर्यंत धारणा करणेसें योगीके शरीरगत सर्व रोगोंका नाश औ पृथिवीतत्वका जय होवेहै इति ॥ तथा

"वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितम् ।
स्मरन्नारायणं सौम्यं चतुर्बाहुं शुचिस्मितम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।
धारयेत् पंचघटिकाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ "

अर्थ० जलके स्थानविषे प्राणवायुका निरोधकरके वं बीज-

केसहित चतुर्भुजावान् औ शुद्धस्फटिकमणिके समान वर्ण तथा पीतवस्त्रोंकरके शोभायमान औ मंद मंद हास्य करते हुये सुंदरमूर्ति नारायणजीका ध्यान करे इस प्रकार पांच घटिकापर्यंत धारणा करणेसें सर्व पापोंका विनाश औ जलतत्वका जय होवेहै इति० ॥ तथा

"वन्हौ चानिलमारोप्य रेफाक्षरसमन्वितम् ।
त्र्यक्षं च वरदं रुद्रं तरुणादित्यसन्निभम् ॥
भस्मोद्धूलितसर्वांगं सुप्रसन्नमनुस्मरेत् ।
धारयेत् पंचघटिका वह्निनाऽसौ न दह्यते ॥"

अर्थ० अग्निके स्थानमें प्राणवायुका धारणकरके रं बीजके सहित त्रिलोचन औ तरुणादित्यके समान प्रकाशवान् तथा प्रसन्नमुख औ सर्व अंगोंमें भस्म धारण कियेहुये महारुद्रका ध्यान करे ॥ इस प्रकार पांच घटिकापर्यंत धारणा करणेसें सो साधक पुरुष अग्निकरके दग्ध नहि होवेहै अर्थात् अग्नितत्वका जय होवेहै इति ॥ तथा

"मारुतं मारुतस्थाने यकारेण समन्वितम् ।
चिंतयेत्पेश्वरं शांतं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥
धारयेत् पंचघटिका वायुवद्व्योमगो भवेत् ॥"

अर्थ० वायुके स्थानविषे प्राणवायुका निरोध करके यं बीजके सहित सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् शांत सर्वव्यापक सर्वके

कारण ईश्वरका ध्यान करे इस प्रकार पांच घटिकापर्यंत धारणा करणेसें योगी वायुकी न्यांई आकाशमें गमन करेहै अर्थात् वायुतत्वका जय होवेहै इति ॥ तथा

"आकाशे वायुमारोप्य हकारोपरि शंकरम् ।
बिन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं बालेन्दुधृतमौलिनम् ।
पंचवक्त्रयुतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम् ॥
सर्वायुधोद्यतकरं सर्वाभरणभूषितम् ।
उमार्द्धदेहं वरदं सर्वकारणकारणम् ॥
चिंतयेन्मनसा नित्यं मुहूर्तमपि धारयेत् ।
स एवं मुक्त इत्युक्तस्तांत्रिकेष्वपि शिक्षितैः॥"

अर्थ० आकाशके स्थानविषे हं बीजके सहित प्राणवायुका स्थापन करके तिसके ऊपर ॐकारकी अर्द्धमात्रारूप आकाशकीन्यांई व्यापक औ शुद्धस्फटिकके समान गौरवर्ण तथा मस्तकविषे बालचंद्रमा औ पांच मुख दश भुजा तथा एक एक मुखमें तीन तीन नेत्र औ हस्तोंमें खड्ग शूल पिनाक० आदिक आयुध औ सर्व प्रकारके भूषणोंकरके विभूषित तथा अर्द्धांगमें पार्वतीकरके युक्त जो सर्वकारणोंकेभी कारण महादेव हैं तिनका ध्यान करे इस प्रकार एक मुहूर्तभी धारणा करे तो सो पुरुष मुक्तस्वरूप होवेहै औ आकाशतत्वका-

भी जय होवेहै इति ॥ यह पांच महाभूतोंकी धारणाकी विधि है ॥ इस प्रकारसें धारणाद्वारा पांच महाभूतोंके जय होनेतें योगी अमरभावकूं प्राप्त होवेहै यह वार्ता शिवसंहितामेंभी कथन करीहै

"मेधावी पंचभूतानां धारणां यः समभ्यसेत् ।
ब्रह्मशतगतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते ॥"

अर्थ० जो मेधावी योगीपुरुष पूर्वोक्त प्रकारसें पांच महाभूतोंकी धारणाका अभ्यास करता है सो पांच महाभूतोंके जय होनेतें सौ ब्रह्माके चले जानेसेंभी तिसकी मृत्यु नहि होवेहै इति ॥ सो इन उक्त धारणाविषे सर्वतरफसें निग्रहपूर्वक स्थापनकरके मनकूं एकाग्र करणा चाहिये ॥ किंच पतंजलिऋषिने योगसूत्रोंमें मनके निग्रह करणेके अर्थ अन्यभी उपाय कथन कियेहैं ॥ सोभी संक्षेपसें यहां दिखावेहैं

"विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी॥"

अर्थ० विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न भयीभी मनकी स्थिरतामें कारण होवेहै, तात्पर्य यह ॥ जिह्वाके अग्रभागविषे चित्तकी एकाग्र धारणा करणेसें अल्पकालविषेहि साधक पुरुषकूं दिव्यरसकी उपलब्धि होवेहै औ जिह्वाके मध्यदेशविषे धारणा करणेसें दिव्यस्पर्शकी उपलब्धि होवेहै तथा जिह्वाके मूलदेशविषे धारणा करणेसें दिव्यशब्दकी उपलब्धि होवेहै औ

तालुविषे धारणा करणेसें दिव्यरूपका अनुभव होवेहै तथा नासिकाके अग्रभागविषे धारणा करणेसें दिव्यगंधकी उपलब्धि होवेहै ॥ इस प्रकारसें जिस कालविषे पांच दिव्यविषयोंका साक्षात्कार होवेहै तिसका नाम विषयवती प्रवृत्ति है॰॥ सो इन विषयोंके साक्षात्कार होवेसें तिनमें आसक्त भया मन बाह्यमुखताका परित्याग करके तहांहि स्थिरभावकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ सो यद्यपि यह पतंजलिमहर्षिका कथन सत्यहि है काहेतें तिसकूं सर्वज्ञ औ सत्यवक्ता होनेतें तथापि जबपर्यंत उक्त पांच विषयोंमेंसें साधककूं एककाभी साक्षात्कार नहि होवेहै तबपर्यंत तिसका दृढ विश्वास नहि होवेहै ॥ औ जो एककाभीं साक्षात्कार होवेहै तो यावत्पर्यंत वक्ष्यमाण अणिमादिक ऐश्वर्यसें लेकर कैवल्यमोक्षपर्यंत योगका फल है तिस सर्वमें दृढ विश्वास उत्पन्न होवेहै औ दृढ विश्वासके होनेतेंहि शीघ्र योगकी सिद्धि होवेहै यातें दृढ विश्वासकी उत्पत्तिके अर्थ साधक पुरुषकूं उक्त विषयोंमेंसें एक अथवा दोका अवश्यहि धारणाद्वारा साक्षात्कार करणा योग्य॰ है इति ॥ अथवा "विशोका वा ज्योतिष्मती"

अर्थ॰शोकसें रहित जो ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है सोभी उत्पन्न भयो चित्तकी॰स्थिरताका हेतु होवेहै तात्पर्य यह ॥ हृदयकमलमें॰कल्लोलसें रहित क्षीरसागरकी न्यांई चित्तसत्वकी

भावना करणेसें सूय चंद्रमा अथवा तारा वा मणिकी न्यांई हृदयदेशमें तेजःपुंजकी उपलब्धि होवेहै काहेतें चित्तसत्वकूं तेजोमय होनेतें ॥ यह वार्ता कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै

"नीहारधूमार्कानिलानिलानां
खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥"

अर्थ० जिसकालविषे योगाभ्यास करणेमें नीहार, धूम, सूर्य, अग्नि, वायु, विद्युत्, खद्योत, स्फटिकमणि, चंद्रमा, इत्यादिक रूपोंकी हृदयदेशविषे उपलब्धि होवेहै तो पश्चात् समाधिद्वारा शीघ्रहि ब्रह्मका साक्षात्कार होवेहै इति ॥ तथा योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणविषे उद्दालकमुनिके आख्यानमेंभी कथन कियाहै "तमस्युपरते स्वांते तेजःपुंजं ददर्श सः ।" अर्थ० धारणा करके तमके नष्ट होनेतें पश्चात सो उद्दालकमुनि अपणे हृदयमें तेजका पुंज देखता भया इति ॥ इस प्रकारसें जिस कालविषे योगीकूं हृदयदेशविषे तेजःपुंजका साक्षात्कार होवेहै तो किंचित्‌मात्रभी शोक नहि रहेहै यातें तिसका नाम विशोका ज्योतिष्मतीप्रवृत्ति है इसके साक्षात्कार हुयेभी चित्तकी स्थिरता होवेहै इति ॥

इसीकूं योगीलोक आत्मसाक्षात्कार कहतेहैं ॥ अथवा "स्वप्ननिद्राज्ञानालंबनं वा" अर्थ० वेदांतशास्त्रके श्रवणपूर्वक सर्व जगत्विषे स्वप्नकी न्यांई औ सुषुप्तिकी न्यांई ज्ञानका आलंबन करे अर्थात् इस सर्व जगत्कूं स्वप्नके तुल्य अथवा सर्व तरफसें संसुत शून्यकी न्यांई देखे इति ॥ यह वार्ता योगवार्तिकमेंभी कथन करीहै

"दीर्घस्वप्नमिमं विद्धि दीर्घं वा चित्तविभ्रमम् ।
चराचरं लय इव प्रसुप्तमिह पश्यताम् ॥

अर्थ० इस चराचर सर्व जगत्कूं दीर्घ कालका स्वप्न अथवा चित्तका विभ्रम जाने अथवा प्रलयकालकी न्यांई सर्व तरफसें शून्यवत् प्रसुप्त भया देखे इति ॥ इस प्रकारकी धारणा करणेसेंभी चित्तकी स्थिरता होवेहै इति ॥ अथवा "यथाभिमतध्यानाद्वा" अर्थ० विष्णु महादेवादिक जो ध्येय देवता हैं तिनमेंसें जो अपणा इष्ट देव होवे तिसहीका ध्यान करे तिसकरकेभी मनकी स्थिरता होवेहै इति ॥ तथा "ईश्वरप्रणिधानाद्वा" अर्थ० सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रकृतिका नियंता अव्यक्त जो ईश्वर है तिसका आराधन करणेमेंभी चित्तकी स्थिरता होवेहै ॥ सो ईश्वरका लक्षणभी तहांहि पतंजलिने कथन कियाहै "क्लेशकर्मविपाकाशयैरप-

रामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" अर्थ० अविद्या, अस्मिता[1], राग, द्वेष, अभिनिवेश[2], यह जो पांच प्रकारके क्लेश हैं औ शुभाशुभ जो द्विविध कर्म हैं तथा तिन कर्मोंके जो सुखदुःखरूप फल हैं औ तिन सुखदुःखोंके जो संस्कार है तिन सर्वकरके वर्जित जो सर्वसें उत्कृष्ट पुरुष हैं तिसका नाम ईश्वर है इति, ॥ यद्यपि परमार्थदृष्टिसें सर्व जीवोंका आत्माभी उक्त क्लेशकर्मादिकोंकरके वर्जित है तथापि, जैसे सेनाविषे वर्तमान जय पराजयका. राजामें आरोपण होवेहै तैसेहि, अंतःकरणगत क्लेशकर्मादिकोंका आत्माविषे आरोपण होवेहै औ ईश्वरमें तो शुद्धसत्वमय उपाधि. होनेतें क्लेश कर्मादिकोंका आरोपणभी नहि संभवेहै यातें ईश्वर सर्वसें उत्कृष्ट पुरुष है ॥ औ जो कोई कहे मुक्त पुरुषोंविषेभी क्लेशकर्मादिकोंके आरोपणका अभाव होनेतें सोभी ईश्वर होवेंगे यह वार्ताभी संभवे नहि, काहेतें मुक्त पुरुषोंविषे भूत बंधकोटिका सद्भाव होवेहै औ नित्यमुक्त सर्वज्ञ ईश्वरमें तो भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालविषेभी बंधपणा संभवता नहि यातें. मुक्त पुरुषोंकूंभी ईश्वरता संभवे नहि ॥

१ अंतःकरण औ पुरुषके भिन्न अविवेकसें जो अहंकर्ता, अहंभोक्ता इसप्रकारकी वृत्तिविशेष है तिसका नाम अस्मिता है.
२ मृत्युका भय.

औ जो कथंचित् कोई दूसरा ईश्वर सिद्धभी करोगे तो जगत्की व्यवस्था नहि संभवेगी काहेतें एक कालविषेहि एक ईश्वरने इच्छा करी जो अग्नि उष्ण होवे औ दूसरेने करी अग्नि शीतल होवे तो जो दोनोंमेंसें एककी इच्छा पूर्ण होवे तो दूसरेकूं ईश्वरपणा संभवे नहि औ जो दोनोंकी इच्छा पूर्ण होवे तो उष्णत्व, शीतलत्व, धर्मोंकूं परस्पर विरुद्ध होनेतें अग्निकी स्वरूपसिद्धिहि नहि होवेगी इस प्रकार सर्व जगत्हि व्यवस्थासें रहित भया नाशकूं प्राप्त होवेगा ॥ औ जो दोनोंकी मिलकरके एकहि इच्छा मानोगे तो अन्योन्याश्रयदोषकी प्राप्ति, औ ईश्वरकी स्वतंत्रताका विघात होवेगा औ जब ईश्वरकी स्वतंत्रताका विघात हुया तो ईश्वरकों स्वतंत्रताकी प्रतिपादन करणेहारी जो अनेकहि श्रुतिस्मृतियां हैं तिनकूं व्यर्थापत्ति होवेगी यातें ईश्वर एक, स्वतंत्र, सर्वज्ञ, नित्यमुक्त है यह वार्ता सिद्ध भयी ॥ तथा कृष्णयजुर्वेदकी श्वेताश्वतरउपनिषत्मेंभी कहाहै

"तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीडयम् ॥
न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ॥
सकारणं करणकाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥"

अर्थ० जो देव ईश्वर जो ब्रह्मादिक हैं तिनकाभी महान् ईश्वर है औ देवता जो इन्द्रादिक हैं तिनकाभी परम दैवतं है तथा कश्यप, दक्ष आदिक जो प्रजापति हैं तिनकाभी पति है औ कार्य प्रपंचसें परे जो प्रकृति है तिसतेंभी परे है तिस देवकूं हम ऋषिलोक जानतेहैं" तथा इस जगत्‌विषे तिसका अन्य कोई पति औ प्रेरणा करणेहारा नहिंहै तथा तिसकी कोई प्रत्यक्ष, व्यक्तिभी नहिंहै औ सोई सर्व जगत्‌का कारण है तथा चक्षुआदि करणोंका अधिपति जो जीवात्मा है तिसकाभी अधिपति है इसी कारणसें तिसका कोई अन्य जनक औ अधिपति नहि है इति ॥ सो तिस ईश्वरके आराधन करणेका विधानभी योगसूत्रोंमें कथन कियाहै "तस्य वाचकः प्रणवः" अर्थ० तिस ईश्वरका वाचक अर्थात् नाम प्रणव कहिये ॐकार है औ ईश्वर तिसका वाच्य है ॥ यह वार्ता याज्ञवल्क्यनेंभी कथन करीहै

"अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः ।
तस्योंकारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति ॥"

अर्थ० अदृष्टविग्रह औ मनोमय तथा भावकरके ग्राह्य

जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर है तिसका ॐकार नाम है सो जैसे नामकरके बुलाया हुया पुरुष समीप आवेहै तैसेहि ॐकारके जप करणेसें ईश्वरकी सन्निधि औ प्रसन्नता होवेहै इति सो यह ईश्वर औ प्रणवका वाच्यवाचकभावसंबंध अनादि है किसी करके नवीन नहि किया जावेहै किंतु संकेत करके तिसका प्रकाश होवेहै जैसे पितापुत्रका प्रथम विद्यमान संबंधका पश्चात् लोकोंकरके यह इसका पिता है यह पुत्र है इस प्रकारसें प्रकाश होवेहै ॥ "तज्जपस्तदर्थभावनम्" अर्थ० तिस प्रणवका विधिपूर्वक जो जप औ तिसके अर्थका चिंतन करणा है सो ईश्वरका परम आराधन है तिनमें जपकी विधि तो पूर्वहि निरूपण करि आयेहैं औ ॐकारका अर्थ अनेक प्रकारसें श्रुतिस्मृतियोंविषे निरूपण कियाहै परंतु तिन सर्वमें अथर्ववेदकी मांडूक्यउपनिषत्में जो अर्थ कथन कियाहै सोई सर्व आचार्योंकूं संमत है सो संक्षेपसें यहां दिखावेहैं ॥ अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, इस भेदसें ॐकारकी च्यारि मात्रा हैं तिनमें जाग्रतअवस्था, विश्व, विराट, यह तीनों अकारका अर्थ है औ स्वप्नावस्था, तैजस हिरण्यगर्भ, यह तीनों उकारका अर्थ है तथा सुषुप्तिअवस्था, प्राज्ञ, ईश्वर यह तीनों मकारका अर्थ है औ तुरीयावस्था, साक्षी, ब्रह्म, यह तीनों अर्द्धमात्राका अर्थ है अर्धमात्रकूं

अमात्र ॐकारभी कहेतेहैं ॥ इस प्रकारसें च्यारों मात्रोंका अर्थचिंतन करके पश्चात् अकारका उकारमें औ उकारका मकारविषे तथा मकारका अमात्र ॐकारमें लय चिंतन करे यह॰ ॐकारके अर्थका विधान है औ जो इसका विशेषविधान है सो विचारसागर अथवा सुरेश्वराचार्यकृत पंचीकरणविषे देखलेना ॥ सो यद्यपि योगभाष्यकारने प्रणवका इस प्रकारसें अर्थ नहि कियाहै तथापि उक्तप्रकारसें अभेदचिंतन करणाहि ईश्वरका परम आराधन है काहेतें "द्वितीयाद्वै भयं भवति" इत्यादिक श्रुतियोंविषे भेददर्शी पुरुषकूं भय प्रतिपादन कियाहै ॥ सो यह प्रणवहि सर्व मंत्रोंमें श्रेष्ठ मंत्र है, यह वार्ता पराशरस्मृतिविषेभी कथन करीहै ॥

"सर्वेषां जपसूक्तानामृचां च यजुषां तथा ।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥
तस्याश्चैव तु ॐकारो ब्राह्मणाय उपासतः ॥"

अर्थ॰ यावन्मात्र च्यारि वेदोंविषे जप, सूक्त, ऋचा, यजुः एकाक्षरादिक साम हैं तिन सर्वविषे गायत्रीमंत्र उत्तम है पुना गायत्रीसेंभी ब्राह्मणकरके उपासित किया हुया

१. यहां ब्राह्मणशब्द वैदिकसंस्कारयुक्त क्षत्रिय औ वैश्यकाभी उपलक्षणजानना औ शूद्रकोतो प्रणववर्जित् शिवपंचाक्षर अथवा नारायणाष्टाक्षर मंत्रकाहि जप करणा चाहिये क्युंकि शूद्रका प्रणवजपमें अधिकार नहिहै ॥

ॐकारमंत्र उत्तम है इति ॥ किंच ॐकारहि सर्व वेदोंका सार है, यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्यउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै

> "प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् तेभ्योभितप्तेभ्यस्त्र-
> यीविद्यासंप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ता-
> या एतान्यक्षराणि संप्रास्रवंत भूर्भुवःस्वरिति
> तान्यभितपत्तेभ्योभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रा-
> स्रवत्तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृणान्ये-
> वमोंकारेण सर्वा वाक् संतृणा ॐकार एवेद्ँसर्वम्"

अर्थ० प्रजाका पति जो ब्रह्मा है सो जगत्‌के आदिकालविषे तीनों लोकोंकूं उत्पन्न करके तिनकूं सारदृष्टिसें मंथन करता भया तो तिनके मंथन करणेसें तिनमेंसें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, यह तीन वेद निकसे पुनः तिन तीनों वेदोंकूं मंथन करता भया तिनके मंथन करणेसें भूः, भुवः, स्वः, यह तीन व्याहृतियां निकसी, पुनः तिनकूंभी मंथन करता भया तिनके मंथन करणेसें ॐ यह एक अक्षर निकसा सो जैसे शंकुकरके[1] सर्व वृक्षोंके पत्र ओतप्रोत होतेहैं तैसेहि इस ॐकारकरके सर्व वाणी ओतप्रोत होय रही है औ वाणीविषे सर्व जगत् ओतप्रोत है काहेतें वाणीविना किसी पदार्थकीभी सिद्धि

1 रेखा.

नहि होवैहै यातें ॐकारहि सर्व जगत्रूप है इति ॥ तथा इसप्रकारसें ॐकारका जप औ अर्थचिंतन करणेका फलभी योगसूत्रोंमें हि कथन कियाहै

"ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यंतरायाभावश्च"

अर्थ० उक्तप्रकारसें प्रणवका जप औ अर्थचिंतनकरणेसें प्रत्यक्चेतन जो अंतरात्मा है तिसका साक्षात्कार होवैहै यह वार्ता योगवासिष्ठके उपशमप्रकरणविषेभी कथन करीहै "ॐकारोच्चारितो येन तेनाप्तं परमं पदम्" अर्थ०जिस पुरुषने विधिवत् ॐकारका उच्चारण किया है सोई परमपदकूं प्राप्त होता भया है इति ॥ तथा अथर्ववेदकी प्रश्न उपनिषत्‌मेंभी कहाहै "एतद्वै सत्यकाम परंचापरं च ब्रह्मयदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति" अर्थ०हे सत्यकाम यह ॐकारहि पर औ अपर ब्रह्मरूप है यातें उपासकपुरुष इसहिकरके पर अथवा अपर ब्रह्मकूं प्राप्त होतेहैं तिनमें जो निष्काम होवैहैं सो तो ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा यहांहि मोक्षकूं प्राप्त होतेहैं औ जो सकाम होवैहैं सो ब्रह्मलोकमें जायकर कल्पके अंतविषे ब्रह्माके साथ मोक्षकूं प्राप्त होतेहैं इति ॥ तथा "अंतरायाभावः"[1] कहिये ॐकारके जप औ अर्थचिंतन करणेमें योगा-

---

१ संधिरार्षः

भ्यासविषे जो विघ्न होवेहै तिनकीभी निवृत्ति होवेहै ॥ सो-
तिन विघ्नोंके नामभी योगसूत्रोंमेंहि निरूपण कीयेहैं

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शना
लब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेंतरायाः"

अर्थ॰ व्याध, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व, इसभेदसें चित्तके विक्षिप्तकरणेहारे नवप्रकारके विघ्न हैं ॥ तिनमें वातपित्तादिक धातुवोंकी विषमताकरके जो शरीरविषे ज्वरादिक रोग होवेहै तिसका नाम व्याधिहै ॥ औ चित्तकी जो अकर्मण्यता कहिये योगाभ्यासरूप कर्मविषे अप्रवृत्ति है तिसका नाम स्त्यान है ॥ तथा योगाभ्यास करणा योग्यहै अथवा नहि इसप्रकारकी उभयकोटी आलंबन करणेहारी जो चित्तकी वृत्ति है तिसका नाम संशय है ॥ औ समाधिके साधनोंविषे जो उदासीनता है तिसकूं प्रमाद कहतेहैं ॥ तथा योगाभ्यासविषे प्रवृत्तिके अभावका हेतु ज्ये शरीर औ मनका गुरुत्व है सो आलस्य कहिये है ॥ औ चित्तविषे ज्ये स्त्रीआदिक विषयोंकी अभिलाषाहै तिसका नाम अविरति है तथा योगके साधनविषे असाधनबुद्धि औ असाधनविषे जो साधनबुद्धि है तिसका नाम भ्रांतिदर्शन है ॥ औ व्यवहारप्रसंगिआदिक किसी निमित्तकरके जो योगभूमिकाकी अ-

प्राप्ति है तिसका नाम अलब्धभूमिकत्व है ॥ तथा योगभूमिकाकी प्राप्ति भयेतें अनंतर जो तिसविषे चित्तकी अप्रतिष्ठा है सो अनवस्थितत्व कहियेहै ॥ इसप्रकारसें यह सर्वहि चित्तकी एकाग्रताविषे विरोधि होनेतें विघ्नरूप हैं इति ॥ सो पूर्वोक्तप्रकारसें ॐकारके जपद्वारा ईश्वरके आराधन करणेसें तिन सबकी निवृत्ति होवेहै तो पश्चात् निराकुल भया चित्त धारणादेशविषे स्थिरभावकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ यातें योगी पुरुषकूं सर्वविघ्नोंके नाशपूर्वक समाधिकी सिद्धिविषे हेतुभूत जो ईश्वरका आराधन है सो अवश्यहि करणा योग्य है काहेतें ईश्वरके अनुग्रहकरकेहि यह पुरुष सिद्धिकूं प्राप्त होवेहै यह वार्ता श्रुतिमेंभी कथन करीहै "एष उह्येव साधु कर्म कारयति तं तमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीशते" अर्थ० यह ईश्वरहि जिस पुरुषकूं ऊर्ध्वलोकोंविषे लेजानेकी इच्छा करताहै तिससें शुभकर्माचरण करावताहै इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहाहै "परात्तु तच्छ्रुतेः" अर्थ० यह जीव ईश्वरके अधीन भयाहि शुभाशुभकर्मविषे प्रवृत्त होवेहै काहेतें इसयातांविषे उक्त श्रुतिके प्रमाण होनेतें इति ॥ तथा गीताके अष्टादशाध्यायविषे भगवान्नेंभी कहाहै

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्"

अर्थ० हे अर्जुन तुं तिस एक ईश्वरकीहि शरणकूं प्राप्त होहु काहेतें तिस ईश्वरके अनुग्रहकरकेहि तुं परम शांति औ अचल स्थानकूं प्राप्त होवेगा इति ॥ शंका ॥ तुमने जो कहा साधक पुरुषकूं ईश्वरका आराधन करणा चाहिये सो वार्ता असंभव है काहेतें अनेक श्रुति स्मृतियोंविषे जीव औ ईश्वरकूं एकरूपता कथन करीहै ॥ समाधान ॥ यद्यपि परमार्थदृष्टिसें जीव ईश्वरसें अभिन्नहि है तथापि जीवकूं ईश्वरका अवश्यमेव आराधन करणा योग्य है, यह वार्ता षट्पदीविषे शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

"सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥"

अर्थ०हे सर्व जगत्के नाथ ईश्वर, यद्यपि तुमारे औ हमारेमें जो भेद था सो तो ज्ञानकी प्राप्ति होनेतें नाशकूं प्राप्त होगयाहै तथापि मैं तुमारा हुं तुम हमारे नहि–काहेतें जैसे यद्यपि जलरूपसें समुद्र औ तरंग एकहि होतेंहै तथापि तिनमें तरंगहि समुद्रका होवेहै समुद्र तरंगका कहींभी नहि होवेहै इति याते ईश्वरका आराधन ज्ञानवानकाभी करणा उचित है ॥ १८ ॥ इस प्रकारसें धारणाका लक्षण औ तिसका उपयोगी ईश्वरका आराधन निरूपण करके अब योगका सप्तम अंग जो ध्यान है तिसका लक्षण वर्णन करेंहैं ॥

[1]॥ इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

वृत्त्येकतानत्वमखंडितं तु य-
त्तत्रान्यसंकल्पविकल्पजालकैः ॥
तैलस्य धारेव समाधिगोपुरं
ध्यानं तदेवाहुरदीनचेतसः ॥ १८ ॥

वृत्त्येकतानत्वमिति ॥ तत्र कहिये तिस पूर्वोक्त धारणादेशविषेहि नानाप्रकारके अन्य संकल्पविकल्पोंकरके अखंडित जो चित्तवृत्तिका तैलधारकी न्यांई 'एकतानत्व' कहिये सदृशप्रवाह है तिसकूं उदारचित्तवाले योगीजन समाधिका द्वारभूत ध्यान कहतेहैं ॥ इति तथा योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कहाहै "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" अर्थ० तिस धारणादेशमेंहि अन्यवृत्तियोंकरके अनिश्चित जो चित्तवृत्तिका सदृश प्रवाह है तिसका नाम ध्यान है इति ॥ सो ध्यान सगुण औ निर्गुण इस भेदसें दो प्रकारका है तिनमें पुना विष्णुध्यान, अग्निध्यान, सूर्यध्यान, भ्रूध्यान, पुरुषध्यान, इस भेदसें सगुणध्यान पांच प्रकारका है सो तिन सर्वके लक्षण

१ द्वारं गोपुरं द्वारीति मेदिनी.

याज्ञवल्क्यसंहितामें कथन कियेहैं सो यहाँ प्रसंगसें निरूपण करेहैं ॥ तिनमें

"हृत्पद्मेऽष्टदलोपेते कन्दमध्यात्समुत्थिते ।
द्वादशांगुलनालेऽस्मिंश्चतुरंगुलवन्मुखे ॥
प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ।
वासुदेवं जगद्योनिं नारायणमजं विभुम् ॥
चतुर्भुजमुदारांगं शंखचक्रगदाधरम् ।
किरीटकेयूरधरं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥
श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।
नीलोत्पलदलाभासं सुप्रसन्नं शुचिस्मितम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ।
पद्मस्यपदद्वंद्वं परमात्मानमव्ययम् ॥
प्रभाभिर्भासयद्रूपं परितः पुरुषोत्तमम् ।
मनसाऽऽलोक्य देवेशं सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥
सोऽहमात्मेति विज्ञानं सगुणं ध्यानमुच्यते ॥"

अर्थ कंदस्थानमें द्वादश अंगुलपरिमाण ऊर्ध्वकूं है नाल जिसकी औ च्यारि अंगुल मध्यमें विस्तारवान तथा रेचकप्राणायामके अभ्यासकरिके विकासकूं प्राप्त भया जो अष्ट दलकमलके तुल्य हृदयकमल है तिसविषे सर्व जगत्के कारणभूत अजन्मा औ व्यापक चतुर्भुजवान् उदार अंग तथा

शंख चक्र गदा पद्म हस्तोंविषे धारण किये हुये किरीटके-यूरादिक भूषणोंकरके शोभायमान औ नील पंकजके समान श्यामवर्ण तथा प्रसन्न औ मंदमंदहास्यकरके युक्त है मुख जिनका तथा शुद्धस्फटिक मणियोंके समान है प्रभा जिनकी औ पीत वस्त्रोंकरके युक्त तथा कमलके समान कोमल हैं चरण जिनके औ अपणे तेजकी किरणोंकरके सर्व तरफसें प्रकाशमान है स्वरूप जिनका ऐसे जो सर्वभूतोंके हृदयमें स्थित लक्ष्मीके पति पुरुषोत्तम विष्णु भगवान् हैं सो मैंहि हुं इस प्रकारसें जो एकाग्रचित्त होयकरके अभेद चिंतन करणा है सो सगुणध्यान कहियेहै इसहिका नाम विष्णुध्यान है इति इसीप्रकारं श्लोकोंको पूर्वोक्तपंचमहाभूतधारणा प्रसंगविषे कथन विधिसें महादेवजीका ध्यान करणा चाहिये ॥ तथा

"हृत्सरोरुहमध्येस्मिन् प्रकृत्यात्मककर्णिके ।
अष्टैश्वर्यदलोपेते विकारमयकेसरे ॥
ज्ञाननाले बृहत्कन्दे प्राणायामप्रबोधिते ॥
विस्फार्चिषं महावह्निं ज्वलन्तं विश्वतोमुखम् ॥
वैश्वानरं जगद्योनिं शिखानां बीजमीश्वरम् ॥
तापयंतं स्वकं देहमापादतलमस्तकम् ।
निर्वातदीपवत्तस्मिन् दीपितं हव्यवाहनम् ॥
दृष्ट्वा तस्य शिखा मध्ये परमात्मानमक्षरम् ।

बोलतोयदमध्यस्थविद्युल्लेखेव राजितम् ॥
नीवारशूकवद्रूपं पीताभं सर्वकारणम् ।
ज्ञात्वा वैश्वानरं देवं सोहमात्मेति या मतिः ॥
स गुणेपूत्तमं ह्येतत् ध्यानं योगविदो विदुरिति ॥"

अर्थ० प्रकृतिरूप है कर्णिका जिसकी औ अणिमादिक अष्टसिद्धिरूप हैं अष्टपत्र जिसके तथा षोडशविकाररूप हैं केसर जिसमें औ ज्ञानरूप है नाल जिसकी तथा महत्तत्त्वरूप है कंद जिसका औ रेचकप्राणायामके अभ्यासकरके विकसित है मुख जिसका ऐसा जो हृदयकमलहै तिसविषे अनेक किरणोंकरके युक्त औ च्यारितर्फसें प्रकाशमान तथा सर्वजगत्का कारणभूत औ शिखायोंका बीजभूत तथा पादतलसें लेकर मस्तकपर्यंत जो अपणे शरीरकूं तपायमानकर रहाहै औ निर्वातदेशविषे स्थित दीपककी न्यांई अचलशिखावान् ऐसा जो वैश्वानरनामा महाअग्नि है तिसकी शिखाके मध्यमें जैसे नीलमेघके बीच विद्युत्को रेखा होवेहै तैसेहि अक्षरपरमात्माकूं देखकरके नीवारके अग्रभागके समान पीतवर्ण औ सर्वजगत्का कारणभूत जो अग्निहै तिसका सो मैंहि हुं इसप्रकारसें हृदयदेशमें जो अभेदचिंतन करणा है• तिसकूं

१ धान्यविशेष.

सर्व . सगुणध्यानोंमें उत्तम ध्यान योगीलोक जानतेहैं. यह अंग्निध्यान है इति ॥ तथा

"अथवा मंडलं पश्येदादित्यस्य महामनाः ।
आत्मानं सर्वजगतः पुरुषं हेमरूपिणम् ॥
हिरण्यश्मश्रुकेशं च हिरण्मयनखं हरिम् ।
पद्मासनं चतुर्वक्त्रं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥
ब्रह्मासनस्थितं सौम्यं प्रबुद्धकमलासनम् ।
भासयन्तं जगत्सर्वं दृष्ट्वा लोकैकसाक्षिणम् ।
• सोहमात्मेति या बुद्धिः सा च ध्यानेषु शस्यते ॥"

अर्थ॰अथवा पूर्वोक्त लक्षण हृदयाकाशविषे सुवर्णमय श्मश्रु केश[1] औ नखोंकरके शोभायमान तथा पद्मासनमें स्थित औ चतुर्मुख तथा सर्वजगत्की उत्पत्ति, स्थिति औ नाशका कारणभूत तथा विकसित भये कमलविषे ब्रह्मासन लगायकर विराजमान औ अतीव सौंदर्यकरके युक्त. तथा सर्वजगत्के प्रकाशकरणेद्वारा औ सर्वलोकका साक्षीभूत ऐसा जो सर्व जगतका आत्मारूप सुवर्णमयपुरुष सूर्य भगवान् है तिनका मंडलाकारसें सो मैंहि हूं इसप्रकारसें जो अभेदचिंतन करणा है तिसका नाम सूर्यध्यान है यहि सर्व ध्यानोंमें प्रशस्त ध्यान है इति ॥ तथा

---

१. दाढीमूछके बाल.

"भ्रुवोर्मध्येऽन्तरात्मानं भारूपं सर्वकारणम् ।
स्थाणुवन्मूर्धपर्यंतं देहमध्यात्समुत्थितम् ॥
जगत्कारणमव्यक्तं ज्वलन्तममितौजसम् ।
मनसालोक्य सोहंस्यामित्येतद्ध्यानमुत्तमम् ॥"

अर्थ० भ्रुवोंके मध्यदेशविषे देहके मध्यभागसें लेकर मस्तकपर्यंत स्थाणुकी न्याई स्थित औ सर्वतरफसें प्रकाशमान तथा सर्व जगत्का कारणभूत औ अमित प्रतापवान् ऐसा जो अंतरात्मा है तिसका तेजोबिंबस्वरूपसें एकाग्र मनकरके सो मैंहि हुं इसप्रकारसें जो अभेद चिंतन करणा है तिसका नाम भ्रूध्यान है यहि सर्व ध्यानोंमेंसें उत्तम ध्यान है इति ॥ तथा

"उन्निद्रहृदयांभोजे सोममंडलमध्यमे ।
स्वात्मानं मंडलाकारं भोक्तृरूपिणमक्षरम् ॥
सुधारसं विमुंचद्भिश्शशिरश्मिभिरावृतम् ।
सहस्रच्छदसंयुक्तात् शिरःपद्मादधोमुखात् ॥
निर्गतामृतधाराभिः सहस्राभिः समंततः ।
प्लावितं पुरुषं तत्र चिंतयेत्तु समाहितः ॥
तेनामृतरसेनैव सांगोपांगकलेवरम् ।
अहमेव परंब्रह्म सच्चिदानंदलक्षणम् ॥"

"एवं ध्यानामृतं कुर्वन् षण्मासान्मृत्युजिद्भवेत् ।
वत्सरान्मुक्त एव स्याज्जीवन्नपि न संशयः ॥"

अर्थ० पूर्वोक्त लक्षण विकसित भये हृदयकमलमें चंद्रमंडलके मध्यदेशविषे सहस्रदलोंकरके युक्त औ अधोमुख जो दशम द्वारमें पद्म है तिसतें निकसकर नीचे पतित भयी जो अनेकहि अमृतकी धारा तिनकरके प्लावित औ सुधारसकूं सिंचन करतीहुयी चंद्रमाकी किरणोंकरके सर्वतरफसें आवृत तथा अमृतके सिंचनसें सांगोपांग पुष्ट तेजोमय शरीरकरके युक्त ऐसा जो भोक्तारूप पुरुष है तिसका मंडलाकारसें सो मैंहि सच्चिदानंद परब्रह्मरूप हुं इस प्रकारसें जो अभेदचिंतन करणा है तिसका नाम पुरुषध्यान है ॥ इस ध्यानके करणेसें साधक पुरुष षट् मासके अनंतर मृत्युकूं जय करलेवेहै औ जो वर्षपर्यंत करे तो जीवताहि मुक्तस्वरूप होवेहै इस वार्तामें संशय नहि इति ॥ यह पांच प्रकारके सगुण ध्यानके लक्षण हैं ॥ तथा निर्गुण ध्यान तो एकहि प्रकारका है तिसका लक्षणभी तहांहि कथन कियाहै ॥

"एकं ज्योतिर्मयं शुद्धं सर्वगं व्योमवद्दृढम् ।
अनंतमघटं नित्यमादिमध्यांतवर्जितम् ॥
स्थूलं सूक्ष्ममनाकाशमस्पर्शमचाक्षुषम् ।
न रसं न च गंधाख्यमप्रमेयमनामयम् ॥

आनंदमजरं नित्यं सदसत् सर्वकारणम् ।
सर्वाधारं जगद्रूपममूर्तमजमव्ययम् ॥
अदृश्यं दृश्यमंतस्थं बहिःस्थं सर्वतोमुखम् ।
सर्वदृक् सर्वतः पादं सर्वस्पृक् सर्वतः करम् ॥
ब्रह्मब्रह्ममयोहं स्यामिति यद्वेदनं भवेत् ।
तदेतन्निर्गुणं ध्यानं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥"

अर्थ० एक, ज्योतिर्मय, शुद्ध, आकाशकी न्यांई सर्वगत, दृढ, अनंत, अचल, नित्य, आदिमध्यअंतकरके वर्जित, स्थूल, सूक्ष्म, अनाकाश, अप्रवर्ण, अरूप, अरस, अगंध, अप्रमेय, अनामय, आनंदस्वरूप, अजर, नित्य, सत्असत्स्वरूप, सर्व जगत्का कारण, सर्वका अधिष्ठान, सर्वजगत्रूप, अमूर्त, अजन्मा, अविनाशी, अज्ञानी जनोंकरके अदृश्य, ज्ञानी जनोंकरके दृश्य, सर्वके अंतर औ बाहिर स्थित, सर्वतरफसें मुखवाला, सर्वतरफसें नेत्रवाला, सर्वतरफसें पादवाला, सर्वतरफसें त्वचावाला, सर्वतरफसें हस्तवाला, इन सर्वविशेषणोंकरके उपलक्षित जो सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्म है तिसका मैं ब्रह्मस्वरूपहि हुं, इस प्रकारसें जो एकाग्रचित्त होयकरके चिंतन करणा है तिसकूं प्रकृतिसेंभी महत् जो ब्रह्म है तिसके जाननेहारे योगेश्वर लोक निर्गुणध्यान कहतेहैं इति ॥ तथा योगके ग्रंथोंमें अन्यभी अनेक प्रकारके ध्यान

कथन कियेहैं परंतु तिन सर्वमें यह उक्त पद् ध्यान् उत्तम है यह वार्ताभी तहांहि याज्ञवल्क्यने कथन करीहै

"अन्यान्यपि बहून्याहुर्ध्यानानि मुनिपुंगवाः ।
मुख्यान्येतानि चैतेभ्यो जघन्यानीतराणि तु ॥"

अर्थ० उक्त ध्यानोंसें अन्यभी अनेक प्रकारके ध्यान मुनिलोकोनें कथन कियेहैं परंतु तिन सर्वमें यह पद् ध्यानहि मुख्य हैं दूसरे सर्वहि इनसें नीचे हैं इति ॥ सो इस ध्यानकरकेहि सर्व पापोंका विनाश होवेहै, यह वार्ता अथर्ववेदकी ध्यानबिंदुउपनिषन्मेंभी कथन करीहै

"यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं योजनान् बहून् ।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कथंचन ॥"

अर्थ० जो पर्वतके समान ऊंचे औ अनेक योजनपर्यंत विस्तृतभी पाप होयँ तो ध्यान करणेनें तिन सर्वका भेदन होवेहै अन्य उपायकरके नहि इति ॥ सर्व पापोंके क्षय होनेनें अनंतर चित्तकी शुद्धि होवेहै अर्थात् मलविक्षेपका हेतु जो रजो औ तमोगुण है तिनका तिरोभाव होवेहै, यह वार्ता विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

"यथा सुवर्णं पुटपाकशोधितं
त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति ।

. तथा मनः सत्वरजस्तमोमलं
ध्यानेन संत्यज्य समेति तत्त्वम् ॥"

अर्थ० जिस प्रकार क्षारादिक पाक करके शुद्ध किया हुया सुवर्ण मलका परित्याग करके अपणे उज्ज्वलत्व गुणकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि ध्यानकरके शुद्ध भया मन सत्वगुणके अभिभव करणेहारी जो रजोतमोगुणरूप मल है तिसका परित्याग करके तत्त्व जो अपणा स्वरूप शुद्ध सत्वगुण है तिसकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ किं च ध्यानकरकेहि आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होवेहै, यह वार्ता ध्यानबिंदु उपनिषत्में भी ,कथन करीहै

"स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥"

अर्थ० शरीरकरके उपलक्षित अपणे मनकूं नीचेकी लकडी औ प्रणवकूं ऊपरकी लकडी करके सो जैसे दो लकडीके मंथन करणेतें अग्निकी प्रकटता होवेहै तैसेहि ध्यानरूप मंथनेके अभ्याससें परमात्मा देवका साक्षात्कार करणा योग्य है इति ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषद्में भी कहाहै

"ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः"

अर्थ० ध्यान करणेहारा पुरुषहि चित्तकी शुद्धिके अनंतर तिस निष्कल परमात्माका साक्षात्कार करेहै इति ॥ तथा

ध्यानहि बंध औ मोक्षका हेतु है, यह वार्ता याज्ञवल्क्यनेभी कथन करीहै "ध्यानमेव हि जंतूनां कारणं बंधमोक्षयोः"

अर्थ० सर्व जंतुवोकूं ध्यानहि बंध औ मोक्षका कारण होवेहै अर्थात् उपेक्षित किया हुया बंधका कारण होवेहै औ सत्कारपूर्वक सेवन किया हुया मोक्षका कारण होवेहै इति ॥ यातें यह ध्यान सर्व जंतुवोंकूंहि करणा योग्यहैं यह वार्ता सामवेदकी छांदोग्य उपनिषत्में नारदजीकेप्रति सनत्कुमारजीनेभी कथन करीहै "ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवांतरिक्षं ध्यायतीवं द्यौर्ध्यायंतीवापो ध्यायंतीवं पर्वता ध्यायंतीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महतां प्राप्नुवंति ध्यानापादांशा इहेव ते भवंत्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादांशा इहैव ते भवंति ध्यानमुपासस्वेति"

अर्थ० पृथिवी ध्यान करतेकी न्यांई है औ अंतरिक्षभी ध्यान करतेकी न्यांई है तथा आकाशभी ध्यान करतेकी न्यांई है औ जलभी ध्यान करतेकी न्यांई हैं तथा पर्वतभी ध्यान करतेकी न्यांई हैं औ देवताभी ध्यान करतेकी न्यांई हैं तथा शमदमादिकें युक्त जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं सोभी ध्यान करतेकी न्यांई हैं यातें इस लोकविषे जो जो पुरुष द्रव्य विद्या आदिकोंकरके महत्ताकूं प्राप्त होतेहैं सो सर्वध्यानके फलकी एक

अंश करकेहि होतेहैं औ जो क्षुद्र तथा कलह करणेहारे औ पराये दोषोंकूं परोक्ष कथन करणेहारे तथा सन्मुख निंदा करणेहारे पुरुष हैं सो सर्वहि ध्यानके अभाव करकेहि होते हैं औ जो इस लोकविषे प्रभुतावान् हैं सो सर्वहि ध्यानके फलकी एक अंशकरकेहि होतेहैं यातें हे नारद तुं ध्यानकी उपासना कर इति ॥ १९ ॥ इस प्रकारसें ध्यानका लक्षण निरूपण करके अब योगका अष्टम अंग जो समाधि है तिसका लक्षण वर्णन करेहैं ॥

॥ इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

ध्येयस्वरूपोपगतं यदा मनो
विस्मृत्य चात्मानमथावतिष्ठते ॥
संकल्पपूगापगतं तमन्तिमं
योगस्य सन्तोऽवयवं प्रचक्षते ॥२०॥

ध्येयेति ॥ जिस कालविषे ध्येय वस्तुके स्वरूपकूं प्राप्त भया मन अपणे मननत्वस्वरूपका परित्याग करके औ सर्व प्रकारके संकल्पविकल्पोंसें रहित होयकर केवल ध्येय वस्तुके स्वरूपसेंहि स्थित होवेहै तिसकूं महात्मा योगीलोक, योगका अष्टम अंगरूप समाधि कथन करतेहैं यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलि-

नेभी कथन करीहै "तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव स- माधिः" अर्थ० तिसहि ध्येयालंबनप्रत्ययकी अपणें ध्येयालं- बनस्वरूपका परित्याग करके ध्येय वस्तुके स्वरूपसेंहि जो स्थिति है तिसका नाम समाधि है इति ॥ तथा अथर्ववे- दकी अमृतबिंदु उपनिषत्‌मेंभी कहाहै "यं लब्ध्वाप्यवमन्येन समाधिः परिकीर्तितः" अर्थ० जिस कालविषे ध्येय पदार्थके स्वरूपकूं प्राप्त भया मन आपणा अवमान करेहै अर्थात् अपणे स्वरूपका परित्याग करके ध्येय पदार्थके आकारसेंहि स्थिति होवेहै सो समाधि कहिहै इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यसंहितामेंभी कहाहै

"सरित्पतौ निविष्टांबु यथाऽभिन्नं लयंत्वियात् ।
तथा भिन्नं मनस्तत्र समाधिं समवाप्नुयात्"

अर्थ० जैसे समुद्रविषे प्रवेशकूं प्राप्त भया जलका बिंदु स- मुद्रके साथ अभिन्न हुवा स्थित होवेहै तैसेहि जिस कालविषे ध्येय वस्तुमें प्रवेशकूं प्राप्त भया मन ध्येय वस्तुसें अभिन्न होयकर स्थित होवेहै तो समसमाधिकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकाविषेभी कहाहै

"सलिले सैंधवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥"

अर्थ० जैसे जलविषे स्थित भया लवण जलके संबंधसें

अपणे स्वरूपका परित्याग करके जलरूपहि होय जावैहै तैसेहि आत्माविषे स्थित भया मन जिसकालविषे अपणे मनःतत्वस्वरूपका परित्याग करके आत्माके साथ एकताकूं प्राप्त होवैहै तिसकूं समाधि कहतेहैं इति ॥ २० ॥ इस प्रकारसें समाधिका लक्षण निरूपण करके अब संयमका लक्षण औ फल कथन करेंहैं ॥

(इन्द्रवंशा वृत्तम्)

एतत्त्रयं संयममाहुरुत्तमा ।
योगस्य मुख्यं करणं सुदुर्गमम् ॥
सिद्ध्याऽस्य सिद्ध्योघमिहाश्रुतेंऽजसा ।
योगंविशत्यप्यचिरं महाशयः ॥ २१ ॥

एतत्त्रयमिति ॥ पूर्व कथन किये जो धारणा ध्यान समाधि तिन तीनोंकूं योगशास्त्रके जाननेहारे उत्तम पुरुष संयम कहतेहैं तात्पर्य यह ॥ जो यह तीनों न्यारे न्यारे विषयमें किये जावें तो इनका नाम धारणा ध्यान समाधि होवैहै औ जो क्रमसें तीनों एकहि विषयमें किये जावें तो तिनका नाम संयम होवैहै यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै "त्रयमेकत्र संयमः" अर्थ० धारणा ध्यान समाधि यह

तीनों एक आलंबनमें किये हुये संयम संज्ञाकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ सो यह संयमहि योगका मुख्य साधन है, यह वार्ताभी तहांहि कथन करीहै "त्रयमंतरंगं पूर्वेभ्यः" अर्थ० धारणा ध्यान समाधिरूप जो संयम है सो पूर्वोक्त यम नियमादिकोंसें संप्रज्ञात समाधिका अंतरंग कहिये मुख्य साधन है इति ॥ सो इस संयमकी प्राप्ति बहुत क्लेशकरके होवेहै काहेतें इसके अभ्यास करणेविषे विघ्नोंकी बहुलता होवेहै ॥ तथा अथर्ववेदकी तेजोबिंदुउपनिषत्मेंभी कहाहै

"दुःसाध्यं च दुराराध्यं दुष्प्रेक्ष्यं च दुराश्रयम् ।
दुर्लक्ष्यं दुस्तरं ध्यानं मुनीनां च मनीषिणाम् ॥"

अर्थ० यह ध्यानोपलक्षित संयम महाबुद्धिवाले मुनिलोकोंकरकेभी क्लेशसें सिद्ध होवेहै औ क्लेशकरकेहि इसका आवर्त्तन होवेहै तथा इसका यथार्थ ज्ञानभी क्लेशकरकेहि होवेहै औ इसका आश्रय जो हृदयादिक देश हैं सोभी दुर्विज्ञेय हैं तथा इसकी लक्ष्यविषे स्थिति होनीभी क्लेशकरकेहि होवेहै तथा इसकी सांगोपांग फलप्राप्तिपर्यंत निर्विघ्न परिसमाप्ति होनींभी बहुत कठिन है इति ॥ तथा योगशिखाउपनिषतमेंभी कहाहै

"जन्मान्तरसहस्रेषु यदा नाशाति किल्बिषम् ।
तदा पश्यन्ति योगेन संसारच्छेदनं परम् ॥"

अर्थ० अनेक जन्मांतरोंविषे अभ्यास करतेहुये जिस कालमें किंचित्भी पाप नहि रहेहै तोभी यह साधक पुरुष संयमरूप योगकी प्राप्तिद्वारा जन्ममरणरूप संसारके छेदन करणेहारे आत्मतत्त्वका निर्विकल्पसमाधिविषे साक्षात्कार करेहै इति ॥ सो जिस कालविषे जिस संयमकी सर्व विघ्नोंकरके रहित सिद्धि होवेहै तो पश्चात् योगीपुरुष शीघ्रहि अणिमादिक सर्व सिद्धियोंके समूहकूं प्राप्त होवेहै ॥ यह वार्ता भागवतके एकादशे स्कंधविषे उद्धवकेप्रति कृष्णजीनेभी कथन करीहै

"जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः"॥

अर्थ० हे उद्धव, जो पुरुष पूर्वोक्त प्रत्याहारकी विधिसें जितेन्द्रिय औ प्राणायामकी विधिसें जितश्वास है तथा धारणा ध्यान समाधिरूप संयम करके युक्त कहिये एकाग्र चित्त है औ मेरेविषे चित्तकूं धारण करेहै तिस योगीकूं सर्व सिद्धियां आयकर प्राप्त होवेहैं इति ॥ सो जिस जिस विषयमें संयम करणेसें जिस जिस सिद्धिकी प्राप्ति होवेहै सो सर्व प्रकार योगशास्त्रके तीसरे पादविषे पतंजलिनें विस्तारमें निरूपण कियाहै सो प्रसंगसें यहां दिखावेहैं ॥ तिनमें "परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्" अर्थ० तीनप्रकारके प-

रिणामोंविषे संयमकरणेसें योगीकूं अतीत औ अनागत प-दार्थोका ज्ञान प्रादुर्भूत होवेहै, तात्पर्य यह यावत् मात्र त्रिगु-णोंके कार्य पदार्थ हैं तिन सर्वके धर्मपरिणाम, लक्षणपरि-णाम, अवस्थापरिणाम, इस भेदसें तीन परिणाम होतेहैं ॥ तिनमें स्थित भये धर्मीविषे पूर्व धर्मके तिरोभाव होनेतें अन्य धर्मका जो प्रादुर्भाव होनाहै तिसका नाम धर्मपरिणाम है सो जैसे मृत्तिकारूप धर्मीविषे पिंडरूप पूर्वधर्मके तिरोभाव होनेतें घटरूप अन्यधर्मका प्रादुर्भाव होवेहै ॥ तथा तिसहि घटके अनागत अध्वके तिरोभाव होनेतें वर्तमान अध्वका जो प्रादु-र्भाव होनाहै तिसका नाम लक्षणपरिणाम है ॥ तिसहि घ-टकी नूतन अवस्थाके तिरोभाव होनेतें जीर्ण अवस्थाका जो प्रादुर्भाव होनाहै तिसका नाम अवस्थापरिणाम है ॥ ऐसे धर्मीका धर्मोसें औ धर्मोका लक्षणोंसें औ लक्षणोंका अव-स्थाकरके परिणाम होवेहै इस प्रकार जितने त्रिगुणोंके कार्य पदार्थ हैं सो सर्वदाहि परिणामकूं प्राप्त होते रहतेहैं ॥ सो इस धर्मीविषे यह धर्म औ यह लक्षण तथा यह अवस्था अनागत अध्वका परित्याग करके औ वर्तमान अध्वके व्यापारकी समाप्ति करके अतीत अध्वकूं प्रवेश करेहै ॥ इस प्रकारसें जिस कालविषे सर्व विक्षेपका परिहार करके योगी पुरुष तिन तीनों परिणामोंविषे पूर्वोक्त धारणा ध्यान समाधिरूप

संयम करेहै तो तिसकूं सर्व अतीत औ अनागत पदार्थोंका साक्षात्कार होवेहै इति ॥ तात्पर्य यह ॥ पांच महाभूतोंके सत्वगुणका कार्य होनेतें मन दर्पणकी न्यांई अत्यंत स्वच्छ पदार्थ है सो जैसे जिस काळविषे दर्पणकी रज आदिक मळकरके स्वच्छता आवृत होवेहै तो तिस काळविषे पदार्थके प्रतिबिंबकूं सम्यक् प्रकारसें ग्रहण नहि करसकेहै तैसेहि रजोतमोजन्य विक्षेपरूप मळकरके आच्छादित भया मन, अतीतानागतादिक ज्ञानविषे समर्थ नहि होवेहै औ जिस काळविषे योगके अंगोंके अनुष्ठान करणेसें रजोतमोकी निवृत्तिद्वारा सर्व विक्षेपोंकी निवृत्ति होवेहै तो अपणे सत्वगुण स्वच्छरूपमें स्थित भया मन संयमद्वारा सर्व अतीतानागतादिके ज्ञानमें समर्थ होवेहै इति ॥ तथा

"शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सं-
करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥"

अर्थ० शब्द, औ अर्थ, तथा प्रत्यय, इन तीनोंका एक दूसरेके साथ अध्यास होनेतें संकर है, तात्पर्य यह, पद औ वाक्यरूप जो शब्द है तथा जाति गुण क्रिया आदिक रूप जो अर्थ है औ विषयाकार बुद्धिकी वृत्तिरूप जो प्रत्यय है सो इन तीनोंका जो एकरूपमें ग्रहण है तिसका नाम अध्यास है सो अध्यास करके तिन तीनोंका परस्पर संकरप-

णा है काहेतें जैसे किसी उत्तम पुरुषने मध्यम पुरुषके प्रति कहा गामानय, अर्थात् तूं गौकूं लेआव तो इस स्थलमें सो मध्यमपुरुष गोत्वजाति अविच्छिन्न जो सास्नादिमत्पिंडरूप अर्थ है औ तिस अर्थका वाचक जो गौ यह शब्द है तथा इस शब्दद्वारा तिस अर्थके ग्रहण करणेहारा जो बुद्धिकी वृत्तिविशेषरूप ज्ञान है तिन तीनोंकूं अभिन्नहि निश्चय करेहै॥ तथा यह अर्थ क्या है यह शब्द क्या है यह ज्ञान क्या है ऐसे पूछा हुया गौ है इस रीतिसें अर्थ शब्द औ ज्ञानकूं अभिन्नहि कथन करेहै इस प्रकार लौकिकव्यवहारसें अर्थ शब्द औ ज्ञानका संकर अर्थात् मिश्रीभाव है॥ सो जिस कालविषे योगी तिन तीनोंके विभागविषे संयम करेहै अर्थात् गौ अर्थ भिन्न है औ शब्द भिन्न है तथा गौ यह ज्ञान भिन्न है इस प्रकारसें न्यारा न्यारा जानकरके तिनमें पूर्वोक्तलक्षण संयम करेहै तो मृग पक्षी सर्पादिक सर्व प्राणियोंके शब्दका तिसकूं ज्ञान होवेहै अर्थात् सर्व प्राणियोंकी भाषा समझ जावेहै इति॥ तथा "संस्कार साक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम्" अर्थ० संस्कारोंके साक्षात्करणेसें पूर्वजन्मोका ज्ञान होवेहै तात्पर्य यह॥ चित्तके वासनारूप जो संस्कार हैं सो दो प्रकारके हैं तिनमें केचित् तो स्मृतिमात्र फलके जनक होवेहैं औ केचित् जाति, आयुष

भोग, रूप फलके जनक होवैहैं तिन द्विविध संस्कारोंमें जिस कालविषे योगी संयम करेहै अर्थात् इस प्रकार मैंने अमुक अर्थ अनुभव कियाथा इस प्रकारसें अमुक क्रिया करीथी इस प्रकारसें पूर्ववृत्तांतका अनुसंधान करताहुया दृढभावनी- के वशतें सर्व अतीत वृत्तांतका स्मरण करके क्रमसें पूर्व जन्मोंके वृत्तांतकाभी साक्षात्कार करेहै इति ॥ तथा "प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्" अर्थ० पराये प्रत्ययके संयम करणेसें परपुरुषके चित्तका ज्ञान होवेहै तात्पर्य यह ॥ किसी मुखप्रसन्नता आ- दिक लिंगसें पराये चित्तकी वृत्तिकूं ग्रहण करके योगी जिस कालविषे तिसमें संयम करेहै तो पराये चित्तमें रहनेहारी सर्व वार्ताकूं जान लेवेहै इति ॥ तथा "कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यश- क्तिस्तंभेचक्षुः प्रकाशासंयोगेन्तर्द्धानम्" अर्थ० शरीरके रू- पविषे संयम करणेसें रूपकी चक्षुकरके ग्राह्यत्व जो शक्ति है. तिसका स्तंभन होवैहै पश्चात् लोकोंके नेत्रोंकरके शरीरके रूपका अग्रहण होनेतें योगी अंतर्द्धान होवैहै अर्थात् सो स- र्वकूं देखेहै औ तिसकूं तिसकी इच्छाके विना कोईभी नहि देखसकेहै इति ॥ यहि न्याय योगीके शब्द स्पर्शादिकोंके अंतर्द्धानमेंभी जानलेना ॥ तथा " सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत् संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा"

अर्थ० शरीरका प्रारब्धकर्म सोपक्रम, निरुपक्रम, इस

भेदसें द्विप्रकारका है तिनमें जो शीघ्रहि फल देनेमें सन्मुख होवेहै सो सोपक्रम कहियेहै जैसे 'आर्द्र वस्त्र धूपमें प्रसारण किया हुया शीघ्रहि शुष्क होवेहै ॥ औ जो चिरकालसें फलका जनक होवेहै सो निरुपक्रम कहियेहै जैसे सोई आर्द्रवस्त्र संकुचित भया छायाविषे चिरकालसें शुष्क होवे है ॥ तिस दोप्रकारके कर्मोंविषे जिसकालमें योगी कौनसा मेरा कर्म शीघ्र फलदायक है औ कौनसा विलंबसें फलदायक है इसप्रकारसें संयम करे है तो दृढभावनाके वशतें तिसकूं अपणे मृत्युकालका ज्ञान होवेहै अर्थात् अमुकदेश औ अमुककाल तथा अमुकनिमित्तसें मेरा शरीर पतित होवेगा यह सर्व वार्ता जानलेवेहै ॥ अथवा अरिष्टोंसेंभी योगीकूं अपणे मृत्युकालका ज्ञान होवेहै सो अरिष्ट आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक इसभेदसें तीनप्रकारके हैं। तिनमें कानके बंदकरणेसें शब्दका नहि श्रवण होना औ पराये नेत्रकी पुतलीविषे अपणे मस्तकका नहि देखना तथा नासाका अग्रभाग औ जिह्वाके अग्रभागका नहि देखना तथा अंधकारमें नेत्रोंके भ्रमण करणेमें ज्योतिका नहि देखना इत्यादिक आध्यात्मिक अरिष्ट हैं ॥ औ अचानकहि यमराजके दूतोंकूं देखना औ अपणे मरेहुये बांधवोंकूं देखना इत्यादिक आधिभौतिक अरिष्ट हैं ॥ तथा अकस्मात सिद्धोंका

औ स्वर्गका देखना तथा सूर्यमंडलमें छिद्र देखना औ अरुंधतिताराकं नहि देखना इत्यादिक आधिदैविक अरिष्ट हैं ॥ इन अरिष्टोंसेंभी योगीकूं अपणे मृत्युकालका ज्ञान होवेहै ॥ यद्यपि अयोगी पुरुषोंकूंभी उक्त अरिष्टोंसें मृत्युकालका ज्ञान होवे है तथापि सो ज्ञान तिनविषे कदाचित् व्यभिचारीभी होवे है औ योगीविषे तो सर्वदा अव्यभिचारीहि होवेहै इति, तथा "मैत्र्यादिषु बलानि" अर्थ० मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, यह च्यारिप्रकारकी भावना हैं तिनमें अपणे समान ऐश्वर्यवान् पुरुषके साथ जो मित्रता करणी है तिसका नाम मैत्रि है औ दुःखी जनोंपर जो कृपा करणी है तिसकूं करुणा कहते हैं ॥ तथा अपणेसें अधिक ऐश्वर्यवान् पुरुषकूं देखकर जो प्रसन्न होना है तिसका नाम मुदिता है ॥ औ दुष्टपुरुषोंके साथ भाषणादिक सर्वव्यवहारका जो वर्जन करणा है तिसका नाम उपेक्षा है ॥ सो इन च्यारिप्रकारकी भावनाविषे जिसकालमें योगी संयम करेहै तो तिनके बलकूं प्राप्त होवे है अर्थात् सर्व समानऐश्वर्यवाले पुरुष तिसके साथ मित्रता करते हैं औ सर्व दुःखीपुरुष तिसपर करुणा करते हैं अर्थात् मन, वाणी शरीरकरके तिसका भला इच्छते हैं ॥ तथा सर्व महान् पुरुष तिसकूं देखकर प्रसन्न होते हैं औ सर्व दुष्ट पुरुष तिसकी उपेक्षा करते हैं इति ॥ तथा "बलेषु

हस्तिवलादीनि" अर्थ० जिसकालविषे योगी हस्ति, सिंह, वायु, गरुड, हनुमानादिकोंके वलविषे संयम करेहैं तो तिसके शरीरविषे तिसतिसका बल मादुर्भूत होवेहै इति ॥ तथा "प्रवृत्त्या लोकन्यासात् सूक्ष्म व्यवहितविप्रकृष्टार्थज्ञानम्" अर्थ० पूर्व धारणा प्रसंगविषे कथनकरी जो ज्योतिष्मती प्रवृत्ति है तिसके प्रकाशकूं जिसजिस परमाणु आदिक सूक्ष्म अथवा पृथिवीके तले पातालादिक व्यवहित अथवा सुमेरु आदिक विप्रकृष्ट पदार्थमें जिस कालविषे योगी प्रक्षेपण करेहै तो संयमसें विनाहि तिसतिस पदार्थका साक्षात्कार होवेहै इति तथा "भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्" अर्थ० जिसकालविषे योगी दृढभावनाकरके सूर्यमंडलविषे संयम करे है तो भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप, सत्य, यह जो सप्तभुवन हैं तथा तिनमें स्थित जो नानाप्रकारकी रचनाविशेषहैं तिन सर्वका योगीकूं साक्षात्कार होवेहै ॥ तात्पर्य यह ॥ धारणादिक अभ्यासकरके स्फटिकमणिकी न्यांई निर्मल भया योगीका मन जिस पदार्थविषे जुडताहै तो तिसहिका स्वरूप होयजावे है तो पश्चात् तिस पदार्थके जो गुण होवेहैं सो सर्वहि योगीके मनमें आयजाते हैं[१] ॥ यह वार्ताभी पतंजलिनेहि कथन करीहै "क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदंजन-

१ पृष्ठ १८१ पंक्तिः ३ विषे.

तासमापत्तिः” अर्थ० जिसकालविषे अभ्यासकी पाटवतासें चित्त स्फटिकमणिकी न्याईं निर्मल होवे है तो जैसे तिसतिस उपाधिके वशतें स्फटिकमणि तिसतिस आकारसें प्रतीत होवेहै तैसेहि निर्मल भया मन ग्राह्य जो आकाशादिक पांच महाभूतहैं औ ग्रहण जो चक्षुआदिक इन्द्रिय हैं तथा गृहीता जो प्रमाता पुरुष है तिनके विषे योजना, कियाहुया तिनमें एकाग्रता औ तिनके साथ एकभावकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा विवेकचूडामणिमें शंकराचार्यनेभी कहाहै

“क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको
ध्यायन्नलित्वं ह्यलिभावमृच्छति ॥
तथैव योगी परमात्मतत्त्वं
ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठताम् ॥”

अर्थ० जिस प्रकार कीट जंतुविशेष सर्व अन्य क्रियाकी आसक्तिका परित्याग करके भ्रमरका ध्यान करताहुया भ्रमरके स्वरूपकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि योगीका मनभी परमात्मतत्त्वका ध्यान करणेसें एकनिष्ठता कहिये ध्यान करके परमात्मस्वरूपकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा पंचदशीमेंभी कहाहै

“मूषासिक्तं यथा ताम्रं तन्निभं जायते तथा ।
रूपादीन्व्याप्नुवच्चित्तं तन्निभं दृश्यते ध्रुवम् ॥”

अर्थ० जिसप्रकार पिघलाहुया ताम्र संचाविषे डालनेसें

तिसके आकारकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि रूपादिक विषयोंकूं ध्यान करताहुया चित्त तिस तिसके आकारसेंहि देखनेमें आवेहै इति ॥ यातें सूर्यादिक पदार्थोंमें संयम करणेसें भुवनज्ञानादिकं सिद्धियोंकी प्राप्ति योगी पुरुषकूं संभवेहै इति ॥ तथा

"चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्" अर्थ० जिस कालविषे योगी चंद्रमंडलविषे संयम करेहै तो यावत् मात्र तारागणोंकी व्यवस्था है तिस सर्वका साक्षात्कार होवेहै अर्थात् इस तारेका यहां स्थान है इस प्रकारकी इसकी रचना है सो सर्वहि जान लेवेहै इति ॥ सूर्यके प्रकाशकरके क्षीण तेज भये तारोंका सूर्यमंडलमें संयम करणेसें साक्षात्कार नहि होवेहै यातें तिनके साक्षात्कार करणेके अर्थ यह चन्द्रमंडलका न्यारा संयम कथन कियाहै इति ॥ तथा "ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्" अर्थ० सर्व ताराचक्रका स्तंभभूत जो उत्तरदिशामें स्थित ध्रुव नामा स्थिर नक्षत्र है तिसविषे संयम करणेसें योगीकूं सर्व तारोंकी गतिका ज्ञान होवेहै अर्थात् यह तारा यह ग्रह अमुकराशीकूं प्राप्त भया है औ यह ग्रह इतने कालमें अमुक राशी तथा अमुक नक्षत्रकूं प्राप्त होवेगा इसप्रकारसें ज्योतिषशास्त्रोक्त सर्व काल ज्ञानकी प्राप्ति योगीकूं होवेहै इति ॥ तथा "नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्" अर्थ० मणिपूरक नामा नाभिचक्रविषे संयम करणेमें कायव्यूहका ज्ञान होवेहै, तात्पर्य यह ॥ शरीरविषे

वात, पित्त, श्लेष्म, यह तीन दोष हैं औ त्वचा, रुधिर, मांस, नाडी, अस्थि, मज्जा, शुक्र, यह सप्त धातु हैं इन-में पूर्व पूर्व शरीरके बाह्य हैं औ उत्तर उत्तर अभ्यंतर हैं सो नाभिचक्रकूं सर्व शरीरका मध्यदेश औ सर्व तरफ प्रसरी हुयी नाडी आदिक धातुवोंका मूलभूत होनेतें तिसमें संयम करनेसें सर्व शरीरकी रचनाका अंतरसें योगीकूं साक्षात्कार होवेहै, जैसे दीपकसें गृहकी सर्व रचनाका साक्षात्कार होवेहै इति ॥ तथा "कंठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः" अर्थ० कंठमें जो गर्ताकार प्रदेशहै तिसका नाम कंठकूप है, तिसके साथ प्राण औ अपानके स्पर्श होनेतेंहि क्षुधापिपासाकी अधिकता होवेहै सो जिस कालविषे योगी तिस कंठकूपविषे संयम करेहै तो क्षुधापिपासाकी निवृत्ति होवेहै इति ॥ यह वार्ता शिवसंहितामेंभी कहीहै

"योगी पद्मासने तिष्ठेत् कंठकूपे यदा स्मरन् ।
जिह्वां कृत्वा तालु मूले क्षुत्पिपासा निवर्तते ॥"

अर्थ० हे पार्वति जिस कालविषे पद्मासनसें स्थित भया योगी अपणी जिह्वाकूं तालुके मूलमें लगायकरके कंठकूपविषे चित्तकूं धारण करेहै तो तिसकी क्षुधापिपासा निवृत्त होय जावेहै इति तथा "कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्" अर्थ० कंठकूपके अ-धोभागविषे हृदयप्रदेशके समीप एक कूर्माकार नाडीहै तिसमें

संयम करणेसें योगीका चित्त औ शरीर स्थिरभावकूं प्राप्त होवैहै अर्थात् कोईभी तिसकूं ध्यानसें चलायमान नहि करसकैहै इति ॥ यह वार्ताभी शिवसंहितामें कथन करीहै

"कंठकूपादधः स्थाने कूर्मनाड्यस्ति शोभना ।
तस्मिन् योगी मनो दत्वा चित्तस्थैर्यं लभेत् भृशम् ॥"

अर्थ॰ कंठकूपसें नीचे एक कूर्माकार सुंदर नाडी है तिस विषे मनकूं धारण करणेसें योगी अत्यंत चित्तकी स्थिरताकूं प्राप्त होवैहै इति तथा "मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्" अर्थ॰ मूर्धस्थान ब्रह्मरंध्रमें सर्व शरीरके तेजका एकीभाव है सो जैसे एक स्थलविषे स्थित भया दीपक सर्व गृहकूं प्रकाशेहै तैसेहि ब्रह्मरंध्रमें स्थित भया तेज सर्व शरीरकूं प्रकाशताहै जितनी शरीरमें उष्णता है सो सर्व तिस तेजके प्रतापसेंहि है जिस कालविषे योगी तिस तेजविषे संयम करेहै तो जितने पृथिवी औ अंतरिक्षविषे विचरणेहारे सिद्धलोक हैं तिन सर्वका दर्शन होवैहै औ तिनके साथ वार्तालापादिक व्यवहारभी होवैहै इति ॥ तथा "प्रातिभाद्वासर्वम्"

अर्थ॰ जैसे सूर्यके उदयकालमें प्रथम पूर्वदिशाविषे प्रकाश होवैहै तैसेहि वक्ष्यमाण विवेकज ज्ञानके उदयकालमें प्रथम योगीके मनविषे सर्व पदार्थोंकूं विषय करणेहारा प्रातिभनाम ज्ञान उत्पन्न होवैहै तिस ज्ञान करके तत् तत् संयममें

विनाहि योगीकूं सर्व व्यवहित विप्रकृष्टादिक अज्ञात पदार्थोंका साक्षात्कार होवेंहै इति ॥ तथा "हृदये चित्तसंवित्" अर्थ० वामस्तनके समीप एक कदलीपुष्पकी न्यांई अधोमुख औ अष्टदलोंकरके युक्त हृदयनामा प्रदेश है, तिसके मध्यदेशमें चित्तका निवासस्थान है, यद्यपि शरीरविषे नखसें लेकर शिखापर्यंत चित्तका निवास है तथापि विशेष करके चित्तका हृदयपद्महि निवासस्थान है," यह वार्ता अथर्ववेदकी योगशिखाउपनिषत्मेंभी कथन करी है

"हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तच्च पद्ममधोमुखम् ।
ऊर्ध्वनालमधो बिन्दु तस्य मध्ये स्थितं मनः ॥"

अर्थ० हृदयस्थानविषे एक अष्टदलोंकरके युक्त पद्म है तिसकी नाल ऊर्ध्व औ पत्र नीचेकूं हैं तिस पद्मके मध्यदेशविषे मनकी स्थिति है इति ॥ तिस चित्तके स्थान हृदयमें संयम करणेसें योगीकूं चित्तका साक्षात्कार होवेंहै अर्थात् स्वचित्तगत यावत्मात्र अनेक जन्मांतरोंकी वासना होवेंहैं तिन सर्वका साक्षात्कार होवेंहै इति ॥ तथा

"सत्वपुरुषयोरत्यंतासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो ।
भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥"

अर्थ० प्रकृतिका कार्य जो बुद्धि है औ तिसका अधिष्ठाता जो पुरुष है सो विचारदृष्टिसें जडत्व, चेतत्व, भोग्यत्व, भो-

कृत्व आदिक विरुद्ध धर्मोंकरके युक्त होनेतें परस्पर अत्यंत भिन्न हैं तिन दोनोंके भिन्न भिन्नका जो अविवेक है सोई सुखदुःखके अनुभवरूप भोगका हेतु है औ तिस भोगका भोक्ता पुरुष है काहेतें बुद्धिकीतो पुरुषके भोगके निमित्तहि प्रवृत्ति होवेहै यातें सो भोग परार्थ कहियेहै औ जिसकाल-विषे स्वार्थ कहिये सर्व अहंकारके परित्याग होनेसें बुद्धिवृत्तिविषे पुरुषकी छाया प्रतिबिंबित होवेहै तिसमें संयम करणेसें योगीकूं बुद्धिसें भिन्न पुरुषविषयक ज्ञान उत्पन्न होवेहै अर्थात् उक्त प्रकारके अपणेकूं आलंबन करणेहारे बुद्धिनिष्ठ ज्ञानकूं पुरुष प्रकाशेहै काहेतें पुरुषकूं स्वयंप्रकाश होनेतें ज्ञानकी विषयता संभवे नहि तथा बृहदारण्यक उपनिषत्‌मेंभी कहाहै "विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" अर्थ० अरे मैत्रेपि, सर्वका ज्ञाता जो आत्मा है तिसकूं किस साधनकरके कौन जाने इति ॥

"ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायंते ॥"

अर्थ० इस उक्त प्रकारसें पुरुषविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति होनेतें योगीकूं व्युत्थानकालमेंभी पूर्वोक्त प्रातिभज्ञानसें सर्व सूक्ष्मादिक पदार्थोंका साक्षात्कार होवेहै औ दिव्य शब्दज्ञान, दिव्य स्पर्शज्ञान, दिव्य रूपज्ञान, दिव्य रसज्ञा-

न, दिव्य गंधज्ञान, यह पांच ज्ञानइन्द्रियोंके पांच दिव्य विषयोंकाभी सक्षात्कार होवेहै इति तथा

"बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसं-
वेदना चित्तस्य परशरीरावेशः ॥"

अर्थ० व्यापकचित्त औ पुरुषकी संकोचद्वारा शरीरविषे स्थितिका हेतु जो पूर्वकृत प्रारब्धकर्म है सो बंधका कारण कहियेहै अर्थात् सोई चित्त औ पुरुषकूं एक शरीरविषे बांधेहै सो योगाभ्यासके बलसें तिस कर्मके शिथिल होनेतें औ हृदयदेशमें चक्षु आदिक इन्द्रियद्वारा जो चित्तका बाह्यविषयोंविषे तथा शरीरके अंतर मनोवहा नाडियोंविषे जो संचार होवेहै तिसके योगबलसें सम्यक् प्रकार जाननेसें योगीके चित्तका पराये शरीरविषे प्रवेश होवेहै चित्तके प्रवेश हुये पश्चात् प्राण औ इन्द्रियोंकाभी प्रवेश होवेहै ॥ जैसे जहां मधुकरराजा जावेहै तहांहि अन्य सर्व मक्षिकाभी जाती हैं ॥ तात्पर्य यह ॥ जिस कालविषे योगी प्राणकलाकरके रहित भये अन्यके शरीरविषे अपणे चित्तकी योजना करेहै तो अभ्यासके बलसें एकाग्र भये चित्तकि तहांहि स्थिति होय जावेहै तो पश्चात् निराश्रय भये प्राणादिकभी मनके पीछे तिस शरीरमें प्रवेश करजातेहैं काहेतें मनकूं एक शरीरविषे बंधन करणेहारा जो कर्म था तिसकि तो अभ्यासके बलसें प्रथमहि शिथिलता होय

जावेहै शिथिल होनेतें पुना सो कर्म मनकूं बंधन करणेमें सुमर्थ नहि होवेहै यातें निर्विघ्नहि योगीका परशरीरमें प्रवेश होवेहै इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणविषे परशरीरमें प्रवेश करणेका अन्यभी प्रकार कथन कियाहै

"मुखाद्बहिर्द्वादशांते रेचकाभ्यासयुक्तितः ।
प्राणे चिरं स्थितिं नीते प्रविशत्यपरां पुरीम् ॥"

अर्थ० पूर्वोक्त रेचक प्राणप्रयामके अभ्यासकी युक्तिकरके, नासिकाके बाह्य द्वादश अंगुलपर्यंत चिरकाल प्राणके कुंभक करणेसें योगी दूसरेके शरीरमें प्रवेश करेहै अर्थात् मन औ प्राणकूं एकस्वरूप होनेतें प्राणके बाह्य स्थित होनेतें मनकीभी बाह्यस्थिति होवेहै तो पश्चात् योगीका परके शरीरविषे प्रवेश होवेहै इति यह हठयोगकि रीतिसे प्रवेश जानना ॥ किंच जीवते हुये पर शरीरमेंभी भूतादिकोंकी न्यांई योगीका प्रवेश होवेहै सो जैसे जीवके शरीरविषे भूत प्रवेश करके तिसकी पुर्यष्टकाकूं अवरोधन करके तिस शरीरसें आपहि सर्व भोगोंका अनुभव करेहै तैसेहि योगीभी करेहै औ जहां योगीके शरीरविषे अन्य योगीका प्रवेश होवेहै तो तहां तिनकूं भोगकी प्राप्ति नहि होवेहै किंतु परस्पर तिनका विवाद होवेहै जैसे जनक सुलभा आदिकोंका हुयाहै इति ॥ तथा "उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रांतिश्च" अर्थ०

शरीरविषे प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, इस भेदसें प्राण पांच प्रकारके हैं ॥ तिनमें हृदयदेशसें लेकर नासिकाके बाहिर द्वादश अंगुलपर्यंत जो गमन करेहै तिसका नाम प्राण है औ नाभिसें लेकर पादके अंगुष्ठपर्यंत जिसकी गति है तिसका नाम अपान है तथा शरीरकी सर्व नाडियोंविषे जो संचार करेहै सो व्यान कहिये है औ नाभिदेशकूं पर्यिवेष्टन करके स्थितभया भुक्त अन्नकूं जो समभाग करेहै तिसका नाम समान है तथा कंठदेशसें लेकर शिखापर्यंत जिसका संचार है तिसका नाम उदान है ॥ तिनमे सर्व प्राणोंका मूलभूत जो उदान है तिसके संयमद्वारा जय करणेसें शरीरकी पृथिवीसें किंचित् ऊर्ध्व स्थिति होवेहै तो महानदी आदिक जलविषे औ गहरे कीचडमेंभी योगीका शरीर डूबता नहि तथा तीक्ष्ण कंटकोंके ऊपरि चलनेसेंभी पादादिक अवयवोंका वेधन नहि होवेहै अर्थात् अपणी इच्छासें जलादिकोंविषे डूबभी जावेहै औ ऊपरभी आय जावेहै इति ॥ तथा "समानजयाज्ज्वलनम्" अर्थ० नाभिके समीप जठराग्निका स्थान है औ तहांहि तिस अग्निकूं वेष्टन करके समान वायु स्थित है तो संयमद्वारा तिस समानवायुके जय करणेसें अग्निकी ज्वाला निरावरण होनेतें अत्यंत वृद्धिकूं प्राप्त होवेहै तो तिस करके योगीका शरीर अत्यंत तेजस्वी होनेतें ज्वलते हुयेकी

न्याईं प्रतीत होवेहै अथवा तिसकी इच्छा होवे तो दग्धभी होय जावेहै जैसे दक्षप्रजापतिके यज्ञविषे पार्वतीने अपणे शरीरकूं योगाग्निसें दग्ध करदियाथा इति ॥ तथा

"श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद्दिव्यश्रोत्रम्"

अर्थ० श्रोत्रइन्द्रिय औ आकाशका जो परस्पर देशदेशिभावसंबंध है तिसमें संयम करणेसें योगीकूं दिव्यश्रोत्रकी प्राप्ति होवेहै अर्थात् यावत् मध्य सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट आकाशमंडलविषे शब्द होतेहैं तिन सर्वकूंहि योगी श्रवण करैहै इति ॥ तथा "कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्" अर्थ० जहां जहां इस शरीरकी स्थिति होवेहै तहां तहांहि आकाश तिसकूं अवकाश देवेहै यातें शरीर औ आकाशका परस्पर संबंध है तिस संबंधविषे संयम करणेसें औ तूल आदिक अति लघु पदार्थविषे समापत्ति अर्थात् तन्मयीभावना करणेसें योगी लघुभावकूं प्राप्त होवेहै पश्चात् अपणी रुचिसें जल अथवा मकडीके जाल अथवा सूर्यकी रश्मियोंविषे विहार करता हुया यथेष्ट आकाशविषे गमनागमन करैहै इति ॥ तथा "बहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः" अर्थ० मनकी वृत्ति कल्पिता औ अकल्पिता इस भेदसें द्विप्रकारकी होवेहै तिनमें चन्द्रमा, तारा, मणि आदिक बाह्यपदार्थोंमें चित्तकी धारणा करणे-

में किंचित् शरीर औ किंचित् बाह्यपदार्थमें जो मनकी स्थिति है तिसका नाम कल्पितावृत्ति है औ जो दीर्घकालके अभ्यासके पाटवसे शरीका परित्याग करके केवल बाह्यपदार्थविषेहि मनकी स्थिति होनीहै तिसका नाम अकल्पितावृत्ति है इसीके सिद्ध होनेतें योगीका परशरीरमें प्रवेश होवेहै सो इस प्रकार जिस कालविषे शरीरका अभिमान त्याग करके मनकी शरीरसें बाह्यस्थिति होवेहै तो सर्वज्ञताका प्रतिबंधक जो रजोतमोजन्य आवरण है तिसका क्षय होवेहै इति तथा "स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद्भूतजयः"

अर्थ०आकाशादिक जो पांच महाभूत हैं तिनकी स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्त्व, इस भेदतें पांच अवस्था हैं तिनमें यह जो दृश्यमान भूतोंके आकार हैं सो स्थूल अवस्था कहियेहै औ तिनमें कार्यरूपसें स्थित जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच विषय हैं सो स्वरूप अवस्था कहियेहै तथा तिनमें कारणरूपसें स्थित जो शब्दतन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गंधतन्मात्रा, यह जो पांच तन्मात्रा हैं सो भूतोंकी सूक्ष्म अवस्था है औ, तिनविषे सत्व, रजो, तमो, इन तीन गुणोंका जो व्यापकपणा है तिसका नाम अन्वयअवस्था है तथा तिनमें स्थित जो पुरुषके भोग औ मोक्ष संपादन करणेकी शक्ति है तिसका नाम अ-

थंवस्यअवस्था है सो तिन पांच महाभूतोंकी अवस्थाविषे अनुक्रमसें संयम करणेसें योगीकूं पांच महाभूतोंके स्वरूपका दर्शन औ तिनका जय होवेहै अर्थात् जैसे गौ वत्साके अनुसारी होवेहै तैसेहि पांच महाभूत तिस योगीके अनुसारी होय जातेहैं तिस कालविषे यद्यपि सो योगी अग्निकूं शीतल औ जलकूं उष्ण करसकैहै तथापि ईश्वरकी इच्छा प्रबल होनेतें उक्त वार्तामें तिसकी प्रवृत्तिहि नहि होवैहै इति ॥ "ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च" अर्थ० इस उक्त प्रकार पांच महाभूतोंके जय होनेतें अनंतर योगी पुरुषकूं "अणिमादिप्रादुर्भावः" कहिये अणिमादिक सिद्धियोंकी प्राप्ति होवेहै ॥ टी. सिद्धियां अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, इस भेदसें अष्ट प्रकारका हैं ॥ तिनमें अणुके समान सूक्ष्म होजानेका नाम अणिमासिद्धि है औ विराट्के समान स्थूल होजानेका नाम महिमासिद्धि है तथा तूलपिंडके समान लघु होजानेका नाम लघिमासिद्धि है औ पर्वतके समान गुरु होजानेका नाम गरिमासिद्धि है तथा अंगुलीके अग्रभागसें चंद्रमा तारा आदिकोंके स्पर्श करणेकी शक्तिका नाम प्राप्तिसिद्धि है औ सर्व कामनाकी प्राप्ति अर्थात् सत्यसंकल्पताका नाम प्राकाम्यसिद्धि है तथा पराये शरीर औ अंतःकरणके प्रे-

रण करणेकी शक्तिका नाम ईशत्वसिद्धि है औ सर्व प्राणियोंके वशीभूत करणेकी शक्तिका नाम वशित्वसिद्धि है इस प्रकारसें यह अष्ट महासिद्धियां हैं औ भागवतादिकोंमें जो अष्टादश औ कहीं पंचविंशति सिद्धियां कथन करीहैं तिन सर्वका इन अष्टकेविषेहि अंतर्भाव जानलेना ॥ तथा (कायसंपत्) कहिये रूप, लावण्य, बल, वज्रकी न्यांई कठिनता, यह जो शरीरकी संपत् हैं तिनकीभी योगीकूं प्राप्ति होवेहै तथा तिन संपदोंका 'अनभिघातः' कहिये किसी कालविषेभी विघात नहि होवेहै अर्थात् जल तिसके शरीरकूं गिलाता नहि अग्नि दहन नहि करेहै, वायु शोषण नहि करेहै, पृथिवी जीर्ण नहि करेहै इति ॥ तथा "ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः" अर्थ० श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्त्व, इस भेदसें पांच अवस्था हैं तिनमें शब्दादिक विषयोंके सन्मुख जो इन्द्रियोंकी वृत्ति है तिसका नाम ग्रहणअवस्था है औ घटपटादिक पदार्थोंका सामान्यसें जो प्रकाश करणा है तिसका नाम स्वरूप अवस्था है तथा सर्व इन्द्रियोंका अहंकारके अनुसार जो वर्तना है तिसका नाम अस्मिता अवस्था है, औ तिनमें सत्व रजो तमो इन तीनों गुणोंका जो अन्वयपणा है सो अन्वय अवस्था कहिये है तथा तिनमें पुरुषके भोग औ

मोक्ष संपादन करणेकी जो शक्ति है सो अर्थवत्त्व अवस्था कहिये है ॥ सो तिन पांच इन्द्रियोंकी पांच अवस्थाविषे अनुक्रमसें संयम करणेसें योगीकूं इन्द्रियोंके स्वरूपका दर्शन औ तिनका जय होवेहै अर्थात् सर्व इन्द्रिय तिसके वशीभूत होवेहैं इति ॥ "ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च" अर्थ० उक्त प्रकारसें इन्द्रियोंके जय होनेतें अनंतर "मनोजवित्वं" कहिये योगीके शरीरकी मनके समान गति होवेहै अर्थात् जैसे मन संकल्पद्वारा एक क्षणमें लक्षों योजनोंपर गमन करेहै तैसेहि योगीका शरीर गमन करेहै तथा 'विकरणभावः' कहिये शरीरसें विनाहि देश, काल, विषयोंविषे इन्द्रियोंकी वृत्तिका लाभ होना अर्थात् गोलकोंको अपेक्षासें विनाहि योगीके अभिमत देशकालविषे स्वस्वकार्य करणेविषे इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होवेहै ॥ तथा 'प्रधानजयः' कहिये सर्व कार्यप्रपंचके सहित प्रकृतिकाभी जय होवेहै इति ॥ इन तीन सिद्धियांका नाम योगशास्त्रमें मधुप्रतीक कहतेहैं कारतें जैसे मधुके एक देशसेंभी स्वादकी प्राप्ति होवेहै तैसेहि इन एकएकसिद्धिमेंभी योगीकूं स्वाद अर्थात् स्वतंत्रताजन्य परमानंदकी प्राप्ति होवेहै इति ॥ तथा "सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च" अर्थ० रजोतमोरूप मलकरके रहित शुद्ध सत्त्व-

,मय जो बुद्धिका परिणामविशेष है तिसमें संयम करणेसें योगीकूं सत्व औ पुरुषकी अन्यताख्याति अर्थात् त्रिगुणस्वरूप बुद्धि अन्य है औ तिसका अधिष्ठाता गुणातीत पुरुष भिन्न है इस प्रकारका साक्षात्कार होवेहै तो पश्चात् गुणोंके कर्तृत्व भावके शिथिल होनेतें तहांहि संयममें स्थित भये योगीकूं सर्व त्रिगुणात्मक प्रपंचका अधिष्ठातापणा औ सर्वज्ञतापणा होवेहै अर्थात् सर्व पदार्थोंके आक्रमण करणेविषे स्वामीकी न्यांई सामर्थ्य होवेहै औ शांत उदित व्यपदेश्य धर्मोंकरके स्थित जो तीन गुण हैं तिनका यथार्थ ज्ञान होवेहै इसका नाम योगशास्त्रमें विशोका सिद्धि है अर्थात् इस सिद्धिकी प्राप्तिसें सर्वज्ञ भया योगी सर्व शोकोंकरके वर्जित होवेहै इति ॥ तथा "स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात्" अर्थ० प्रवृत्तज्योतिः, ऋतंभरप्रज्ञः, भूतेन्द्रियजयी अतिक्रांतभावनीयः, इस भेदसें च्यारि प्रकारके योगी होवेहैं ॥ तिनमें जो प्रथमहि अभ्यासमें प्रवृत्त भया पूर्वोक्त ज्योतिका हृदयविषे अवलोकन करैहै सो प्रवृत्त ज्योति कहियेहै औ जिसकूं अभ्यासकी बहुलतासें ऋतंभरा नामा प्र-

---

१ जिस प्रज्ञाकरके सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट सर्व पदार्थोंका एक कालविषेहि योगीकूं स्फुट साक्षात्कार होवेहै तिसका नाम ऋतंभरा है.

ज्ञाकी प्राप्ति होवेहै सो ऋतंभरप्रज्ञ कहियेहै तथा जिसके पांच भूत औ पांच इन्द्रिय वशीभूत होवेहैं तिसका नाम भूतेन्द्रियजयी है औ जो विशोका नाम सिद्धिकूं प्राप्त भया कृतकृत्य होयकर स्थित होवेहै सो अतिक्रांत भावनीय कहियेहै ॥ सो तिनमें चतुर्थ योगीकी सप्त प्रकारकी प्रांत-भूमिका होवेहै तिनमें अंतकी मधुमती नाम भूमिकाके साक्षात्करण कालमें योगीकूं देवता निमंत्रण करतेहै अर्थात् दिव्य अप्सरा, विमान, वस्त्र, अमृतादिक पदार्थोंके सहित आयकर योगीकूं कहतेहैं हे महाराज, इस विमनपर आरोहण करो इस सुंदर अप्सराकेसाथ नंदनवनादिकोंमें विहार क्रीडा करो इस शरीरके अजर अमर पुष्ट करणेहारे अमृतका पान करो इस सर्व रोगोंके विनाश करणेहारी दिव्य औषधिका भक्षण करो इत्यादिक प्रार्थना करके योगीकूं चलायमान करतेहैं ॥ यह वार्ता योगवासिष्ठके उपशम प्रकरणमें उद्दालकमुनिके आख्यानविषेभी लिखीहै ।

आरुह्येदं विमानं त्वमेहि त्रैविष्टपं पुरम् ।
स्वर्ग एव हि सीमान्तो जगत्संभोगसंपदाम् ॥
आकल्पमुचितान् भुंक्ष्व भोगानभिमतान्विभो ।
स्वर्गादिफलभोगार्थमेवाशेषतपःक्रियाः ॥

हारचामरधारिण्यो विद्याधरवरांगनाः ।
पश्येमास्त्वामुपासीनाः करिण्यः करिणं यथेति ॥७५

अर्थ० जिस कालविषे विंध्याचलकी गुहामें उद्दालकमुनि समाधिमें स्थित होता भया तो आकाशविषे सहित अप्सरा आदिक स्वर्गकी विभूतिके देवता आयकर कहने लगे हे उद्दालक तुं इस दिव्य विमानपर आरूढ होयकरके हमारे स्वर्गमें आव काहेतें स्वर्गहि सर्व जगत्‌की संपदोंका सीमांत है औ हे विभो कल्पपर्यंत अपणी इच्छाके अनुसार अभिमत भोगोंकूं तूं भोग काहेतें स्वर्गादिक सुखकी प्राप्तिके अर्थहि सर्व जप तपादिक क्रियाका अनुष्ठान होवेहै तथा हे उद्दालक जैसे हस्तीकी हस्तियां मिलकरके च्यारि तरफसें उपासना करतीहै तैसेहि मंदार, पारिजातके पुष्पोंकरके गुंफित कियेहुये हार औ चंद्रबिंबकी न्याई उज्ज्वल चामरोंकूं कोमल हस्तोंविषे धारण करके सेवा करणेमें उद्यत तेरे अग्रभागविषे स्थित जो विद्याधरोंकी सुन्दर ललना हैं तिनकूं तुं देख औ तिनकी नमस्कार तो अंगीकार कर इस प्रकारसें देवतोंकरके वारंवार प्रार्थना कियाहुयाभी सो उद्दालक मुनि तिनकी तरफ नहि देखता भया इति ॥ सो इस प्रकार उद्दालकमुनिकी न्याई योगी पुरुषकूं देवतोंकेसाथ संग कहिये प्रीति नहि करणी चाहिये किंतु तिनकी उपेक्षाहि क-

रणी योग्य है काहेतें जो तिसके साथ संग करेगा तो अप्सरा आदिक अल्पफलविषे लोभायमान भया कैवल्य मोक्षरूप महाफलसें भ्रष्ट होवेगा ॥ इस प्रकार संग नहि करके स्मय कहिये मेरी देवताभी प्रार्थना करतेहै इस प्रकारका चित्तमें अभिमानभी नहि करणा चाहिये, काहेतें अभिमान करणेसें अपणेकूं कृतकृत्य मानेहै तो समाधिविषे प्रमाद होनेतें तिसका अधोपतन होवेहै, यह वार्ता विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कथन करीहै

"लक्ष्यच्युतं चेद्यदि चित्तमीष-
द्बहिर्मुखं सन्निपतेद्यतस्ततः ॥
प्रमादतः प्रच्युतकेलिकंदुकः
सोपानपंक्तौ पतितो यथा तथा ॥"

अर्थ० प्रमादकरके समाधिके लक्ष्यसें किंचिन्मात्रभी जो स्खलित भया चित्त बहिर्मुख होयकर जहां तहां धावन करेहै तो जैसे क्रीडाका कंदुक पर्वतकी सीढीकी पंक्तिविषे पतित भया नीचेतें नीचे भूमिविषे पतित होवेहै तैसेहि समाधिसें भ्रष्ट भया योगीका चित्त नीचेसें नीचे भोगवासनारूप भूमिविषे पतित होवेहै इति ॥ यातें देवतोंकी प्रार्थनासें योगीकूं अभिमानभी नहि करणा चाहिये इति ॥ यहि न्याय इस लोकके राजा आदिक धनी पुरुषोंके संगमेंभी जानलेना ॥ तथा

"क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्"

अर्थ० संवत्सर, ऋतु, मास, दिवस, प्रहरादिकरूप जो काल है तिसकी अंतिम अवस्थाका नाम क्षण है सो क्षण औ तिसके क्रमविषे अर्थात् यह इससें पूर्व क्षण है यह इससें उत्तर क्षण है इस प्रकार जिस कालविषे योगी संयम करेहै तो तिसकूं विवेकजन्य ज्ञानकी प्राप्ति होवेहै जिसकी प्रथम अवस्था प्रातिभनामज्ञान पूर्व कथन कियाहै सो इस विवेकजन्य ज्ञानसेंहि जाति, लक्षण, देश, करके मिश्रित परमाणु आदिक अत्यंत सूक्ष्म पदार्थोंकाभी भेदसें ज्ञान होवेहै औ महत्तत्त्वादिक सर्व सूक्ष्म पदार्थोंका साक्षात्कार होवेहै इति ॥

"तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्"

अर्थ० पूर्वोक्त संयमके बलसें अंतकी भूमिकामें योगीकूं जो ज्ञान होवेहै तिसका नाम विवेकजज्ञान है सो 'तारकं' कहिये अगाध संसाररूप समुद्रसें योगीकूं तारण करेहै औ 'सर्वविषयं' कहिये महत्तत्वादिक जितने स्थूलसूक्ष्मादिक पदार्थ हैं सो सर्वहि तिस ज्ञानके अपरोक्षविषय होवेहैं तथा 'सर्वथाविषयं' कहिये स्थूलसूक्ष्मादिक भेदकरके तिस तिस परिणामसें सर्वप्रकारसें स्थित जो तत्त्व हैं तिन सर्वकूं सो ज्ञान विषय करेहै औ 'अक्रमं' कहिये एकवारहि करतलविषे

बिल्वफलकी न्याँई॰स्फुट सर्व पदार्थोंकूं विषय करैहै इति ॥ इस ज्ञानकी प्राप्ति होनेतें योगी ईश्वरके समान सर्वज्ञ औ स्वतंत्र होवैहै इति ॥ तथा "योगं विशत्यप्यचिरं महाशयः" कहिये पूर्वोक्त संयमके सिद्ध होनेतें संप्रज्ञात औ असंप्रज्ञात समाधिरूप जो योग है तिसमेंभी योगी पुरुषका शीघ्रहि प्रवेश होवैहै इति ॥ २१ ॥ इस प्रकारसें संयमके लक्षण औ फलका निरूपण करके अब पूर्वोक्त यमनियमादिक अष्ट अंगोंका अंगीभूत जो समाधि है तिसका लक्षण कथन करैहैं सो समाधि संप्रज्ञात औ असंप्रज्ञात इस भेदसें द्विप्रकारका है तिनमें प्रथम संप्रज्ञात समाधिका लक्षण वर्णन करैहैं ॥

(इन्द्रवंशा वृत्तम्)

वैराग्यमाश्रित्य परं तथेश्वरा
ध्यानेन विघ्रानखिलाञ्जयेद्यमी ॥
संक्षिप्य चेतःपरमात्मसद्मनि
संचिन्तयेदेकमथोत्तमाक्षरम् ॥ २२ ॥

वैराग्यमिति ॥पूर्व निरूपण करी जो अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ सो मोक्ष उपयोगी समाधिविषे विघ्नरूप हैं यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै "ते समाधावुपसर्गा-

व्युत्थाने सिद्धयः” अर्थ० पूर्वोक्त जो परकायप्रवेशनादिक व्यु-त्थानकालकी सिद्धियां हैं सो मोक्षउपयोगी समाधिविषे उप-सर्ग कहिये विघ्नरूप हैं इति ॥ तथा भागवतके एकादशस्कंधमें भगवान्ने उद्धवके प्रतिभी कथन करीहै

"अंतरायान्वदंत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ।
मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥"

अर्थ० हे उद्धव यह जो पूर्वोक्त अणिमादिक सिद्धियां हैं सो उत्तम योग अर्थात् निर्विकल्पसमाधिद्वारा मेरेकूं प्राप्त होनेकी वांछावान् योगीके कालक्षेपण करणेहारे अंतराय कहिये विघ्नरूप हैं इति ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमेंभी कहाहै

"द्रव्यमंत्रक्रियाकालशक्तयः साधुसिद्धिदाः ।
परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वंति काश्चन ॥"

अर्थ० हे रामचंद्र, द्रव्य, मंत्र, क्रिया, कालजन्य जो साधककूं फल देनेहारी अणिमादिक सिद्धियां हैं सो परमात्मपद कहिये कैवल्यमोक्षकी प्राप्तिविषे तिनमेंसे कोईभी उपकार अर्थात् सहायता नहि करेहैं किंतु उलटा परमात्मपदकी प्राप्तिमें विघ्नकारक होयेहैं इति ॥ सो इस प्रकार सर्व सिद्धियोंकूं संसारबंधनकी मुक्तिविषे विघ्नरूप जानकर मुमुक्षु योगी पुरुषकूं परम वैराग्यका आश्रय करके श्री मोक्ष-

पदकी निर्विघ्न प्राप्ति करणेहारे सर्वशक्तिमान् ईश्वरके आराधनसें तिन सर्व विघ्नोंका जय करणा योग्य है, काहेतें परवैराग्यपूर्वक ईश्वरकी आराधनासेंहि निर्विघ्न समाधिद्वारा मोक्षपदकी प्राप्ति होवेहै, यह वार्त्ता आत्मपुराणके एकादशाध्यायमेंभी कथन करीहै

"ॐकारोत्र रथः स्वस्य परमात्माथ सारथिः ।
विष्णुस्तेन गंतव्यो ब्रह्मलोकः परोथवा ॥"

अर्थ० ॐकार अर्थात् ॐकारकी उपासनारूप समाधि तो जीवका रथ है औ विष्णुपरमात्मा अर्थात् ईश्वररूप रथके चलानेंहारा सारथि है सो जैसे द्रव्यप्रदानादिकोंसें प्रसन्न भया सारथि रथीपुरुषकूं अभिमतदेशविषे निर्विघ्न प्राप्त करेहै तैसेंहि आराधनकरके प्रसन्न भया ईश्वररूप सारथि जीवरूप रथीकूं समाधिरूप रथद्वारा क्रममोक्ष अथवा सद्योमोक्षरूप अभिमतदेशविषे निर्विघ्न प्राप्त करेहै इति ॥ इस प्रकारपर वैराग्य औ ईश्वरके ध्यानसें सर्व विघ्नोंकूं जय करके पश्चात् 'परमात्मसद्मनि' कहिये परमात्माका स्थानभूत जो हृदयपद्म है तिसमें अपणे चित्तकूं स्थापन करे ॥ यद्यपि परमात्मा सर्वत्र व्यापक है तथापि विशेषकरके तिसकी उपलब्धि हृदयपद्ममेंहि होवेहै काहेतें हृदयमें चित्तका स्थान है औ चित्तविषेहि परमात्माका प्रतिबिंब होवेहै ॥ इस प्रकार

सर्व तरफसें निरोधपूर्वक चित्तकूं हृदयपद्ममें स्थापन करके सर्व अक्षरोंमें उत्तम अक्षर जो एक ॐकार है तिसका अर्थात् प्रणवका वाच्य जो परमात्मा है तिसका चिंतन करे अर्थात् तिसमेंहि चित्तकूं एकाग्र करे ॥ इसका नाम संप्रज्ञात समाधि है ॥ सो इस समाधिके भेद योगसूत्रोंमें पतंजलिने निरूपण कियेहैं "वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् संप्रज्ञातः" अर्थ० वितर्कानुगत विचारानुगत आनंदानुगत अस्मितानुगत, इस भेदसें संप्रज्ञातसमाधि च्यारि प्रकारका है तिनमें वितर्कानुगत पुनः सवितर्क निर्वितर्क इस भेदसें दो-प्रकारका है तिनमें जिस कालविषे स्थूल पांचमहाभूत औ पांच ज्ञानेन्द्रियरूप आलंबनमें पूर्वापरके अनुसंधानपूर्वक शब्द, अर्थ, ज्ञानकी विभाग करके प्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम सवितर्कसमाधि है औ तिसहि आलंबनविषे पूर्वापरके अनुसंधानक अभावपूर्वक शब्द, अर्थ, ज्ञानकी विभाग करके अप्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम निर्वितर्कसमाधि है ॥ तथा विचारानुगतभी सविचार, निर्विचार, इस भेदसें दो प्रकारका है ॥ तिनमें सूक्ष्मपंचभूततन्मात्रा औ अंतःकरणरूप आलंबनविषे जिस कालमें पूर्वापरके अनुसंधानपूर्वक देश, काल, धर्मके विभागकी प्रतीतिके होते जो समाधि होवेहै तिसका नाम सविचारसमा-

धि है ॥ औ तिसहि आलंबनविषे पूर्वापरके अनुसंधानके अभावपूर्वक देश काल धर्मादिकोंकी विभागसें अप्रतीतिके होते जो समाधि होवैहै तिसका नाम निर्विचारसमाधि है ॥ यह च्यारि प्रकारका ग्राह्यविषयक समाधि कहियेहै ॥ तथा आनंदानुगत औ अस्मितानुगत तो एक एक प्रकारकाहि है तिनमें जिस कालविषे रजोतमोंकी लेश करके अनुविद्ध अंतःकरण सत्वरूप आलंबनविषे समाधि होवैहै तो तिस कालमें चितिशक्तिके गौणभाव होनेतें औ सुख तथा प्रकाशस्वरूप अंतःकरणसत्वकी प्रधानता होनेतें योगीकूं जो परमानंदकी प्राप्ति होवैहै तिसका नाम आनंदानुगत समाधि है ॥ जो योगी तिसहि आनंदविषे कृतकृत्यता मानकरके तिसतें परे प्रधान औ पुरुषकूं नहि देखतेहैं तिनकी योगशास्त्रमें विदेहसंज्ञा होवैहै यह ग्रहणविषयक समाधि कहियेहै ॥ तथा जिस कालमें रजोतमोकी लेशकरके अननुविद्ध अंतःकरणके शुद्ध सत्वरूप आलंबनविषे समाधि होवैहै तिसकालविषे ग्रहणस्वरूप अंतःकरणसत्वके गौणभाव होनेतें चितिशक्तिकी प्रधानता होवैहै इस प्रकार सत्तामात्र अवशेषचित्तविषे जो समाधि होवैहै तिसका नाम अस्मितानुगतसमाधि है ॥ जो योगी इस सत्तामात्रविषेहि कृतकृत्यता मानकर तिसतें परे शुद्ध पुरुषकूं नहि देखतेहैं तिनकी प्रकृति लयसंज्ञा

होवेहै ॥ औ जो योगी अंतःकरणसत्वसें परे परमपुरुषकूं जानकरके तिसहि आलंबनमें समाधि करतेहैं सोई विवेकख्यातिकी माप्तिद्वारा कैवल्यमोक्षपदके भागी होतेहैं ॥ औ तिनकी विमुक्तसंज्ञा होवेहै ॥ यह जो पुरुषविषयक समाधि है सो ग्रहीतृविषयक कहियेहै इति ॥ यह च्यारि प्रकारके संप्रज्ञातसमाधिके लक्षण हैं ॥ औ इन समाधियोंके जो भूतजय, इन्द्रियजय, आदिक फलविशेष हैं सो तो पूर्वहि संयमके फलनिरूपणविषे कथन करि आयेहैं काहेतें संयम औ संप्रज्ञातसमाधिविषे विशेष अंतराय नहिहै किंतु संयमकूं चिंतारूप होनेतें तिसमें ध्येयवस्तुका स्फुटभान नहि होवेहै औ संप्रज्ञातसमाधिविषे तो साक्षात्कारके उदय होनेतें ध्येयवस्तुके स्वरूपका स्फुटभान होवेहै इतनाहि संयम औ संप्रज्ञातका भेद है इति ॥ २२ ॥ इस प्रकारसें संप्रज्ञातसमाधिका लक्षण औ तिसके अवांतर भेदोंका निरूपण करके अब सर्व साधनोंका फलभूत जो असंप्रज्ञातसमाधि है तिसका लक्षण वर्णन करेंहैं ॥

॥ इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

संविश्य योगं परमं तु धीरधी-
रेकत्वमानीय तथात्मचेतसोः ॥

प्रोत्सार्य संकल्पविकल्पसंचयं
किंचित्स्मरेन्नैव ततस्त्वतन्द्रितः ॥२३॥

संविश्येति ॥ इस प्रकार संप्रज्ञातसमाधिकी सिद्धिभ-येतें अनंतर परमयोग जो निर्विकल्पसमाधि है तिसमें चि-त्तका प्रवेश करके अर्थात् नेति नेति इस प्रकारकी भावनासें सर्व आलंबनोंका परित्याग करके चित्तकूं निरालंबस्थित करे इस प्रकारं वृत्तिसें रहित भये चित्तकी आत्माके साथ एकता अर्थात् आत्माविषे चित्तका विलय करे सो मनके वि-लय करणेकी रीति यजुर्वेदकी कठउपनिषत्में कथन करीहै

"यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।"

अर्थ० वृद्धिमान् जो योगी पुरुष है सो वाचाइन्द्रियकूं प्रत्याहारकी विधिसें मनविषे विलय करे अर्थात् भाषण ज-पादिकोंका परित्याग करके केवल मनके व्यापारसें मूक पुरुषकी न्यांई स्थित होवे पश्चात् मनकूं 'ज्ञानआत्मनि' कहिये विशेषाहंकारविषे विलय करे अर्थात् मनके संकल्प-विकल्परूप व्यापारका परित्याग करके केवल अहंभावमात्रसें

१ यहां वाचा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकाभी उपलक्षण जानना.
२ व्यष्टिपरिच्छिन्न अहंकार.

स्थित होवे ॥ पुनः अहंभावकूं "महति आत्मनि" कहिये सामान्याहंकारविषे विलय करे अर्थात् शरीरादिकोंका अभिमान परित्याग करके तंद्रावान् पुरुषकी न्यांई सामान्याहंकारमें स्थित होवे ॥ पुनः सामान्याहंकारकूं 'शांतआत्मनि' कहिये सर्व विकल्पोंकरके शून्य जो साक्षी आत्मा है तिसविषे विलय करे अर्थात् सामान्याहंकारका परित्याग करके केवल आत्मस्वरूपसेंहि स्थित होवे इति ॥ तथा विवेकचूडामणिमें शंकराचार्यनेभी कहाहै ॥

"वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ
बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे
विलाप्य शांतिं परमां भजस्व ॥"

अर्थ० हे शिष्य वाचाकूं मनमें मनकूं बुद्धिमें बुद्धिकूं साक्षीआत्माविषे साक्षी आत्माकूं पूर्ण औ सर्व कल्पनासें रहित परमात्माविषे विलय करके निर्विकल्पसमाधिरूप परम शांतिकूं प्राप्त होहु इति ॥ तथा याज्ञवल्क्यनेभी कहाहै

"आत्ममध्ये मनः कुर्यादात्मानं परमात्मनि ।
परमात्मा स्वयं भूत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्"

१ समष्टिअहंकार.

अर्थ॰ निर्विकल्पसमाविषे स्थित होनेकी वांछावान् योगी मनकूं साक्षीआत्माविषे विलय करे औ साक्षीकूं परमात्माविषे विलय करे पश्चात् स्वयमेव परमात्मस्वरूप होयकर सर्व चिंताका परित्याग करके स्थित होवे इति ॥ इस प्रकार क्रमसें शनै शनै सर्व संकल्पविकल्पके संचयका मूलसें उत्पाटन करके किंचित्भी स्मरण नहि करे यह वार्ता गीताके षष्ठाध्यायविषे भगवान्नेभी कथन करीहै

"संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥
शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥"

अर्थ॰ हे अर्जुन, विवेकयुक्त मनसें सर्व इन्द्रियोंकूं वशीभूत करके औ संकल्पसें उत्पन्न होनेहारी सर्व कामनाके सर्व तरफसें परित्यागपूर्वक धैर्ययुक्त बुद्धिसें मनकूं आत्माविषे स्थित करके पश्चात् किंचित्मात्रभी चिंतन नहि करे इति ॥ तथा 'अतन्द्रितः' कहिये अप्रमत्त होयकर मनका विलय करे काहेतें निर्विकल्पसमाधिकालविषे कदाचित् चित्त सुषुप्तिकी न्यांई तमोगुणकरके आवृत भया लीन होवेहै तो तिसकूं सूक्ष्मबुद्धिसें जानकर लयसें प्रबोध करणा चाहिये,

यह वार्ता मांडूक्य उपनिषत्की कारिकाविषे गौडपादाचार्यनेभी कथन करीहै

"लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ।
सकषायं विजानीयात् समप्राप्तं न चालयेत्"

अर्थ० उक्त लयअवस्थाविषे प्राप्त भये चित्तकूं 'संबोधयेत्' कहिये तिस अवस्थासें प्रयत्नकरके बोधन करे औ जो व्युत्थानकालके संस्कारोंसें कदाचित् चित्त विक्षिप्त होवे तो 'शमयेत्' कहिये तिसकूं तहांहि आत्मतत्त्वविषे विलय करे औ जो कदाचित् कषाययुक्त होवे तो तिसकूं सूक्ष्मबुद्धिसें जानकर प्रयत्नसें कषायसें निवृत्त करे इस प्रकार लय, विक्षेप, कषाय, इन तीनोंकरके रहित भया चित्त जिस कालविषे 'समप्राप्तं' कहिये आत्मपदविषे स्थितिकूं प्राप्त होवे तो पुना तहांसें चालन नहि करे अर्थात् किंचित्भी संकल्पविकल्प नहि करे इति ॥ इस प्रकार किंचित्भी संकल्पविकल्पके नहि करणेसें चित्त स्वयमेवहि आत्मतत्त्वविषे लीन होय जावे है यह वार्ता श्रुतिविषेभी कथन करी है

"यथा निरिन्धनो वह्निः स्वममेवोपशाम्यति ॥
तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति"

अर्थ० जिस प्रकार इन्धनसें रहित भया अग्नि स्वयमेव

---

१ रागद्वेषादिकोंकी वासनाका नाम कषाय है.

शांत होय जावेहै तैसेहि संकल्पविकल्पोंसें रहित भया, चित्त स्वयमेवहि अपणे अधिष्ठानरूप आत्माविषे विलय होवेहै इति ॥ तथा हठयोगप्रदीपिकामेंभी कहाहै

"कर्पूरमनलेयद्वत्सैन्धवं सलिले यथा ।
तथा संधीयमानं च मनस्तत्त्वे विलीयते"

अर्थ० जैसे अग्निविषे कर्पूर औ जलविषे लवण क्षेपण किया हुया विलयकूं प्राप्त होवेहै तैसेहि आत्माविषे संयोजन किया हुया चित्त विलयकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ इस प्रकार जिस कालविषे विलयकूं प्राप्त होयकर मन केवल संप्रज्ञातसमाधिके संस्कारोंकरके युक्त भया स्थित होवेहै तिसका नाम असंप्रज्ञातसमाधि है ॥ यह वार्ता योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कथन करीहै "विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः" अर्थ० नेति नेति इस प्रकारका सर्व आलंबनोंसें उपरामताका कारण जो प्रत्यय अर्थात् चित्तकी वृत्तिविशेष है तिसके अभ्यास कहिये पुना पुना आवृत्तिपूर्वक औ संप्रज्ञातसमाधिके संकारोंकरके युक्त जो चित्तकी निरुद्धावस्था है तिसका नाम असंप्रज्ञात समाधि है इसीकूं निर्विकल्पसमाधिभी कहतेहैं इति ॥ सो इस अवस्थाविषे स्थित भया योगी शून्यके समान होवेहै, यह वार्ता हठयोगप्रदीपिकाविषेभी निरूपण करीहै

"अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यः कुंभ इवांबरे ।
अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णः कुंभ इवार्णवे ॥"

अर्थ० जैसे आकाशविषे स्थित भया घट अंतर औ बाहिरसेंभी शून्य होवैहै तैसेहि निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भया योगी सर्व संकल्पविकल्पोंके विलय होनेतें अंतर औ बाह्यसेंभी शून्य होवैहै तथा जैसे समुद्रविषे निमग्न भया घट अंतर औ बाह्यसेंभी पूर्ण होवैहै तैसेहि चित्तके विलय होनेतें योगी आत्मस्वरूपकरके अंतर औ बाह्यसेंभी पूर्ण होवैहै इति ॥ इस प्रकारकी जो मनकी स्थिति है सोई परमपद है, यह वार्ता अथर्ववेदकी ब्रह्मबिन्दुउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै

"निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥"

अर्थ० सर्व विषयाकारताका परित्याग करके हृदयपंकजमें संनिरुद्ध भया चित्त जिस कालविषे उन्मनीभाव अर्थात् विदयभावकूं प्राप्त होवैहै तिस कालकी जो स्थिति है सोई परमपद है इति ॥ २३ ॥ इस प्रकार असंप्रज्ञातसमाधिका लक्षण निरूपण करके अब तिसके फलकूं वर्णन करैहैं ॥

॥ इन्द्रवंशा वृत्तम् ॥

इत्थं परानन्दपदार्पिताशयो
योगी विलूनाखिलकर्मबन्धनः ॥

स्वैरश्चिरं संविचरत्युदारधी-.
रत्रैव वाऽमुत्र विमुच्यतेऽथवा ॥ २४ ॥

ईत्थमिति ॥ इत्थं कहिये पूर्वोक्त प्रकारसें निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भया योगी परमानंदका अनुभव करेहै यद्यपि परमानंदके अनुभव करणेहारी मनकी सर्व वृत्तियांका तिस कालविषे विलय होवेहै तथापि जैसे, सुषुप्ति अवस्थाविषै मनके विलय होनेतेंभी अविद्याकी सूक्ष्मवृत्तियोंकरके आनंदका अनुभव होवेहै तैसेहि समाधिविषेभी चित्तकी सूक्ष्म अवस्थाकरके समाधिकालीन सुखका अनुभव संभवेहै ॥ औ जो असंप्रज्ञातसमाधिविषे आनंदका अनुभव नहि मानें तो समाधिसें व्युत्थित भये योगीकूं तिस आनंदकी स्मृति नहि होनी चाहिये औ स्मृति तो होवेहै ॥ किं च जैसे सुषुप्तिविषे चित्तका अत्यंत विलय होवेहै तैसे असंप्रज्ञातसमाधिविषे नहि होवेहै, यह वार्ता गौडपादाचार्यनेभी कथन करीहै

"लीयते हि सुषुप्तौ तन्निगृहीतं न लीयते"

अर्थ० जैसे सुषुप्तिअवस्थाविषे मनका अत्यंत विलय होवेहै तैसे निर्विकल्पसमाधिविषे निरोध किये हुये चित्तका विलय नहि होवेहै काहेतें कार्यका स्वकारणविषेहि अत्यंत विलय होवेहै यातें सुषुप्तिविषे अज्ञानरूप स्वकारणविषे

मनका अत्यंत विलय संभवेहै औ समाधिविषे तो अज्ञानरूप स्वकारणके अभाव होनेतें चित्तका अत्यंत विलय नहि होवेहै किंतु सूक्ष्म अवस्थासे चित्तकी स्थिति होवेहै तिसकरकेहि असंप्रज्ञातसमाधिजन्य परमानंदका योगीकूं अनुभव संभवेहै ॥ तथा श्रुतिविषेभी यह वार्ता कथन करीहै

"समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥"

अर्थ० निर्विकल्पसमाधिकरके लयविक्षेपरूप मलसें रहित भये चित्तकूं आत्माकेसाथ एकीभाव करणेतें जो आनंद होवेहै सो तिस कालविषे वाचाकरके कथन नहि किया जावेहै किंतु योगीलोक अपणे अंतःकरणकरकेहि तिस परमानंदका अनुभव करतेहैं इति ॥ तथा विवेकचूडामणिविषेभी कहाहै

"बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिर्ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगतया ।
इदं न जानेप्यनिदं न जाने किंवा कियद्वा सुखमस्त्यपारम् ॥"

अर्थ० कोई एक शिष्य निर्विकल्पसमाधिसें व्युत्थानकूं प्राप्त होयकर अपणे गुरुके पास जायकरके कहने लगा हे गुरो निर्विकल्पसमाधिविषे ब्रह्मात्माका एकत्वभाव होनेतें

मेरी बुद्धि विलयकूं प्राप्त होगई औ सर्व प्रवृत्ति अर्थात् संकल्पविकल्पभी नष्ट होगये तथा यह है यह नहि इस प्रकार मैं किंचित् मात्रभी नहि जानता भया किंतु कुछक औ कितनीक अर्थात् वाचाकरके अवाच्य अपार सुखका मैं अनुभव करता भया हुं इति ०॥ तथा गीताके षष्ठाध्यायविषे भगवान्नेभी कहाहै ॥

"सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥
"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥"

अर्थ० निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भया योगी इन्द्रियोंके अगोचर अर्थात् केवल सूक्ष्म बुद्धिकरके ग्राह्य आत्यंतिक सुखका अनुभव करेहै तिस सुखविषे स्थित भया योगी मकरंदका पान करतेहुये भृंगकी न्यांई समाधिसें चलायमान नहि होवेहै औ जिस परमानंदकूं प्राप्त होयकर योगी पुनः तिससें परे अधिक लाभ कुछ नहि मानेहै तिस सुखविषे निमग्न भया योगी वडे वडे शीत, वात, वर्षा, आतप, आदिक उपद्रव औ सिंहादिक वनचरोंके भयानक शब्दोंकरकेभी चलायमान नहि होवेहै इति ॥ यह वार्ता योग-

वासिष्ठके निर्वाणप्रकरणविषे राजा शिखिध्वजके आख्यानमेंभी निरूपण करीहै

"निर्विकल्पसमाधिस्थं तत्रापश्यन्महीपतिम् ॥
राजानं तावदेतस्माद्बोधयामि परात्पदात् ॥
इति संचिंत्य चूडाला सिंहनादं चकार सा ॥
भूयो भूयः प्रभोरग्रे वनेचरभयप्रदम् ॥
न चचाल तदा राम यदा नादेन तेन सः ॥
भूयो भूयः कृतेनापि तदा सान्तं व्यचालयत् ॥
चालितः पातितोऽप्येष तदा नो बुबुधे बुधः"—

अर्थ० एक समये चूडाला नाम राणी अपणे पति शिखिध्वज नाम राजाकूं वनमें निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भयेकूं देखकर ऐसा विचार करती भयी इस राजाकूं इस परम समाधिसें परीक्षाके अर्थ मैं जगावों इस प्रकार चिंतन करके सो चूडाला योगसिद्धिके बलसें राजाके अग्रभागविषे वारंवार मृगादिक वनचरोंकूं भय देनेहारे सिंहकी न्यांई भयानक शब्दकूं करती भयी तो भी राजा निर्विकल्पसमाधिके आनंदविषे निमग्न भया चलायमान नहि होतर भया इस प्रकार जब वारंवार महान् शब्द करनेसेंभी राजा नहि चलायमान भया तो पश्चात् तिसकी ग्रीवाके समीप देशकूं हस्तोंसें पकडकर इधर उधर आकर्षण करती भयी परंतु इस

प्रकार चलायमान किया औ पृथिवीपर क्षेपण कियाहुयाभी सो शिखिध्वजराजा परमानंदविषे निमग्न भया प्रबोधकूं नहि प्राप्त होता भया इति ॥ तथा "योगी विलूनाखिलकर्मबन्धनः" कहिये इस प्रकार निर्विकल्पसमाधिके आनंदकूं प्राप्त भये योगीके सर्वहिं जन्मजन्मांतरोंविषे अनुष्ठित किये हुये शुभाशुभ कर्मरूप बंधनोंका मूलसेंहि छेदन होवेहै यह वार्ता कूर्मपुराणमें महादेवजीनेभी कथन करीहै "योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपंजरम्" अर्थ० हे पार्वति योगरूप अग्नि सर्वपापसमूहका दहन करेहै इति ॥ शंका ॥ तुमने कहा निर्विकल्प समाधिकी प्राप्ति भयेतें योगीके सर्व कर्मोंका मूलसें छेदन होवेहै सो वार्ता असंभव है काहेतें

"क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥"

इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे ज्ञानरूप अग्निकरकेहि सर्व कर्मोंका नाश कथन कियाहै ॥ समाधान ॥ यद्यपि अनेक श्रुतिस्मृतियोंविषे ज्ञानसेंहि कर्मोंका विनाश कथन कियाहै तथापि जैसे ज्ञानसें कर्मोंका विनाश होवेहै तैसेहि निर्विकल्पसमाधिसेंभी होवेहै काहेतें समाधिकूं ज्ञानसेंभी प्रबल होनेतें यह वार्ता पूर्वहि षष्ठे श्लोककी व्याख्याविषे नि-

रूपण करि आये हैं तथा गीताविषे भगवान्नेभी कहाहै "ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते"

"तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः।"

अर्थ० हे अर्जुन, ज्ञानसेंभी ध्यान अर्थात् योग विशेष हैं तथा अति उग्र तप करणेहारोंसें औ ज्ञानियोंसेंभी योगी अधिक मानाहै इति ॥ किंच निर्विकल्पसमाधिविषे चित्तके अत्यंत शुद्ध होनेतें आत्मतत्त्वका करामलकवत् स्फुट साक्षात्कार होवेहै यातें योगीके सर्व कर्मोंका नाश संभवेहै ॥ तथा विवेकचूडामणिविषे शंकराचार्यनेभी कहाहै

"समाधिनानेन समस्तवासना-
ग्रंथेर्विमोक्षोऽखिलकर्मनाशः ।
अंतर्बहिः सर्वत एव सर्वदा
स्वरूपविस्फूर्तिरयत्नतः स्यात् ॥"

अर्थ० इसपूर्वोक्त निर्विकल्पसमाधिकरके समस्त वासनारूप ग्रंथियोंका भेदन होवेहै औ सर्वशुभाशुभ कर्मोंकाभी विनाश होवेहै तथा अंतःकरणके अत्यंत स्वच्छ होनेतें यत्नसें विनाहि आत्मस्वरूपका अंतरबाहिर विस्फुरण होवेहै इति ॥ तथा योगसूत्रोंमें पतंजलिनेभी कहाहै "ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः" अर्थ० निर्विकल्पसमाधिविषे आत्मतत्त्वके स्फुट

अववोध होनेतें योगीके अविद्या आदिक क्लेश औ शुभाशुभ कर्मोंकी निवृत्ति होवेहै इति ॥ तथा महाभारतके 'मोक्षपर्वविषे भीष्मपितामहनेभी कहाहै

"स शीघ्रमचलप्रख्यं दग्ध्वा कर्म शुभाशुभम् ।
उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते ॥"

अर्थ० हे युधिष्ठिर, सो योगी उत्तम योगरूप निर्विकल्प समाधिविषे स्थित होयकर शीघ्रहि पर्वतके समान अनेक जन्मांतरोंविषे संचय किये हुये शुभाशुभ कर्मोंकूं योगाग्निसें दग्ध करके अपणी इच्छाके अनुसार कैवल्यमोक्षपदकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा पंचदशीमेंभी कहाहै

"अनादाविह संसारे संचिताः कर्मकोटयः ।
अनेन विलयं यान्ति शुद्धो धर्मो विवर्धते ॥
अमुना वासनाजाले निःशेषं प्रविलापिते ।
समूलोन्मूलिते पुण्यपापाख्ये कर्मसंचये ॥"

अर्थ० इस निर्विकल्पसमाधिकरके अनादिकालसें अनेक जन्मांतरोंविषे जो कोटियां शुभाशुभ कर्मसंचय किये होवेहैं सो सर्वहि विनाकूं प्राप्त होय जावेहैं औ जितनी तिन कर्मोंकी शुभाशुभ वासना होवेहैं तिन सर्वकाभी क्षय होवेहै तथा जो पुण्यपापरूप कर्मोंके संचय होवेहै सोभी सहित मूटके विनाशकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ इस प्रकार सर्व बंधनोंसें

रहित भये योगीकी जो तिस कालविषे, विदेहमुक्त होनेकी इच्छा नहि होवे तो "स्वैरस्थिरं संविचरत्युदारधीः" कहिये उदारबुद्धिमान् सो योगी व्युत्थानकालविषे संयमद्वारा सर्व चराचरजगत्विषे स्वतंत्र होयकर विचरता है अर्थात् नारदादिकोंकी न्याई स्वर्ग पाताल अंतरिक्षादिक लोकोंविषे तिसका कोईभी निरोध नहि करसकैहै, यह वार्ता पुराणादिकोंविषे तहां तहां योगियोंके प्रसंगोंविषे प्रसिद्धहीहै ॥ तथा योगवासिष्ठके निर्वाणप्रकरणमें चूडालाके आख्यानविषेभी कथन कियाहै

श्रीवसिष्ठ उवाच.

"अणिमादिगुणैश्वर्ययुक्ता सा नृपभामिनी ।
एवं बभूव चूडाला घनाभ्यासवती सती ॥
जगामाकाशमार्गेण विवेशाब्धिकोटरम् ।
चचार वसुधापीठं गंगेवामलशीतला ॥
आकाशगामिनी श्यामा विद्युत्सारंभभूषणा ।
बभ्राम मेघमालेव गिरिमाला महीतले ॥
काष्ठं तृणोपलं भूतं खं वातमनलं जलम् ॥
निर्विघ्नमविशत्सर्वं तंतुर्मुक्ताफलं यथा ॥
मेरोरुपरि शृंगाणि लोकपालपुराणि च ॥
दिग्व्योमोदरस्थानि विजहार यथासुखम् ॥

तिर्यग्भूतपिशाचाद्यैः सहनागामरासुरैः ॥
विद्याधराप्सरःसिद्धैर्व्यवहारं चकार सा ॥"

अर्थ० हे रामचंद्र, इस प्रकार चिरकालके अभ्यास करणेमें शिखिध्वज राजाकी भार्या चूडाला अणिमादिक सर्व सीद्धियोंके ऐश्वर्यकरके संपन्न होयकर आकाशविषे विचरकरके समुद्रके कोटर अर्थात् मध्यदेशविषे प्रवेश करती भयी पुना तहांसें निकसकर जैसे गंगा पृथिवीविषे निर्मल भयी गमन करेहै तैसेहि रागद्वेषरूप मलसें रहित भयी सो चूडाला पृथिवीमंडलविषे विचरती भयी पुना श्यामसुंदररूप औ विजुलीके चमत्कारके समान उज्ज्वल आभूषणोंकरके लसती हुयी मेघमालाकी न्यांई आकाशविषे औ पर्वतोंके समूहकी न्यांई पृथिवीविषे भ्रमण करती भयी ॥ पुना काष्ठ तृण शिला, भूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल, इन सर्वकेविषे जैसे मुक्ताफलमें सूक्ष्म तंतु प्रवेश करेहै तैसेहि निर्विघ्न प्रवेश करजाती भयी ॥ पुना सुमेरुपर्वतके शृंगोंपर औ इन्द्रादिक लोकपालोंकी पुरियांविषे तथा दशों दिशा औ आकाशके छिद्रोंमेंभी सुखपूर्वक विचरती भयी ॥ पुना तिर्यक्, भूत, पिशाच, नाग, देवता, दैत्य, विद्याधर, अप्सरा, सिद्धादिकोंके साथभी नानाप्रकारके व्यवहार करती भयी इति ॥

१ इन्द्रकरके पक्ष छेदन करणेके प्रथम पर्वतभी चलते औ उडतेथे।

न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवंति
विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥"

अर्थ० हे राजन् प्राणोंकूं जय करके पवनप्रधान सूक्ष्म शरीरसें विचरणेहारे योगीश्वरोंका त्रैलोक्य अर्थात् ब्रह्मांडके अंतर औ बाह्यभी गमन होवेहै यह जो उपासना औ तप करके युक्त समाधिके अभ्यासवाले योगीपुरुषोंकी गति है तिसकी यज्ञादिक कर्मोंकरके प्राप्ति नहि होवेहै इति ॥ किंच इस प्रकार स्वतंत्र विचरणेहारे योगीकूं सर्व चराचर जगत्के भक्षण करणेहारे कालभगवान्‌काभी त्रास नहि होवेहै, यह वार्ता महाभारतके मोक्षपर्वविषेभी कथन करीहै

"न यमो नान्तकः क्रुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः ।
ईश ते नृपते सर्वे योगस्यामिततेजसः ॥"

अर्थ० हे राजन् अमित प्रभाववान् योगीकूं यमराज औ क्रोधकूं प्राप्त भया कालभगवान् तथा भयानक विक्रमवाला मृत्युभी वशीभूत करणेमें समर्थ नहि होवेहै इति ॥ जिस प्रकारसें योगीकूं कालभी वशीभूत नहि करसकेहै सो प्रकार

[1] धर्मराजका नाम यम है। [2] औ वर्ष मासादिकोंकरके आयुषके क्षपण करणेहारा जो देवताविशेष है तिसका नाम काल है। [3] औ शरीरसें प्राणोंके वियोग करणेहारी देवताका नाम मृत्यु है यह यम काल औ मृत्युका भेद है.

खेचरीपटलविषे महादेवजीने पार्वतीकेप्रति कथन कियाहै सो प्रसंगसें यहां दिखावेहैं ॥

"यदि वंचितुमुद्युक्तः कालं कालविभागवित् ।"
कालस्तु यावद्व्रजति तावत्तत्र सुखं वसेत् ॥
ब्रह्मद्वारार्गलस्याधो देहं कालप्रयोजनम् ॥
तस्मादूर्ध्वपदं देहं नहि कालप्रयोजनम् ।
यदा देव्यात्मनः कालमतिक्रान्तं प्रपश्यति ॥
तदा ब्रह्मार्गलं भित्वा शक्तिं मूलपदं नयेत् ।
शक्तिदेहप्रसूतं तु स्वजीवं चेन्द्रियैः सह ॥
तत्तत् कर्मणि संयोज्य स्वस्थदेहः सुखंचरेत् ।
अनेन देवि योगेन वंचयेत्कालमागतम्". ॥

अर्थ० शरीरसें प्राणोंके वियोग करणेहारे कालके आगमन समयकूं संयमद्वारा जानकरके योगी जो कालकूं वंचन करणा चाहे तो पूर्वोक्त प्राणके प्रत्याहारकी रीतिसें मूलाधारचक्रसें कुंडलिनी शक्तिके सहित अपणे प्राण औ मनकूं षट्चक्रभेदन करके ब्रह्मरंध्रविषे लावे पश्चात् जबपर्यंत सो काल आयकर पीछे लोट नहि जावे तबपर्यंत तहां ब्रह्मरंध्रमेंहि सुखपूर्वक निवास करे तो काल आयकर पीछे लोट जावेहै काहेतें ब्रह्मरंध्रसें नीचे स्थित भये जीवकूंहीं काल अपणे वशीभूत करणेमें समर्थ होवेहै औ देहके ऊर्ध्व अर्थात् ब्रह्मरंध्रविषे

स्थित भये जीवकूं काल वशीभूत नहि करसकैहै यह आदिसेंहि दैवकी नेत है इस प्रकार ब्रह्मरंध्रमें स्थित भया योगी जिस कालविषे कुंडलिनी शक्तिके प्रतापसें अपणे कालकूं पीछे लौट गया देखे तो ब्रह्मरंध्रकूं भेदन करके अर्थात् परित्याग करके प्राणोंकेसहित कुंडलिनी शक्तिकूं नीचे क्रमसें मूलाधारविषे लायकर स्थित करे पुनः अपणे प्राण औ जीवसहित इन्द्रियोंकूं शक्तीके शरीरसें भिन्न करके तिनकूं स्वस्वस्थानविषे स्थापन करे पश्चात् स्वस्थदेह कहिये चिरंजीवी होयकरके स्वतंत्र भया विचरण करे हे पार्वति इस प्रकारके योगकरके आये हुये कालकूं योगी वंचन करे इति ॥ इसप्रकार कालादिकोंके भयसें रहित होयकर चिरकालपर्यंत स्वतंत्र विचरता भया योगी जिस कालविषे सर्व व्यवहारोंसें उपरामताकूं प्राप्त भया विदेहमुक्त होनेकी इच्छा करेहै तो यहांहि ब्रह्मरंध्रविषे प्राणोंके निरोधपूर्वक परमपदकूं प्राप्त होवेहै ॥ सो जिस प्रकार योगी विदेहमुक्त होवेहै सो प्रकारभी खेचरीपटलविषेहि महादेवजीने कथन कियाहै ॥

"यदा तु योगिनो बुद्धिस्त्यक्तुं देहमिमं भवेत् ।"
तदा स्थिरासनो भूत्वा मूलाच्छक्तिं समुज्ज्वलाम् ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशां भावयेच्चिरमात्मनि ।
आपादतलपर्यंतं प्रसृतं जीवमात्मनः ॥

संहृत्य क्रमयोगेन मूलाधारपदं नयेत् ।
तत्र कुंडलिनीं शक्तिं संवर्त्तानलसन्निभाम् ॥
जीवं निजं चेन्द्रियाणि ग्रसन्तीं चिन्तयेद्धिया
संप्राप्य कुंभकावस्थां तडिज्ज्वलनभासुराम् ॥
मूलाधाराद्यतिर्देवि स्वाधिष्ठानपदं नयेत् ।
तत्रस्थं जीवमखिलं ग्रसन्तीं चिन्तयेद्व्रती ॥
तडित्कोटिप्रतीकाशां तस्मादुन्नीय सत्वरम् ।
मणिपूरपदं प्राप्य तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥
तत्र स्थित्वा क्षणं देवि पूर्ववद्योगमार्गवित् ।
अनाहतं नयेद्योगी तत्र पूर्ववदाचरेत् ॥
उन्नीय तु पुनः पद्मे षोडशारे निवेशयेत् ।
तत्रापि चिंतयेद्देवि पूर्ववद्योगमार्गवित् ॥
उन्नीय तस्माद् भ्रूमध्ये नीरक्षीरं ग्रसेत् पुनः ।
मनसा सह वागीश्या भित्वा ब्रह्मार्गलं क्षणात् ॥
परामृतमहांभोधौ विश्रान्तिं तत्र कारयेत् ।
तत्रस्थं परमं देवं शिवं परमकारणम् ॥
शक्त्या सह समायोज्य तयोरैक्यं विभावयेत् ।
एवं तत्त्वे परे शान्तः शिवे लीनः शिवायते ॥"

अर्थ० हे देवि जिस कालविषे योगीको इस पांचभौतिक देहकूं परित्याग करके विदेहमुक्त होनेकी इच्छा होवे तो एकां-

तद्देशविषे सिद्धासनकूं स्थिर लगायकर मूलाधारचक्रविषे कोटिसूर्यके समान प्रभाकरके ज्वलती भयी पूर्वोक्त कुंडलिनी शक्तिका चिरकालपर्यंत मनकरके चिंतन करे, पुनः मूलाधारसें लेकर पादतलपर्यंत प्रसरा हुया जो आपणा जीवात्मा है तिसकूं षोडशमें श्लोकको टीकाविषे निरूपण किये प्राणोंके प्रत्याहारकी रीतिसें सहित प्राणोंके आकर्षण करके मूलाधारचक्रविषे लावे पश्चात् तहाँ स्थित जो प्रलयकालकी अग्निके समान प्रकाशकरके युक्त कुंडलिनी शक्ति तिसकूं प्राण औ इन्द्रियोंके सहित अपणे जीवकूं ग्रसन करती हुयी चिंतन करे अर्थात् पादतलसें प्राणोंके सहित जीवात्माकूं आकर्षण करके मूलाधारविषे स्थित भयी उक्त कुंडलिनीके साथ एकीभूत करे ॥ इस प्रकार तहां किंचित् विश्राम करके पुनः तहांसें तडित्‌के समान तेजयुक्त कुंडलिनी शक्तिकूं ग्रास किये हुये प्राण औ जीवात्माके सहित ऊपर स्वाधिष्ठानचक्रविषे लायकर मूलाधारसें लेकर स्वाधिष्ठानपर्यंत प्रसरे हुये जीवकूं सहित प्राणोंके ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुनः कोटिविद्युत्‌के समान प्रकाशयुक्त कुंडलिनीकूं ग्रास किये हुये प्राण औ जीवात्माके सहित शीघ्रहि मणिपूरचक्रविषे लायकर मणिपूरसें लेकर स्वाधिष्ठानपर्यंत प्रसरे हुये जीवात्माका सहित प्राणोंके

ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुना तिसतें ऊपर श्वास किये प्राण औ जीवात्माके सहित प्रकाशमान शक्तिकूं अनाहत चक्रविषे लायकर अनाहतचक्रसें लेकर मणिपूरपर्यंत प्रसरे हुये जीवात्माका सहित प्राणोंके ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्रामकरके पुना तिसतें ऊपर श्वास किये हुये जीव औ प्राणोंके सहित शक्तिकूं षोडश अक्षरोंकरके युक्त विशुद्धचक्रविषे लायकर विशुद्धचक्रसें लेकर अनाहतचक्रपर्यंत प्रसरे हुये जीवात्माकूं सहित प्राणोंके ग्रास करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुना तिसतें ऊपर श्वास किये हुये जीव औ प्राणोंके सहित शक्तिकूं भ्रुवोंकेमध्ये आज्ञाचक्रविषे लायकर "नीरक्षीरं ग्रसेत्" कहिये जैसे हंसपक्षी नीरसे क्षीरकूं पृथक् करके भक्षण करेहै तैसेंहि शरीररूप नीरसें जीवात्मारूप क्षीरकूं पृथक् करके ग्रसन करती हुयी चिंतन करे ॥ तहां किंचित् विश्राम करके पुना तिसतें ऊपर श्वास किये हुये जीव औ प्राणोंके सहित कुंडलिनीकूं ब्रह्मरंध्रका द्वार भेदन करके परमानंदरूप अमृतके समुद्र सहस्रदलपंकजमें लायकर विश्रांतिकूं प्राप्त करे पश्चात् तिस ब्रह्मरंध्रमें पुर्यष्टकाविषे अधिष्ठानरूपसें स्थित जो सर्व जगत्का हेतुभूत परम शिवस्वरूप साक्षी आत्मा है तिसकेसाथ

ग्रास किये हुये चिदाभासरूप जीवात्मा औ प्राणोंके सहित कुं-डलिनीशक्तिकी एकता चिंतन करे अर्थात् पुर्यष्टकाके सहित चिदाभासकूं साक्षी आत्माविषे विलय करे तात्पर्य यह कुंड-लिनी शक्ति औ जीवात्मा तथा पुर्यष्टकाकूं साक्षीरूप अधिष्ठा-नविषे कल्पित जानकर तिनविषे अहंप्रत्ययका परित्याग कर-के साक्षीविषे अहंप्रत्यय करे पुनः साक्षी आत्माकूं परिपूर्ण नित्यशुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्मविषे विलय करे अर्थात् सर्व वासनाओंसें रहित भया पुर्यष्टकावच्छिन्न भावका परित्याग करके *सर्वगत नित्यशुद्ध सामान्य संवित् स्वरूपसें स्थित होवे ॥* इस प्रकारसें सर्वगत शिवस्वरूप परमतत्व सामान्यसंवित्विषे एकीभावकूं प्राप्त भया योगी शिवस्वरूपहि होय जावेहै तात्पर्य यह उक्त प्रकारसें स्थूल सूक्ष्म शरीरके अभिमानका परित्याग करके ब्रह्मभावसें स्थित भये योगीकी पुनः व्यु-त्थानके अभाव होनेतें जैसे तंतुके टूटनेसें सर्व मणियां नि-राधार भयी विखर जावेहैं तसेहि वासनारूप तंतुके टूटनेसें निराधार भयी योगीकी पुर्यष्टका ब्रह्मरंध्रविषेहि विखर जा-वेहै, अर्थात् स्थूल सूक्ष्म शरीरकी अंतःकरणादिक सर्व सा-मग्री स्वस्वकारणविषे एकीभावकूं प्राप्त होवेहै । यह सर्व वार्ता योगवासिष्ठविषे उद्दालकवीतहव्यादिकोंके इतिहासोंविषेभी

१ न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति श्रुतेः.

प्रसिद्ध है ॥ तथा अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषद्‌मेंभी कथन कियाहै

"गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ॥
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवंति ॥"

अर्थ० जिस कालविषे ज्ञानयुक्त योगी विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवेहै तो प्राणादिक जो पंचदश कला हैं सो प्रतिष्ठा कहिये स्वस्वकारणविषे लीन होय जावेहैं औ चक्षुआदिक गोलकों स्थित जो देवता अर्थात् इन्द्रिय हैं सोभी स्वस्व-अधिष्ठानभूत सूर्यादिक देवतोंविषे एकीभावकूं प्राप्त होवेहैं तथा शुभाशुभ कर्म औ जीवात्माका निर्विकार जो परब्रह्म है तिसकेसाथ एकीभाव होवेहै इति ॥ औ जो योगकलासें रहित केवल ज्ञानीकी विदेहमोक्ष होवेहै तो तिसकी पुर्यष्टकाकाभी उक्त प्रकारसेंहि भेदन होवेहै परंतु तिनमें इतनी विशेषता है केवल ज्ञानीकी प्रारब्धकर्मके भोगकरके क्षीण भयेतें अनंतर हृदयदेशविषेहि पुर्यष्टकाका भेदन होवेहै औ योगयुक्त ज्ञानीकी तो प्रारब्धकर्मके क्षयकी अपेक्षासें विनाहि इच्छाके अनुसार स्वतंत्र ब्रह्मरंध्रविषे पुर्यष्टकाका भेदन होवेहै ॥ तथा

१ वेदांतमतके अनुसारसें यह कथन जानना.

"अमुत्र विमुच्यतेथवा" कहिये, जो योगीकी यहां विदेहमुक्त होनेकी इच्छा नहि होवे किंतु ब्रह्मलोकविषे गमन करणेकी इच्छा होवे तो तहांहि जायकर कल्पपर्यंत ब्रह्मलोकके दिव्य भोगकूं भोगकरके ब्रह्माकेसाथहि विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवेहै ॥ सो योगीके ब्रह्मलोकविषे गमन करणेका प्रकार भागवतके द्वितीय स्कंधविषे शुकदेवजीने राजापरिक्षत [illegible] किया है

"यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं
वैहायसानामुत यद्विहारम् ।
अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये
सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥"

अर्थ० हे नृप पूर्वोक्त प्रकारसें षट्चक्रोंकूं भेदन करके ब्रह्मरंध्रविषे स्थित भये योगीकी जो ब्रह्मलोक अथवा अष्टसिद्धियोंके ऐश्वर्यकरके युक्त स्वर्गलोकविषे अथवा ब्रह्मांडके अंतर अथवा बाह्य अन्य किसीलोकविषे गमन करणेकी इच्छा होवे तो पुर्यष्टकाके अभिमानका परित्याग नहि करे किंतु प्राणोंके ऊर्ध्व आकर्षणद्वारा ब्रह्मरंध्रका भेदन करके पुर्यष्टकाके सहितहि गमन करे इति ॥ इस प्रकारसें ब्रह्मरंध्रकूं भेदन करके ब्रह्मलोकविषे प्राप्त भये योगीकी पुनः इस

जन्ममरणरूप घोर संसारचक्रविषे आवृत्ति नहि होवेहै यह वार्ता अथर्ववेदकी अमृतबिंदुउपनिषत्‌मेंभी कथन करीहै

"यस्यैष मंडलं भित्वा मारुतो याति मूर्द्धतः ।
यत्र कुत्र म्रियेद्वापि न स भूयोभिजायते"

अर्थ० जिसका प्राणवायु ब्रह्मरंध्रमंडलकूं भेदन करके मूर्द्धासें ऊर्ध्व गमन करेहै सो पुरुष जिस तिस देशविषेभी मृत्युकूं प्राप्त भया पुना इस संसारविषे जन्मकं नहि प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा अथर्ववेदकी संन्यासउपनिषत्‌मेंभी कहाहै

"अथायं मूर्द्धानमस्य देहेपागतिर्गतिमतां ये प्राप्य परमां गतिं भूयस्तेन निवर्त्तते परात्परमवस्थानात्" ,

अर्थ० जिस कालविषे यह प्राणवायु मूर्द्धाकूं 'अस्य' कहिये क्षेपण अर्थात् भेदन करके 'देहे' कहिये समष्टि वायुके साथ एकीभाव होनेतें उपचयकूं प्राप्त भया ब्रह्मलोकविषे गमन करेहै सोई गतिवाले योगी पुरुषोंकी परम गति है सो जो पुरुष इस परम गतिकूं प्राप्त होयकर ब्रह्मलोकविषे गमन करतेहैं सो पुना, तिस परमस्थानसें निवर्तते नहि इति ॥ तथा यजुर्वेदकी कठउपनिषत्‌मेंभी कहाहै "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" अर्थ० सुषुम्ना नाडीद्वारा ब्रह्मरंध्रविषे प्राणोंकूं लायकर जो पुरुष ऊर्ध्वकूं प्राणोंका परित्याग करेहै

१ असु क्षेपणे. २ दिह उपचये.

सो ब्रह्मलोकविषे जायकर मोक्षपदकूं प्राप्त होवेहै इति ॥ तथा अथर्ववेदकी क्षुरिका उपनिषत्‌मेंभी कहाहै

"पाशं छित्वा यथा हंसो निर्विशंकः खमुत्क्रमेत् ।
छिन्नपाशस्तथा जीवः संसारं तरते सदा ॥"

अर्थ० जैसे बलवान् हंसपक्षी जालकूं भेदन करके आकाशविषे निराशंक होयकर विचरैहै तैसेहि योगरूप बलकरके योगी पुरुष शरीररूप जालकूं ब्रह्मरंध्रद्वारा भेदन करके जन्ममरणरूप संसारसमुद्रकूं तरजावेहै इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहाहै "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्" अर्थ० उक्त श्रुतियोंके प्रमाण होनेतें ब्रह्मलोकविषे गये हुये योगीकी पुनः इस संसारमें आवृत्ति नहि होवेहै किंतु कल्पके अंतमें तिस योगीका ब्रह्माके साथहि कैवल्यमोक्ष होवेहै इति ॥ यह वार्ता अथर्ववेदकी मुंडकउपनिषत्‌विषेभी कथन करीहै "ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृताः परिमुच्यंति सर्वे" अर्थ० जो योगीलोक ब्रह्मलोकविषे जातेहैं सो सर्वहि कल्पके अंतमें परब्रह्मस्वरूप हुये ब्रह्माके साथहि कैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवेहैं इति ॥ तथा शारीरकसूत्रोंमें व्यासजीनेभी कहाहै "कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्" अर्थ० ब्रह्मलोकविषे प्राप्त भये योगीका कल्पके अंतविषे ब्रह्मलोकके विनाश होनेतें तिसके अधिपति ब्रह्माके

साथ कैवल्य मोक्ष होवेहै काहेतें यह,उक्त वार्ता "एतस्मा-ज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते" इत्यादिक श्रुतियों-विषे अभिधान करणेतें इति ॥ तथा स्मृतिमेंभी कहाहै

"ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम् ॥"

अर्थ० इस स्मृतिका अर्थ उक्त श्रुति औ सूत्रके अंतर्भूतहि है इति ॥ किंच तिस० योगीके माता पिताभी कृतार्थ होय जावेहैं यह वार्ता ब्रह्मवैवर्तपुराणमेंभी कथन करीहै

"कृतार्थौ पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत् ।
जायते योगवान् यत्र दत्तमक्षयतां व्रजेत् ॥"

अर्थ० जिनके गृहविषे योगीपुरुषका जन्म होवेहै तिन मातापिताकाभी उद्धार होवेहै औ जिस कुलविषे होवेहै सो कुलभी पावन होय जावेहै तथा जिस देशविषे होवेहै सो देशभी धन्यवादके योग्य होवेहै औ जो जो वस्तु तिस योगीके प्रति श्रद्धालुभक्तलोक समर्पण करेहैं सो सो अक्षय फलके देनेहारी होवेहै इति ॥ तथा तिसकी अन्नवस्त्रादिकोंसें सेवा

१ ब्रह्मलोकविषे प्राप्त भया पुरुष स्थूलप्रपंचसें परे जो जीवघन कहिये हिरण्यगर्भ है तिसतें परे शरीररूप पुरविषे शयन करणेहारा जो परमात्मा है तिसकूं देखेहै अर्थात् ब्रह्मज्ञानद्वारा कैवल्यमोक्षकूं प्राप्त होवेहै इति यह इस श्रुतिका अर्थ है ॥

करणेहारे पुरुषोंकोभी कल्याण होवेहै यह वार्ता दक्षसंहितामेंभी कथन करीहै

"योगारंभपरिश्रांतं यस्तु भोजयते यतिं ।
निखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥"

अर्थ० योगके अभ्यास करके परिश्रमकूं प्राप्तभये योगीकूं जो पुरुष भोजन करावेहै तो मानो तिसने सचराचर तीनलोकोंकोहि भोजन कराय दिया इति ॥ तथा अमनस्कखंडविषे महादेवजीनेभी वामदेवकेप्रति कहाहै

"दर्शनादर्चनादस्य त्रिसप्तकुलसंयुताः ।
अज्ञा मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणः ॥"

अर्थ० हे वामदेव तिस योगीके दर्शन औ श्रद्धापूर्वक पूजन करणेहारे अज्ञानीभी अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा एकविंशति कुलोंके सहित मोक्ष पदकूं प्राप्त होवेहैं तो जो पुरुष सर्वदाहि योगाभ्यासमें तत्पर रहताहै तिसकी तो क्याहि वार्ता कथन करणी है इति ॥ किंच सो योगी सर्वकरके वंदना करणे योग्य होवेहै, यह वार्ताभी तहांहि महादेवजीने कथन करीहै

"अंतर्योगं बहिर्योगं यो विजानाति तत्त्वतः ।
त्वया मयाप्यसौ वंद्यः शेषैर्वंद्यस्तु किं पुनः ॥"

अर्थ०हे वामदेव जो पुरुष सम्यक् प्रकारसें अंतर योग जो राजयोगहै वाह्य योग जो हठ योगहै तिसकूं जानता है, अर्थात् तिसका अनुष्ठान करताहै सो तेरे औ मेरे करकेभी वंदना करणेयोग्य है तो अन्य पुरुषोंकरके वंदना करणेयोग्य है इसमें क्या वार्ता कथन करणीहै इति ॥ इस प्रकारसें महत्पदकी प्राप्तिके हेतुभूत योगाभ्यासका परित्याग करके जो पुरुष अन्य कार्योंविषे आसक्त भये सर्व आयुषकूं वृथाहि क्षपण करतेहैं तिनतें परे दूसरा कौन अभागी है इति ॥ २४ ॥ इसप्रकारसे योगकूं सांगोपांग निरूपण करके अब ग्रंथका उपसंहार करते हुये इस ग्रंथके अध्ययनका फल निरूपण करेहैं ॥

(द्रुतविलंबितं वृत्तम्)

परमयोगरहस्यमितीरितं
परमहंसजनेन समासतः ॥
पठति यश्च समाचरतीह वै
पतति जातु स नोग्रभवार्णवे ॥ २५ ॥

परमेति ॥ यह जो पंचविंशति श्लोकात्मक परमयोगरहस्यका बोधक "योगकल्पद्रुम" नामक ग्रंथ है सो सहित

टीकाके परमहंस स्वामी ब्रह्मानंदजीने कथन कि-
याहै सो जो अधिकारी पुरुष इस ग्रंथकूं आदितें लेकर
अंतपर्यंत अध्ययन करेगा तथा ग्रंथोक्त योगरहस्यका विधि-
पूर्वक क्रमसें अनुष्ठान करेगा सो पुरुष कदाचित्भी इस जन्म-
मरणरूप घोर संसारसमुद्रविषे नहि पतित होवेगा अर्थात्
निर्विकल्पसमाधिकी प्राप्तिद्वारा कैवल्यमोक्षपदकूं प्राप्त हो-
वेगा इति ॥

जलजबन्धुसुतारिजयावहं
पवनजानुजतातमदापहम् ॥
रविसुतात्मजसोदरसोदरी
सुपुलिने किल केलिरतं भजे ॥

"समाप्तिमगदमयं ग्रंथः"

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितो योगकल्पद्रुमः
संपूर्णः ॥

लावणी.

करोहरिकांभजनेजन्मयहवारवारफिरनहिआता
दिनदिनपलपल, क्षणक्षणनलिनीदलजललवचंचलजाता ॥ टेक
बाल्यपणेकेलिरसरसयोयौवनललनारसराता
वृद्धभयो, चितानलजलयोपलयोदलयोसबगाता ॥
मालालेकरचलेभजनकोजलेमवनजलखोदाता
मणिकाफेरे, मनचहुंफेरेहेरेमर्कटकेभ्राता ॥ १ ॥ दिनदिन०
कोटिपापकरकरघनसंचयडरमरणेकाविसराता
जिनकेकारण, करतदुरितनरसंगतेरेकोइनहिंआता ॥
यहसबपांथसमागमजानोभ्राततातकांतामाता
जगमेंजीवन, जानसुजानसमानपाणिजलचलजाता॥ २॥ दि०
पुनरपिमरणंपुनरपिजननंपुनरपिजननीजठराता
विनाहरीके, भजनकुजननरकानलजलधिनजलजाता ॥
गेररत्नबहुकामतमामनिकामकायपरलघाता
गयादायनहि, आवपुनर्नरभरकरमूरखपछताता ॥ ३ ॥ दिन०
गर्भवासकाकालसंभालहवालयालक्युंनिसराता
भोगयोगकी, आशापाशमायाकेमूरखफमजाता ॥
धर्मानन्दकेवाक्यमनाकपटाकजयोदिलमेंलाता
पाशमायाकी, तोरमरोरमजोरगगननटघटजाता ॥ ४ ॥ दिन०

गजल.

विनाहरिकेभजनमुफतजन्मगँवाया दुनियांकीमौजमेंफिरेसदा-
हिभुलाया ॥ टेक ॥
यहवारवारदेहमनुजकानमिलेगा डालीसेंटूटागुलनगुलिस्तांमें
खिलेगा ॥
दिनचारपांचकेलियेक्याढंगजमाया विनाहरिके० ॥ १ ॥
जिनकोंतुंमानताहैमेरेहैंयहपियारे वहुछोडकरतुझेजंगलमेंघरकों-
सिधारे
परलोकमेंनतेरेकोइहोतसहाया विनाहरिके० ॥ २ ॥
मोहकीमदिराकोपीकेमरणभूलया चूसचूसविषयरसकूंफिरत-
फूलया
जबतकनचूहेकोंमटीनेमुखमेंउठाया विनाहरिके० ॥ ३ ॥
कहतेंहैंब्रह्मानंदब्रह्मानंदलीजिये सदाहरिकाभजनदिलोजांसें-
कीजिये
करणेमेंजिसकेफिरनकोईटोटकेआया विनाहरिके० ॥ ४ ॥

गजल.

मानमानमानकहामानलेमेरा जानजानजानरूपजानलेतेरा०
॥ टेक ॥
जानेविनास्वरूपकेमिटेनगमकभी कहतेंहैंवेदवारवारवातयह-
सभी ॥
हुशियारहोनिहारयारहारमेंमेरा मानमानमान० ॥ १ ॥

जाताहैदेखनेजिसेकाशीद्वारका मुकाबहैवेदनमेंतेरेउसाहयारका ।
टेकनविनाविचारकेकिसीनेनहेरा मानमानमान० ॥ २ ॥
जोनैनकाभीनैननैनकाभीवैनहै जिसकेविनाशरीरमेंनपलक्वैनहै ॥
पिछानलेवस्तूवसोस्वरूहैतेरा मानमानमान० ॥ ३ ॥
कहतेहैंब्रह्मानंदब्रह्मानंदतुंसही॰बातयहपुराणवेदग्रंथमेंकही
विचारदेखमिटेजन्ममरणकाफेरा मानमानमान० ॥ ४ ॥

गजल.

गाफिलतुंजागदेखक्यातेरास्वरूपहै किसवासतेपडाजन्ममरणकेकूपहै ॥ टेक ॥
यहदेहगेहनाशवानहैनहितेरा वृथाभिमानजालमेंफिरेकहांघेरा
तुंतोसदाविनाशसेंपरेअनूपहै गाफिलतु० ॥ १ ॥
भेददृष्टिकोनजवीदीनहोगया स्वभावआपणेसेंआपहीनहोगया
विचारदेखएकतुंभूपनकाभूपहै गाफिलतु० ॥ २ ॥
तेरेप्रकाशसेंशरीरचित्तचेतता तुंदेहतीनदृश्यकुंसदाहैदेखता ,
द्रष्टानहिहोताहैकवीदृश्यरूपहै गाफिलतु० ॥ ३ ॥
कहतेहैब्रह्मानंदब्रह्मानंदपाईये इसवातकेविचारसदादिलमें ठाईये
जिस्सेंपडेंनफेरजन्ममरणकूपहै गाफिलतु० ॥ ४ ॥

श्री ।

॥ चतुश्लोकीभागवतप्रारंभः ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ ज्ञानंपर
मगुह्यंमे यद्विज्ञानसमन्वितम् ॥ सरहस्यंतदंगंचगृहाणगदितं
मया ॥ १ ॥ यावानहंयथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव
तत्त्वविज्ञानमस्तुतेमदनुग्रहात् ॥ २ ॥ अहमेवासमेवाग्रे ना-
न्यद्यत्सदसत्परं ॥ पश्चादहंयदेतच्चयोऽवशिष्येतसोऽस्म्यहम् ॥
॥ ३ ॥ ऋतेऽर्थंयत्प्रतीयेत नप्रतीयेतचात्मनि ॥ तद्विद्यादात्म
नोमायां यथाभासोयथातमः ॥ ४ ॥ यथामहांतिभूतानिभूतेषू
च्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथातेषुनतेष्वहम् ॥ ५ ॥
एतावदेवजिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेका
भ्यां यःस्यात्सर्वत्रसर्वदा ॥ ६ ॥ एतन्मतंसमातिष्ठपरमेणस
माधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु नविमुह्यतिकर्हिचित् ॥ ७ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांवैया
सिक्यांद्वितीयस्कंधेभगवद्ब्रह्मसंवादे चतुःश्लोकीभागवतंसमा-
प्तम् ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ श्रीरस्तु ॥ ॥ ॥

॥ इति चतुःश्लोकीभागवतं समाप्तम् ॥

ॐ

॥ अथ श्रीमदानंदगिर्यष्टकम् ॥

(वंशस्थंवृत्तम्)

यदंघ्रिमूलंभजतोनिरंतरं । नृणांजराजन्मभवंमहाभयम् ॥
विलीयतेभानुकरैस्तमोयथा । सदात्मानंदगिरिंनमाम्यहम् ॥ १ ॥
वचोमृतैर्यस्यजनस्यसत्वरं । भयात्तितापत्रयमेवसंक्षयम् ॥
परोपकारैकपरायणंमुदा । सदात्मानंदगिरिं० ॥ २ ॥
विराजतेयस्यगलेक्षमालिका । विभातिभूतिर्विमलाचमस्तके ॥
करेषपानीययुतःकमंडलुः । सदात्मानंदगिरिं० ॥ ३ ॥
समस्तशास्त्रार्थविचारपारगं । परात्मबोधेननिरस्तसंशयम् ॥
मुमुक्षुपूगार्चितपादपंकजं । सदात्मानंदगिरिं० ॥ ४ ॥
शिशौचवृद्धेचतथैवपंडिते । निरक्षरेमित्रजनेचवैरिणि ॥
समामतिर्यस्यमहात्मनोनिशं । सदात्मानंदगिरिं० ॥ ५ ॥
यमादियोगांगरतंततवाशयं । यतीन्द्रयोगीन्द्रनरेन्द्रवंदितम् ॥
विमुक्तकामादिविकारसंचयं । सदात्मानंदगिरिं० ॥ ६ ॥
जितासनाहारमपारबोधकं । समस्तसंसारविहारवर्जितम् ॥
स्वरूपनिष्ठापरितुष्टमानसं । सदात्मानंदगिरिं० ॥ ७ ॥
निराशिषंनिर्विषयंनिरामयं । निरंतरंस्तोत्रजपादितत्परम् ॥
भवाब्धिमज्जज्जनपारतारकं । सदात्मानंदगिरिंनमाम्यहम् ॥ ८ ॥
इदंसदानंदगिरेर्महात्मनः । पठेन्नरोयस्तुपवित्रमष्टकम् ॥
विधूयपापोपचयंचिरंतनं । चिरंचिदानंदपदेमहीयते ॥ ९ ॥

इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानंदविरचितं श्रीमदानंदगिर्यष्टकं

॥ संपूर्णम् ॥

(अथशुद्धिपत्रम्)



पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१	१८	कोरहै	कोरहैं
८	२१	पड्मि	पड्भि
११	२०	होताहै	होनाहै
१२	९	विषयं	विषये
१४	३	कहाहै	कहाहै
१८	२०	होवेहैं	होवेहै
१८	१७	यहनिये	यहलिये
२१	४	धूमामोदादि	धूपामोदादि
२३	१३	साधनपुरुषकुं	साधकपुरुषकु
२३	१९	धर्यका	धैर्यका
३८	१८	त्रिपवेगा	त्रिपवेग
३६	१०	होवेहैं	होवैहैं
४२	१३	संशयावरः	संशयावहः
४३	१६	होवेहै	होवेहै
४४	७	निराचटन	निराजटन
४४	१२	शुग्रादिभि	शुरादिभि
४७	९	भर्यकार्मोका	मर्यकर्मोका
८५	१८	आकरोमें	आकरोमें
६३	९	मोक्षनर्हिमात्मेन	मोक्षमर्हिमात्मेन
६४	१२	करना	कहना

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६८	१७	सकेहैं	सकेहै
६९	१६	होवेहैं	होवेहै
७१	११	है	हैं
७३	१	हीनोनः	हीनोयः
७७	१६	तोयेनैकं	तोयेनैकं
८१	१	पर	परं
८२	४	सूर्यांशुः	सूर्यांशु
८५	१४	विन्द्रते	विन्दते
९५	५	कियेहैं	कियेहैं
९९	११	सो	सो
१०१	१५	रुप	रूप
१०३	१८	हिव्रतहै	व्रतहैं
१०६	४	कमहैं	कमलहै
११८	६	जोपुरुष	सोपुरुष
११९	५	जावेहै	जावेहैं
१२०	११	स बोधः	संबोधः
१२०	१४	कथाओंका	कथंताका
१२६	६	वृद्वाम्	वृद्धम्
१२९	१७	फिरनैसेह	फिरनैसेहि
१२९	१७	विशेपि	विशेष
१३१	६	विवृन	विधृत
१३२	१३	योगीराज	योगिराज
१३४	५	अभ्यसेत्	मभ्यसेत्

(अथशुद्धिपत्रम्)



पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१	१८	कोरहै	कोरहैं
८	२१	पड्मि	पड्भि
११	२०	होनाहै	होनाहै
१२	९	विपयं	विपये
१४	३	कहाहै	कहाहै
१५	२०	होवेहैं	होवेहै
१८	१७	यहविपे	महत्विपे
२१	४	धूमामोदादि	धूपामोदादि
२३	१३	साधनपुरुपकुं	साधकपुरुपकुं
२३	१९	धर्यका	धैर्यका
३८	१८	विपवेगा	विपवेग
३६	१०	होयेहै	होवेहैं
४२	१३	संशयावरः	संशयावहः
४३	१६	होवेहैं	होयेहै
४४	७	निराचटन	निराचटन
४४	१२	शुकादिमि	शुकादिभि
४७	९	मर्वकार्मोका	मर्थकर्मोका
५७	१८	आकरोंसे	आकारोंसे
६३	९	मोर्कनर्हिमात्येन	मोक्षमर्हिमात्येन
६४	१२	करना	कहना

पृष्ठम	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१७८	१७	कूर्म	कूर्मः
१७६	१२	योगपुरुप	योगिपुरुप
१८४	१२	जिव्होपस्यादि	औपस्थ्यजैव्ञ
१८९	९	घाक्यों	वाक्योंके
१९६	६	ब्रह्मज्ञात	ज्ञातब्रह्म
२०२	२	कारणका	करगा
२०७	१	होवेहै	होवेहैं
२०७	५	व्यािध	व्याधि
२०८	१२	समेभ्यो	यमेभ्यो
२०९	१७	ज्ञानवानका	ज्ञानवानको
२१०	१२	अनिभित	अमिभित
२१४	१६	जगत	जगत्
२१७	३	मंनस्थ	मंतःस्थं
२१८	४	चैतेभ्यो	वेतेभ्यो
२२०	७	सामवेदको	सामवेदकी
२२०	१०	महतां	महत्तां
२२२	[illegible]	आपणा	अपणा
२३१	१	अरुधती	अरुंधती
२३२	२०	पृष्ठ १८६ पंक्ति ३	पृष्ठ १८७ पंक्ति १७
२३७	२०	चेतत्व	चेतनत्व
२३९	४	वेदनायिनस्य	वेदनाचितस्य
२३९	१७	चितकि	चित्तकी
२३२	२०	निसकि	निसकी

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१३६	१७	असर	बाधा
१३८	१२	प्रकारकेहै	प्रकारकेहैं
१३९	११	मात्राके	मात्राकरके
१४०	१०	अष्टमहरा	अष्टप्रहर
१४१	१०	सर्वकाल	सर्वकला
१४६	२	परमशक्ति	परमभक्ति
१४८	१७	आचार्याध्यैव	आचार्याध्यैव
१४९	१८	योग्यहैइति	योग्यहै
१५२	६	गिलजावे	गिलजावे
१५२	१९	काजल	जलका
१६१	१४	देमहध्या	देहमध्या
१६२	१३	आयेहैं	आवेहै
१६३	२	काल	कला
१६३	१९	वेदको	अथर्ववेदकी
१६४	६	संवर्तसंहिता	संवर्तसंहिता
१६६	१९	ग्रंथमें	ग्रंथोंमें
१७०	२	धारणहैं	धारणाहैं
१७२	१	वृत्तिकरके	वृत्तिके
१७३	३	दीपकविषे भया	दीपकविषे पतित भया
१७३	९	होवेहै	होवेहैं
१७४	३	भयेहै	भयेहैं
१७४	१७	अतिचंचल	औ अतिचंचल
१७५	६	मैं कहाहै	मैंभी कहाहै

पृष्ठम	पंक्ति	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१७०	१७	कूर्म	कूर्मः
१७६	१२	योगपुरुष	योगिपुरुष
१८४	१२	जिव्होपस्यादि	औपस्थ्यजैन्ह्य
१८९	९	वाक्यों	वाक्योंके
१९६	६	ब्रह्मज्ञात	ज्ञानब्रह्म
२०२	२	करणका	करणा
२०७	१	होवेहै	होवेहै
२०७	५	व्यािध	व्याधि
२०८	१२	तमेभ्यो	यमेभ्यो
२०९	१७	ज्ञानवानका	ज्ञानवानको
२१०	१२	अनिभित	अमिश्रित
२१४	१६	जगत	जगत्
२१७	३	मंतस्थ	मंतःस्थं
२१८	४	वैतेभ्यो	वेनेभ्यो
२२०	७	सामवेदको	सामवेदको
२२०	१०	महतां	महत्तां
२२२	७	आपणा	अपणा
२३१	१	अरुधती	अरुंधती
२३२	२०	पृष्ठ १८६ पंक्ति ३	पृष्ठ १८७ पंक्ति १७
२३७	२०	चेतत्व	चेतनत्व
२३९	४	वेदनायिनस्य	वेदनाचिनस्य
२३९	१७	चितकि	चित्तकी
२३९	२०	रिसकि	निसकी

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
२४०	१२	हठयोगकि	हठयोगकी
२४३	३	शरीका	शरीरका
२४७	९	तीतगुण	तीनगुण
२४९	११	हस्तिया	हस्तिनिया
२४९	१२	करतीहै	करतीहै
२५०	४	करतेहै	करतेहे
२५३	४	करीहै	क्रियाहै
२५५	१४	अनुसधानक	अनुसधानके
२६१	१७	स्यममे	स्वयमें
२६२	१९	प्रदापिका	प्रदीपिका
२७०	१७	त्रिनाकु	त्रिनाशकुं
२७०	१५	होवहै	होवेहै
२८१	१०	गोलकों	गोलकोंमें
२८२	४	भोगकुं	भोगोंकुं
२८५	१०	योगमान्	योगवान्
२८८	२	पथकु	प्रथकु



गीतगोविन्द-सटीक-भाषा टीका



सर्व सज्जनोंको विदित होकी यह गीतगोविन्द संस्कृत टीका और भाषाटीका सहित छपवायके तैयार किया है. विशेष उत्तमता यह है कि ऐसी भाषाटीका अवतक इसकी कहीं नहीं बनीथी. क्योंकि इसके मूलपर अन्वयके अंक लगाके फिर वेही अंक भाषाटीकामेंभी लगादिये हैं कि जिससे विद्यार्थी लोगोंको और साहित्यके रसिकोंको देखनेसे और टीका मूलके अंक मिलानेसे भलीभांति न्यारा २ शब्दार्थ मालुम होगा. विशेष प्रसंशा कहांतक लिखें क्योंकि यह "गीतगोविन्द" रसिकशिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके रास-विलासका रहस्य और गायन शिरोमणि है. सो महात्मा सारग्राही पुरुषोंसे यही प्रार्थना है कि एकवार मंगाके देखैं जब मालुम होगा. की० १ रु. ८० ४ आ०